शब्द लोक

ISSN 2349-137X

प्रतिध्वनि कला संस्कृति की

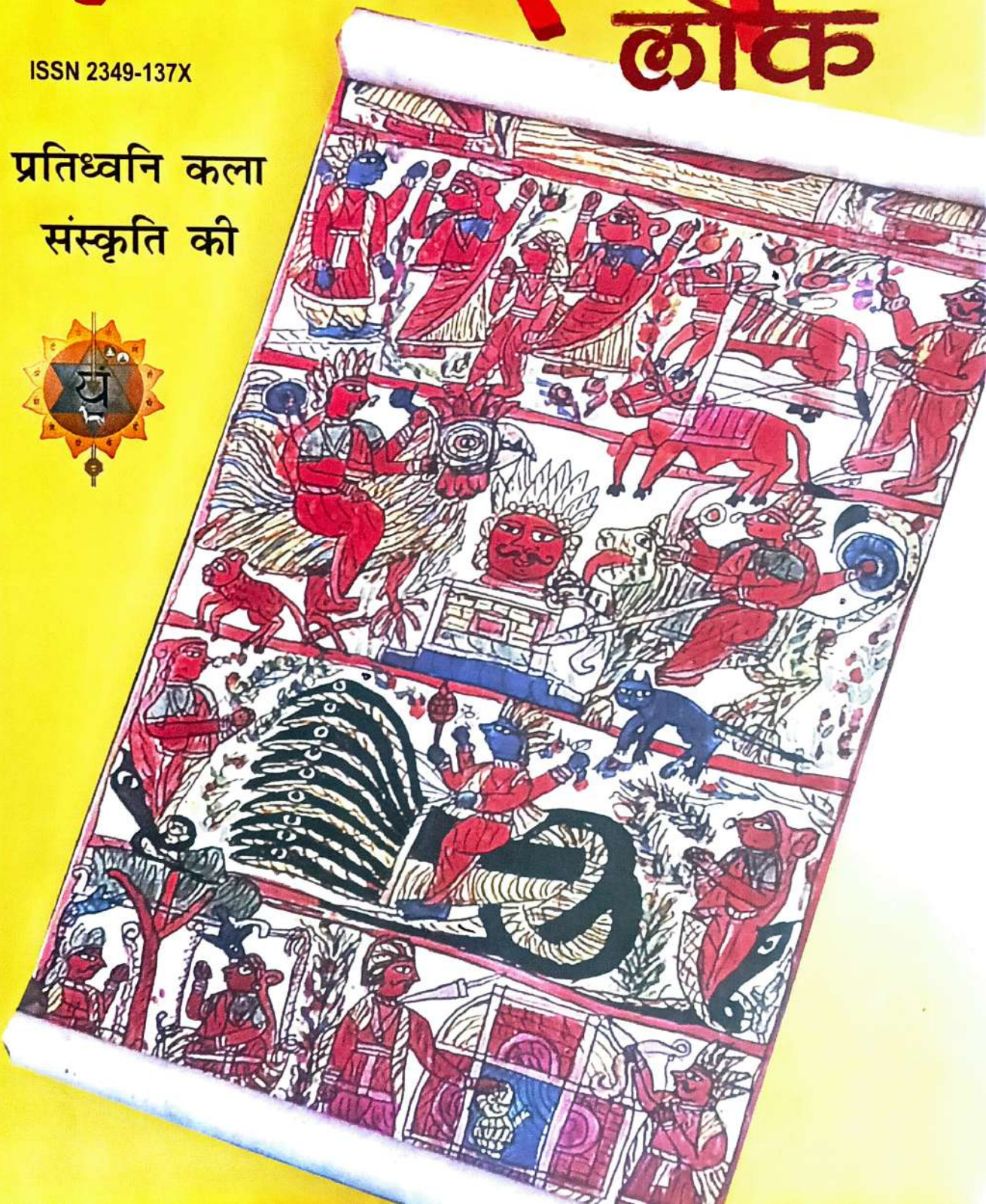

अनहद लोक

(प्रतिध्वनि कला संस्कृति की)

वर्ष-5, अंक-10

सम्पादक

डॉ. मधु रानी शुक्ला

सम्पादक मण्डल

डॉ. आशा अस्थाना, डॉ. राजेश मिश्र, डॉ. मनीष सी. मिश्र

व्यंजना

आर्ट एण्ड कल्चर सोसायटी

109 डी/4, अबूबकर पुर, प्रीतमनगर, सुलेमसराय,

इलाहाबाद - 211011

अनहद लोक

प्रतिध्वनि कला संस्कृति की

सम्पादक : डॉ. मधु रानी शुक्ला
सम्पादक मण्डल : डॉ. आशा अस्थाना, डॉ. राजेश मिश्रा, शाम्भवी शुक्ला

सम्पादकीय सहयोग एवं कला संयोजन : शाम्भवी शुक्ला
आवरण पृष्ठ : डॉ. आर.एस. अग्रवाल

मुद्रक : विकास कम्प्यूटर एण्ड प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

वितरक : पाठक पब्लिकेशन, महाजनी टोला, इलाहाबाद
फोन नं. 0532-2402073

प्रकाशक
व्यंजना
आर्ट एण्ड कल्चर सोसायटी
109 डी/4, अबूबकर पुर, प्रीतमनगर, सुलेमसराय,
इलाहाबाद
मो. : 9838963188, 9454843001
E-mail- melodyanhad@gmail.com
madhushukla-11@gmail.com
मूल्य : 200/- प्रति अंक
वार्षिकः 500/-
तीन वर्षः 1500/-
आजीवनः 20,000/-
पोस्टल चार्जेज अलग से

© सर्वाधिकार सुरक्षित

- रचनाकारो के विचार मौलिक हैं
- समस्त न्यायिक विवाद का क्षेत्रा इलाहाबाद न्यायालय होगा

मार्ग दर्शन :

पं. देबू चौधरी, डॉ. सोनल मानसिंह, प्रो. चित्तरंजन ज्योतिषी,
डॉ. कमलेश दत्त त्रिपाठी, पं. विश्वमोहन भट्ट, पं. भजन सपोरी, पं. रोनू मजुमदार, प्रो. ऋत्विक् सान्याल, प्रो. दीप्ति ओमचारी भल्ला,
पं. विजय शंकर मिश्र, पं. अनुपम राय, श्री एस. पी. सिंह

संयोजन सहयोग :

डॉ. के. शशि कुमार, डॉ. रामशंकर, डॉ. शान्ति महेश, डॉ. निशा झा

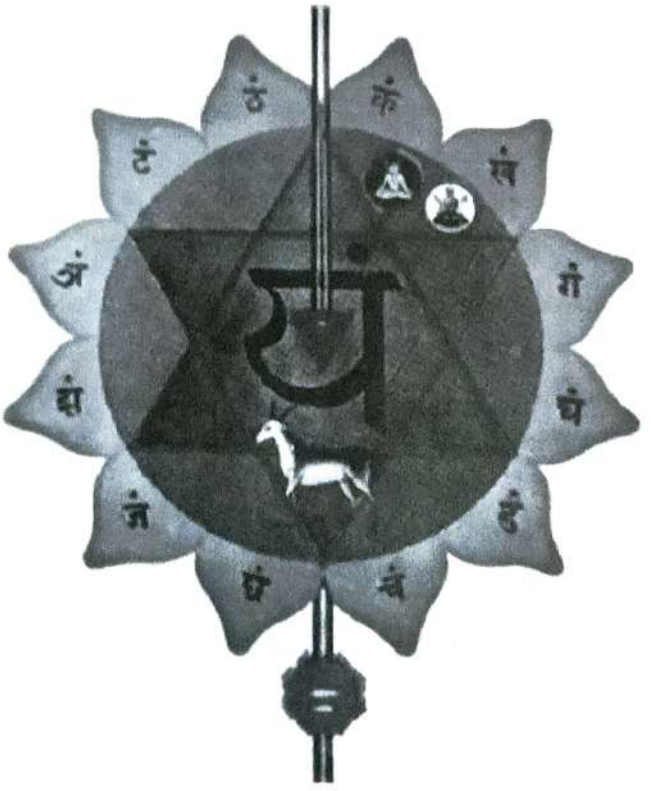

संगीत नाटक अकादेमी
के
सहयोग से प्रकाशित

संगीत नाटक अकादेमी

जगतः पितरौवन्देपार्वतीपरमेश्वरौ

आत्मात्वंगिरिजामतिसहचरा, प्राणांशरीरग हम्।
पूजातेविनियोगभोगरचना, निद्रासमास्थितिः।
संचारः पदयोप्रदक्षिणिविधि,स्तोत्राणिसर्वागिरो,
यदत्कर्म यज्ञोत्वरिवलंशुभआराधनं।।

भौतिकता से परे सब शून्य है निष्काम ज्ञानेन्द्रियों का चरमोत्कर्ष शिवत्व की प्राप्ति है अपारदर्शी 'शिव' जो ध्यानस्थ मुद्रा में लीन हैं तथा जिनका सम्पूर्ण शरीर ही योग, अध्यात्म, दर्शन लोक को प्रतिम्बित करता हुआ है दो आँखें जो केवल भौतिक जगत मात्र का ही दर्शन करती हैं, वहीं तीसरा नेत्र अर्न्तदृष्टि बोधक है जो मिथ्या जगत का त्यागकर वास्तविक जगत का दर्शन करने का सूचक है। शिव रहस्यवाद के प्रतीक सर्प को धारण करते हैं कुण्डलिनी का प्रतीक है कुण्डलिनी के सदृश्य ही जागृत अवस्था में अपनी वास्तविक शक्ति को दर्शाती है धैर्य, सजग, सक्रीय, जीवंत, ध्यान मुक्तनंदी की सवारी करते हुए शिव ने त्रिशूल जो इडा, पिंगला व सुषुम्ना जिनका भौतिक स्वरूप में विद्यमान न होकर भी उर्जा को नियमित गति प्रदान करनेवाले जीवन के मूलभूत तत्वों में द्वैत का प्रतीक हैं योग परंपरा में जिसे रुद्र, हर तथा सदाशिव कहा गया शिव का त्रिशूल तीन कष्टों दैनिक, दैविक व भौतिक के विनाश का सूचक है इसमें सत्, रजस तथा तमोगुज तीन शक्तियाँ है जिसे वैज्ञानिक संदर्भ में प्रोटान, न्यूट्रान व इलेक्ट्रान से जोड़ते हैं।

शिव का न आदि है न अंत एकादश रुद्रणियाँ, चौसठ योगिनियाँ तथा भैरवादि इनके सहचर व सहचरी है सर्वत्र व्याप्त शिव के दो मुख्य निवास स्थान काशी व कैलास है। शिव के कई रूप उमा महेश्वर, अर्धनारीश्वर, पशुपति, त्रिवासा, दक्षिणामूर्ति योगीश्वर रूप है भगवान शिव तो पार्थिव रूप में भी पूज्य है। शिवमिथ्या जगत का त्यागकर वास्तविक जगत का दर्शन करनेवाले त्रिनेत्र धारी है जो ज्ञान, रहस्य व समस्त उर्जा शक्ति के संचालक है तथा 'शक्ति' ब्रह्मा द्वारा सृजन, विष्णु द्वारा पालनव शिव द्वारा संहार की प्रेरणा शक्ति है जो विभिन्न रूपों में सृष्टि के समस्त तत्वों में व्याप्त है जब पुरुष रूप से उपास्य हुई तो ईश्वर, शिव भगवान नाम से संज्ञापित हुई और जब स्त्री रूप में पूज्य हुई तो ईश्वरी दुर्गा व भगवती कहीं गईं इस प्रकार अमेद्य इन्हें **"शिवः अभ्यान्तरे शक्तिः शक्तिअभ्यान्तरेशिवः"** अर्थात शक्तिशिव का शरीर तो शिव शक्ति की आत्मा कहा गया। सच्चिदानन्दशिव की परा शक्ति से चित्, चित् से आनन्द शक्ति, आनन्द शक्ति से इच्छा शक्ति, इच्छा शक्ति से ज्ञान शक्ति तथा ज्ञान शक्ति से क्रिया शक्ति का उद्भव हुआ जो समस्त सृष्टि की संचालक व निवृत्तकलाओं की जनक है। चित्र शक्ति से नाद व आनंद शक्ति से बिंदु का प्राकट्य बताया गया है इच्छा से 'म'कार प्रकट हुआ ज्ञान से ऊकार क्रिया शक्ति

से अकार का जन्म हुआ इस प्रकार ऊँ का जन्म हुआ। इसी महत्ता को सिद्ध करते हुए महा कवि कालीदास ने जगत मातृ पितृ स्वरूप में स्वीकार करते हुए उनकी वन्दना की–

वार्गथाविवसमप क्तौवार्गथाप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौवन्देपार्वतीपरमेश्वरौ।।

मध्यकाल में तुलसी ने भी कहा–

भवानीशंकरौवन्दे श्रद्धा विश्वासरूपण्ये।
याम्यांविना न पश्यन्तिसिद्धाः स्वान्तः स्थयीश्वरम।।

शंकर विश्वास तो भवानी श्रद्धा कही गई है दोनो की उपासना से ही परमात्म के दर्शन होते है। (कला जगत के अधिष्ठाता "शिव-शक्ति") समायोग जहाँ दैविय रूप में पूज्य माना गया वहीं लास्य भाव में कला जगत को नई दृष्टि प्रदान करता है। शक्ति जब लास्य करती है तो सृष्टि की रचना और शिव का नृत्य सृष्टिप्रपंच का संहारक है शक्ति सहित शिवसमर्थ हैं पर शक्ति बिनाशिव, शव हैं।

'सिन्धु घाटी' सभ्यता में प्राप्त वास्तु, मूर्ति के भग्नाव शेष हों या आधुनिक स्थापत्यकला, पारम्परिक लोक चित्र कला हो या मॉर्डन आर्ट शिव-शक्ति को सभी कलाकार ने अपनी कला से सजाया है। राग ध्यान परम्परा में शिव शक्ति समायोगाः कहकर रागो की उत्पत्ति का आधार माना गया शिव शक्ति विभिन्न कलाओं में भिन्न-भिन्न रूपों में व्याख्यायित किए गए वास्तुकला, चित्रकला, काव्य, संगीत, रंगमंच, लोक से शास्त्रीय जगत तक रचे गए अर्धनारीश्वर रूप तो कला संस्कृति, साहित्य, धर्म, समाज को एक नई दिशा प्रदान करता है वो योगियों के "शिव-शक्ति" आराधना से लोक जगत के साथ ही विपरीत लिंगीयों के भी आराध्य रहें हैं। शिव विश्व के रंगमंच है शक्ति रूप में अवतरण है शिव की शक्ति का अवतरण नाटक होता है शिव की तत्वता का अनूकरण है शिव बनकर ही शिव को पाने भी चेष्टा करता है जैसे भगवान की मूर्ति से निराकार ब्रह्म के सन्निकर पहुँचते हैं वैसे नट भी आकार रूप लेता है।

इन्हीं तथ्यों को उजागर करने हेतु दो दिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय अन्तर्विषयी संगोष्ठी कलाजगत एवं शिव शक्ति वैश्विक सन्दर्भ में पर आयोजित है। ये कलाएँ समस्त सृष्टि को जीवंतता प्रदान करती हैं। 'कालिदास एकेडमी' उज्जैन में दिनांक 29, 30 सितम्बर को आयोजित किया जा रहा है। "शिव-शक्ति" के समायोग से उत्पन्न समस्त आचार विचार, क्रियाकलाप सभी सामाजिक सरोकारों से सम्बद्ध है इन्हीं तत्वों को ध्यान रखते हुए दोदिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय अन्तर्विषयी संगोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें साहित्य में शिव शक्ति, वास्तुकला एवं शिव शक्ति, चित्रकला एवं शिव शक्ति, मूर्तिकला में शिव शक्ति, विश्व के प्रमुख शिव शक्ति मंदिर, संगीत में शिव शक्ति, जन-संवाद के माध्यम शिव शक्ति, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में शिव शक्ति, शिव शक्ति का समाज शास्त्रीय सम्बन्ध, लोकगीत, लोकगाथा, लोकनाट्य में शिव शक्ति, शिव शक्ति का दार्शनिक स्वरूप, शिव शक्ति एवं वैदिक सन्दर्भ, रहस्यवाद एवं शिव शक्ति, शिव शक्ति पर अकादमिक शोध कार्य पर आधारित प्रपत्रों को आमंत्रित किया।

–मधु रानी शुक्ला

अनुक्रम

1. हिन्दी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में शिव शक्ति का स्परूप	श्रीमती सीमा सेन	9
2. लोकगीत, लोकनाट्य में शिव शक्ति	डॉ. सुषमा पाठक	13
3. Shiva-Shakti in Music	Sutapa Dutta	17
4. संगीत में शिव शक्ति	डॉ. स्वाती तेलंग	20
5. Ardhnarieshwara Shivshakti1	Beena Sharma	22
6. विश्व के प्रमुख शिव शक्ति मन्दिर	उर्मि कड़ोतिया	28
7. विश्व के प्रमुख शिव शक्ति मन्दिर	विशाल शिन्दे	33
8. शिव शक्ति और उज्जयिनी	डॉ. जफर मेहमूद	36
9. आध्यात्म एवं संगीत का अंतः सम्बन्ध	सरस्वती नेगी	39
10. रागों के बंदिशों में शिव-शक्ति	शिवेष कुमार	42
11. रामायण एवं मानस में ललित कलाएँ	डॉ. रोमा अरोरा	46
12. Mystic & Philosophical Aspects of Shiva Shakti : A Scientific Approach	Dr, Gaveesh	48
13. Shiva Shakti : A Tradition in Music	Dr. Uma Vijay	52
14. Shiva-Shakti in the compositions of Muttuswamy Diksitar	Manjula Surendra, Dr. B.M. Jayashree	57
15. Rock of Jungheera, Lord Shiva'sAbode-inspiration for H.L.V. Derozio	Dr. Norhoh Nivedita Shaw	61
16. नारी के प्रति भगवान राम का आदर्श दर्शन	ơơơơơơơ	66
17. भारतीय संस्कृति के वाहक- राम	कुमारी जान्हवी बासू - डॉ. कावेरी त्रिपाठी	68
18. संगीत में शिवशक्ति (नृत्य के संदर्भ में)	अमित साखरे	72
19. भगवान राम और उनके आदर्श		76
20. Shiva Shakti, the eternal story of love and sacrifice	Bhujun Radhashtami	79
21. संगीत के जनकदाता : भगवान शिव	डॉ. चित्रा चौरसिया	81
22. Daivavyapashraya Chikitsa	Deepak S. Kulkarni*	84
	Ameya Niphadkar	84
23. "वैदिक वाङ्मय में शिव की अवधारणा : एक अध्ययन"	दिनेश कुमार मौर्य	89
24. विश्व के प्रमुख शिव मंदिर	डॉ. रंजीता	94
25. Gurbani Sangeet and Society	Jasmeet Kaur	98
26. भारतीय संगीत और शिव शक्तिः एक विश्लेष्णात्मक अध्ययन	डॉ. हर्षित वैयर	103

27. तंत्र तथा आगम साहित्य में संगीत और शिव शक्ति	डॉ. अंजलिका शर्मा	105
28. देवपुत्र बाल पत्रिका में शिव और शक्ति का चित्रण	ज्योति नाहर निर्देशक डॉ. उमा वाजपेयी	107
29. संगीत में शिव शक्ति	मिली वर्मा	110
30. साहित्य में शिव शक्ति	चित्रा	112
31. संगीत में शिव शक्ति (कथक के संदर्भ में)	नरेन्द्र कुमार ध्रुव	116
32. Shiv Shakti in the historical perspective	Nidhi	122
33. "शिव-शक्ति का समाज शास्त्रीय संबंध"	नूतन जड़िया	124
34. Śiva-Śakti in Universal Perspective'	Madhav Puranik	129
35. हर रूप महादेव (भारतीय शास्त्रीय संगीत के विशेष संदर्भ में)	डॉ. रीना सहाय	130
36. संगीत में शिवशक्ति	डॉ. गजानन रणदिवे	135
37. Shivshakti in Music	Shambhavi Rakesh Kumar Mishra	140 140
38. शिव शक्ति का एकात्मक स्वरूप एवं संगीत में शिव की महिमा	स्नेहा कुमारी	142
39. संगीत में शिवशक्ति	अभिवन गीताजंलि राम नारायण झा	145
40. संगीत में शिवशक्ति	डॉ. शोभा सिंह	148
41. भारतीय वाद्यों के चिन्तन में शिव शक्ति की अवधारणा-एक अध्ययन	शिखा	153
42. "भारत के प्रमुख ज्योतिर्लिंग की ऐतिहासिक विशेषता"	डॉ. लक्ष्मी ठाकुर	156
43. "वैदिक शिवतत्त्व-साम्प्रतिक परिप्रेक्ष्य में"	डॉ. लक्ष्मी मिश्रा	165
44. रामायण में श्री राम का भ्रात-प्रेम	डॉ. (श्रीमती) दीपमाला मिश्र	171
45. शिवरंग मय रामरंग	डॉ रामशंकर	177
46. भारतीय साहित्य के इतिहास का महाकाव्य 'रामायण' में भारतीय संगीतशास्त्र की महत्ता : गायन के विशेष सन्दर्भ में	शुचि उपाध्याय	187
47. सत्यंम शिवम सुंदरम "नटराज"	डॉ. वेणु वनिता	191
48. आधुनिक परिदृश्य में शिव शक्ति	डॉ. अश्विनी यादव	198
49. उत्तर भारत की लोकगायिका : बिन्ध्यवासिनी देवी	संगीता कुमारी	201
50. शिव शक्ति और संगीत	Dr. Namita Yadav	203
51. शिव और शक्ति का दार्शनिक स्वरुप	डा. उषारानी राव	207

हिन्दी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में शिव शक्ति का स्परूप

श्रीमती सीमा सेन

हिन्दी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

शक्ति शिव की अभिभाज्य अंग है। शिव नर के द्योतक है तो शक्ति नारी की। वे एक दूसरे के पूरक हैं। शिव के बिना शक्ति का अथवा शक्ति के बिना शिव का अस्तित्व ही नहीं है।

शिव अकर्ता है तो शक्ति संकल्प मात्र है शक्ति संकल्प सिद्धी करती है शिव कारण है शक्ति कारक है।

शिव सुसुप्ता अवस्था है, शक्ति जाग्रत अवस्था है। शिव सभी दैवों में महादेव है तो शक्ति, तो फिर सर्वविदित है शक्ति पार्वती है। शिव रूद्र है शक्ति महाकाली है। शिव सागर के जल के समान है शक्ति सागर की लहरें हैं।

शिव पुराण के अनुसार शिव-शक्ति का संयोग ही परमात्मा है। शिव की जो पराशक्ति है उससे चित् शक्ति प्रकट होती है। चित् शक्ति से आनन्द शक्ति का प्रादुर्भाव होता है, आनन्द शक्ति से इच्छा शक्ति का उद्‌भव हुआ है, इच्छा शक्ति से ज्ञान शक्ति और ज्ञान शक्ति से पांचवी क्रियाशक्ति प्रकट हुई है।

भगवान शंकर के अर्द्धनारीश्वर अवतार में हम देखते हैं कि भगवान शंकर का आधा शरीर स्त्री का तथा आधा शरीर पुरुष का होता है। यह अवतार महिला व पुरुष दोनों की समानता का संदेश देता है। समाज परिवार तथा जीवन में जितना महत्व पुरुष का है उतना ही महत्व स्त्री का भी होता है। एक दूसरे के बिना इनका जीवन अधूरा है, यह दोनों एक दूसरे को पूरा करते है। गाड़ी के दो पहियों के समान स्त्री पुरुष को माना गया है स्त्री के ना होने से पुरुष और पुरुष के ना होने से स्त्री उस प्रकार अधूरे है जिस प्रकार एक गाड़ी के दो पहिये होते है। भगवान शिव को अर्द्धनारीश्वर रूप प्रतीक है स्त्री पुरुष की समानता का।

भगवान शिव ही इस सृष्टि के अनादि देव हैं जिनकी महिमा का वर्णन, वेदों, पुराणों दर्शन, योग, तन्त्र आदि साहित्य में सर्वत्र मिलता है।

शिव के दर्शनों के लिये शास्त्रों में कितने ही कठिन व्रतों और तपों का विधान है। सभी में धैर्य व संयम आवश्यक है। पार्वतजी ने समस्त भोगों को त्यागकर एक हजार वर्ष तक मूल और फल खाकर फिर सौ वर्ष साग खाकर, फिर कुछ दिन जल और वायु का सेवन करक कठोर उपवास किया। फिर तीस हजार वर्ष तक भूमि पर गिरने वाले सूखे बेलपत्र खाए। इसके बाद तो सूखे पत्ते भी खाने छोड़ दिये (इसीलिये उनका नाम अपर्णा हुआ) तब जाकर उन्हें शिव पति के रूप में प्राप्त हुए। इसके पश्चात पार्वतजी स्वयं शक्ति बन गई और शिवत्व में लीन हो गई और परम शक्ति या पराशक्ति के नाम से जानी जाने लगी जिसे चित्त या शक्ति का स्वरूप भी कहा जा सकता है।

शाक्त पुराणों में शक्ति (परम तत्व) तथा भगवान शिव को अनुगामिनी बताया गया है। यदि ये कहा जाए कि शक्ति के प्रभाव से भगवान शिव भी नहीं बच पाए तो किसी प्रकार की कोई अतिश्योक्ति ना होगी।

"शिव अभ्यन्तरे शक्ति, शक्ति अभ्यन्तरे शिव।"

शिव और उनकी शक्ति दो भिन्न तत्व नहीं है ये एक ही की दो अभिव्यक्तियाँ मात्र है। संपूर्ण सृष्टि उसकी शक्ति का ही खेल है। शक्ति के बिना शिव भी शव रूप ही है। उसकी सम्पूर्ण क्रियाएँ शक्ति के द्वारा ही होती है। शिव के वक्षस्थल पर शक्ति का ही ताण्डव हो रहा है। शिव ही इस सृटि के अनादि शक्ति है जिससे सृटि का धारण पोषण हो रहा है। भारत का जन मानस जितना वैष्णव धर्म से प्रभावित है, उससे कहीं अधिक शैव धर्म से प्रभावित है। इससे ऐसा ज्ञात होता है कि शैव धर्म ही सृटि का आदि धर्म था तथा वैष्णव मत का प्रचार बहुत बाद में हुआ। भगवान शिव योगियों भक्तों, तात्रिकों, वेदान्तियों कर्मकाण्डियों उपासकों आदि में सर्वत्र पूजनीय हुए हैं। और जहाँ शिव है वहाँ शक्ति तो निचित ही विराजमान है। ये ही ज्ञान, कर्म व भक्ति के आदि शक्ति है।

शिव ही एकमात्र ईश्वर हैं जिन्हें सुर और असुर जैसी दो विपरीत शक्ति पूजती है और अपना स्वामी मानती है। दक्षिण में रामेश्वरम् से उत्तर में केदारनाथ और पश्चिम में नागेश्वर से पूर्व में वैद्यनाथ तक बारह ज्योर्तिलिंगों सारे देश में फैले हुए हैं। श्रृद्धालु इन बारह ज्योतिर्लिंग सारे देश में फैले हुए हैं। श्रद्धालु इन बारह ज्योतिर्लिंग के दर्शनों के लिये सारे देश में यात्राएँ करते है। ऐसी यात्राएँ देश की एकता और अखण्डता को सुदृढ़ करती है।

शिव को–

देवासुरगुरुर्देवः अर्थात् देवताओं एवं असुरों के गुरू एवं आराध्य।

देवासुरनमस्कृतः अर्थात् देवताओं तथा असुरों से वंदित।

देवासुरमहामित्रः अर्थात् देवताओं तथा असुरों के बड़े मित्र ॥

कहा गया है।

ब्रह्माजी ने मेथुन द्वारा सृष्टि की रचना का विचार किया। इसी विचार को लेकर ब्रह्माजी ने कठोर तप करना प्रारंभ कर दिया। उन्होंने तप द्वारा भगवान महेश्वर को प्रसन्न करने का विचार किया। शक्ति के साथ भगवान शिव के ध्यान में तत्पर हो, ब्रह्माजी कठोर तपस्या करने लगे। ब्रह्माजी के तप से प्रसन्न होकर शिवजी प्रकट हुए।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में कवियों और लेखकों ने आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक अनेकों काव्य रचनाएं शिव शक्ति से प्रभावित होकर की। उनमें सर्वप्रथम यदि हम आदिकाल का उल्लेख करें तो इस कालखण्ड में पृथ्वीराज चौहान ने तो शिव भक्त होने के कारण महोबा के राजा आल्हा और उदल से युद्ध के लिये जाते समय सिद्ध शक्तिपीठ वनखण्डेश्वर महादेव को बनवाया था। इन्होंने शिवपूजन के पश्चात अन्न-जल ग्रहण करने का नियम लिया था। जब रास्ते में इस स्थान पर पड़ाव डाला तब वनखण्डेश्वर में शिवलिंग की स्थापना करवाई, यहाँ ज्योति जलाई जो आज भी जल रही है। यह मंदिर ग्वालियर से महज अस्सी किलोमीटर दूर भिंड शहर के बीचों बीच स्थित है।

"पृथ्वीराज रासो" के रचयिता चंदबरदायी जिनको आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और मिश्र बन्धु ने हिन्दी का प्रथम कवि माना है, ये भी शैव मतानुयायी माने जाते हैं।

सिद्ध साहित्य में कवि सरहपा शैव मत से प्रभावित थे तथापि अनेक बार शिव शक्ति का उल्लेख इनके काव्य में प्राप्त होता है।

नाथपंथ शैवों का ही एक पंथ संप्रदाय था। नाथयोग का मूल आधार शिवोपदिष्ट महायोगज्ञान है और आद्यान्त इसी परम्परा को हमारे आदि गुरु महायोगीन्द्र मत्स्येन्द्रनाथ, शिवगोरक्ष महायोगी गोरखनाथ, जालन्धरनाथ, चौरंगीनाथ आदि नाथों ने स्वसंवेद्य परमात्मबोध अलखनिरंजन के साक्षात्कार के धरातल पर अपनी शिवमयी योगविभूति से प्राणान्वित कर लोककल्याण और आत्महित की सिद्धि की। गोरखवानियों में सर्वत्र ही शिव-शक्ति का सामरस्य एवं असंख्य कलायुक्त शिव को सहस्त्रार में ही देखने का संदेश दिया गया है।

विद्यापति शिव और शक्ति दोनों के प्रबल भक्त थे। शक्ति के रूप में उन्होंने दुर्गा काली, गंगा गोरी आदि का वर्णन अपनी रचनाओं में यथेष्ठ किया है। भक्त सम्प्रदाय में विद्यापति को वैष्णव और शैव भक्ति के सेतुबन्धु के रूप में स्वीकारा जाता है। विद्यापति की भक्ति प्रधान पदों की संख्या लगभग अस्सी मानी जाती है। जिनमें शिव-पार्वती लीला, दुर्गा-काली भैरवि, जानकी, गंगा-वन्दना रामवन्दना आदि शामिल हैं। शैवसर्वस्वसार, दुर्गाभक्तितरंगिणी, शिव-विवाह संबंधी रचनाओं में विद्यापति ने शिव-शक्ति का वर्णन किया है।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में अपभ्रंश और लोकभाषा दोनों में शिव शक्ति का उल्लेख प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। जैन कवि पुष्पदंत ने अपने काव्य ग्रंथ णयकुमार चरित्र में शिव द्वारा मदनदहन तथा ब्रह्मा के शिरोच्छेद की कथा का वर्णन किया है।

इसके अलावा प्राकृत पेंगलम में भी अनेक स्थल है जहाँ शिव के विराट स्वरूप का स्वतंत्र रूप से वर्णन उपलब्ध है।

भक्ति भावना से प्रेरित माने जाने वाले जैन साहित्य के दसवीं सदी के कवि गंधर्वराज पुपदंत बहुत ही बड़े शिव भक्त थे। उनका शिवमहिम्न स्त्रोत अत्यन्त ही मनोहर स्त्रोत है। यह शिव स्त्रोत भगवान शिव को बहुत प्रिय है।

भक्तिकाल के सगुण भक्तिधारा के प्रतिनिधि कवि, रामभक्त कवि गोस्वामी तुलसीदास जी ने **"विनय पत्रिका"** में शिव के प्रति भक्ति भाव से ओतप्रोत अनेक पद रचना की। एवं पार्वती मंगल जैसे स्वतंत्र ग्रंथ में शिव-विवाह की कथा को प्रथम बार लोकभाषा में प्रबन्धात्मक रूप प्रदान किया। तुलसीदास जी कृत **'रामचरितमानस'** नामक महाकाव्य जिस पर अनेकों शोध कार्य हो चुके है। ये आधार ग्रंथ है जिसके द्वारा तुलसीदास जी ने रामकथा को शैव परिवेश प्रदान किया। 'रामचरित मानस' के आरंभ में ही शिवकथा कही गई है। रामचरित मानस के मध्यम में भी प्रसिद्ध शिवस्तुति की गई है, और शिव-उमा संवाद को भी दर्शाया गया है। भगवान श्रीराम द्वारा माता सीता को रावण की लंका से मुक्त कराने का दृष्य मिलता है, जिस पर अलग-अलग रचनाएं की गई है। जिसमें श्री राम के द्वारा शक्ति पूजा का वर्णन भी उल्लेखित है।

प्रबन्ध काव्यों में पं. गोरीनाथ शर्मा का दोहा चौपाई छंद में रचित शिव पुराण महाकाव्य शिव-शक्ति का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।

भक्तिकाल के सगुण भक्ति धारा के कृष्ण भक्त कवि, महाकवि सूरदासजी ने अपने काव्य सूरसागर में अंतर्कथा के रूप में शिव जीवन के अनेक प्रसंगों को गिति प्रबन्ध का रूप देकर प्रस्तुत किया है।

सूफी कवि मलिक मोहम्मद जायसी ने शैव मत से प्रभावित होकर पद्मावत नामक महाकाव्य की रचना की। इसमें जायसी ने शैव तत्वों का प्रतिपादन किया। उन्होंने महाकाल में राजा रत्नसेन को शिव के अनुग्रह से ही सिद्धि दिलाई।

रीतिकालीन कवियों में प्रायः सबसे शिव सम्बन्धी काव्य प्रणयन किया जिनमें केशवदास, देव पद्माकर, भिखारीदास और भूषण प्रमुख है।

भक्तिकाल में मिथिला के कवि कृष्णदास, गोविन्द ठाकुर ने स्वतंत्र रूप से शिव महिमा का गुणगान किया।

भगवान शंकराचार्य द्वारा स्थापित अद्वैत सम्प्रदाय परम्परा में जो सर्वश्रेष्ठ आचार्य हुए है, उन्हीं में से एक अप्पय दीक्षित भी है। केवल भारतीय साहित्य ही नहीं, इन्हें विश्वसाहित्यकार का एक देदीप्यमान नक्षत्र कह सकते है। शिव भक्त अप्पयदीक्षित मुगलों के शासनकाल के माने जाते हैं। ये परम शिव भक्त थे। इनका हृदय भगवान शंकर के प्रेम से भरा हुआ था। अतः शैव सिद्धान्त की स्थापना के लिये अप्पय दीक्षित ग्रन्थ रचना करने लगे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये इन्होंने 'शिव-तत्व-विवेक' आदि पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थों की रचना की।

आनन्दाभिलाषी जीव को संसार सागर से उतारने के लिये शिव-तत्वागमन की सुदृढ़ पोत है। उपनिषदों में विषद रूप से इस तत्व का विवेचन है।

वेदों में भी शिव तत्व का उल्लेख प्रायः मिलता है। श्वेताश्वत रोषनिषद के प्रारंभ में ब्रह्मा के वे संबंध में जिज्ञासा उठाई गई है। पूछा गया है कि जगत का कारण जो ब्रह्मा है, वह कौन है?

'किं कारणं ब्रह्म'

जनश्रुतियों के अनुसार आगे चलकर इस 'ब्रह्म' शब्द के स्थान पर रूद्र और शिव शब्द का प्रयोग किया है–

'एको हि रूद्रः।

स शिव।

हिन्दी साहित्य में समय बीतने पर भी शिव भक्तों की श्रेणी में कोई कमी नहीं आई।

छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद कृत 'कामायमी' महाकाव्य में शैवों के प्रत्यभिज्ञा दर्शन का प्रचुर प्रभाव है। तथा इसमें शिव के नटराज रूप के अतिरिक्त उनके सृष्टिरक्षक सृष्टिसंहारक सृष्टि की मूल शक्ति एवं महायोगी रूप का जो भी भव्य और उदात्त वर्णन किया है। इसमें श्रृद्धा के सहयोग से इच्छा क्रिया और ज्ञान सामरस्य कर शास्वत शिवोनंद प्राप्त करने का दिव्य संदेश मानव को दिया है। नारी पुरुष की प्रेरक शक्ति है उसे कर्तव्य बोध कराती है।

रामानंद तिवारी (भारती नंदन) कृत 'पार्वती' महाकाव्य। इसमें शिव-शक्ति के बारे में वर्णन किया है। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की 'राम की शक्ति पूजा' के अनुसार कुबेरनाथ राय ने उन्हें अकेले ऐसे शाक्त कवि कहा है जिन्होंने शिव-शक्ति का विस्तृत उल्लेख अपने इस कविता में किया है। इस कविता की कथा पौराणिक है, परन्तु निरालाजी ने उसे सर्वथा मौलिक रूप में प्रस्तुत किया है। रावण की सहायता शक्ति कर रही थी अतः श्रीराम उसे पराजित ना कर सके और निराशा से युक्त हो गये। जाम्बवंत के द्वारा शक्ति की पूजा का सुझाव राम को दिया गया और श्रीराम ने शक्ति की साधना कर विजयश्री का वरण किया।

"शक्ति की करो मौलिक कल्पना करो पूजन।
छोड़ दो समर जब तक न सिद्धि हो, रघुनंद॥"

श्रीराम ने शक्ति का आव्हान किया और अन्त में शक्ति ने प्रसन्न होकर श्रीराम को विजयी होने का दर प्रदान किया।

हिन्दी के महत्वपूर्ण शायर है दुष्यंत कुमार इन्होंने भी एक कंठ विषपाई खण्डकाव्य लिखा है और उसमें शिव की तपस्या का चित्रण किया है।

विद्यानिवास मिश्र ने अपने ललित निबंधों के माध्यम से शिव शक्ति का वर्णन किया है।

मैथिलीशरण गुप्त ने **'साकेत'** महाकाव्य में शिव का वर्णन किया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रो. भगवतशरण उपाध्याय और कुबेरनाथ राय आदि लेखकों ने ललित निबंध के माध्यम से शिव-शक्ति का विस्तृत परिचय करवाया है।

नरेश मेहता की **'संशय की एक रात'** में कवि ने श्री राम के भीतर मन की स्थिति का चित्रांकन के द्वारा आधुनिक मनुष्य की चिंता प्रकट की है।

रामधारी सिंह दिनकर का निबंध 'अर्द्धनारीश्वर' शिव-शक्ति पर आधारित निबंध है।

संदर्भ ग्रंथ

1. श्रीवास्तव ओमप्रकाश, शिवांश के शिव तक, कैलाश मानसरोवर यात्रा में शिवतत्व की खोज संस्करण : 2015
2. चतुर्वेदी पं. ज्वालाप्रसाद, श्री शिव महापुराण, संस्करण : 2014
3. शिवोपासनांक, सरसठवें वर्ष का विशेषांक, गीताप्रेस गोरखपुर
4. श्रीवास्तव जितेन्द्र, भारतीय समाज की समस्याएं और प्रेमचन्द, संस्करण 2010
5. शर्मा रामविलास, निराला की साहित्य साधना
6. निराला सूर्यकांत त्रिपाठी, 'राम की शक्तिपूजा'

लोकगीत, लोकनाट्य में शिव शक्ति

डॉ. सुषमा पाठक

एसो. प्रो. अध्यक्ष (संगीत विभाग) जु. देवी गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कानपुर

हिन्दु धार्मिक परम्पराओं के अनुसार संगीत के जन्म के सन्दर्भ में मान्यता है कि संगीत का ज्ञान सर्वप्रथम ब्रम्हा ने शिव को दिया, शिव ने विद्या, बुद्धि एंव कला की अधिष्ठात्री सरस्वती को दिया। सरस्वती ने नारद ने भरत, हनुमान आदि ऋषियों को तत्पश्चात् संगीत का प्रचार भूलोंक में हुआ।

प्राचीन कला में संगीत के स्थान पर गान्धर्व शब्द का प्रयोग मिलता है। वाल्मीकि 'रामायण' में लवक्ुा के रामायण गान'' के लिये जो गान्धर्व शब्द प्रयोग आया है। वह गायकों के रूप में लिया गया है।

पुराविदों के अनुसार संगीत कला तथा शास्त्र का उद्भव स्वयम्भू परमेवर से हुआ है। भारतीय परम्परा के अनुसार नटराज शिव नृत्य कला के आदि स्त्रोत है तथा भगवती सरस्वती गीत तथा वाद्य कला की प्रवर्तिका है। दन्तिल के अनुसार गान्धर्व के आदि प्रवचन कार स्वयंभू ब्रम्हा है। ''नाट्यशास्त्र के अनुसार गान्धर्व के तत्वों को समाहित करने वाला नाट्यवेद स्वंय ब्रम्हा की रचना है। नृत्यकला का ताण्डव और लास्य रूप भगवान शिव तथा पार्वती की देन माना जाता है।

कलाओं का उद्देय भावनाओं के उत्कर्ा द्वारा कराना है। यह रसानुभूति-नृत्य गीत आदि में होने से मिलती है। स्वर, ताल और लय, मन और मस्तिक में गहरा प्रभाव छोड़ते है। इसलिये संगीत को श्रेष्ठ कलाओं में गिना जाता है। शास्त्रीय संगीत में तकनीकी विशेषताए अधिक आ जाने से संगीत के समान वह जनमन को आकर्षित करने की क्षमता नही रखता। लोक संगीत सहज ग्राहा होने के कारण शीघ्रता से हर उम्र के इन्सान को आकर्षित रहता है। जीवन से जुड़ी हुई स्थितियां शादी, उत्सव, आनंद दुखः अलग-अलग अवसर पर अलग-अलग गीत अपने-अपने प्रांत के लोग मिलकर लोग गाते है। और रस की वर्षा करने लगते है। सरल शब्दावली हर एक की समझ में आ जाती है, जो अपने अर्थ से श्रोताओं को तन्मय कर देती है। लोक संगीत में धुन छोटी होती है। और धुन फैलाव की कोई सीमा नही रहती। इसलिये लोक संगीत मनुष्य को अधिक आकर्षित करता है। अलग-अलग अवसरों पर अलग-अलग गीत अपनी सरल स्वरावली और शब्दावली के कारण इन्सान की आत्मा से जुड़ जाते है। जन्म से लेकर मृत्यु तक के गीत इतनी स्वच्छदंता पूर्वक प्रकट होते है, कि मनुष्य अपने समाज और मिट्टी से अनायास ही जुड़ जाता है। व्यक्ति और समाज के सुख तथा दुःख का प्रतिबिम्ब लोक संगीत है।

लोक संगीत का छंद छोटा होता है, परंतु भाव के अनुकूल होने से वह मन-मस्तिष्क पर पूरा प्रभाव डालता हैं भावों की सरलता के कारण लोक संगीत कभी पुराना नहीं लगता, वह सदाबहार है। गायक और श्रोता के बीच सीधा जुड़ाव होने के कारण भाव सम्प्रेषण की प्रक्रिया में लोक संगीत सबसे अधिक

सक्षम है। लोक संगीत से प्रभावित होकर ही रवीन्द्रनाथ टैगोर जी ने एक नई गान पद्धति का निर्माण किया।

लोक संगीत अपनी परंपरागत कला को जीवित रखता है। जाति, समुदाय, धर्म पर्व और राष्ट्रीयता की चेतना कायम रखते हुए लोक संगीतकार अपने भावों को उत्साह के साथ प्रकट करते हैं। लोक संगीत की यही प्रेरक शक्ति सामाजिक उत्थान में सहायक सिद्ध होती है। लोक संगीत के कलाकार सहज मन से प्रेरित होकर संवेदनशील होते है। और अपने सुख दुख भूलकर आनंदमय हो जाते है। यही उसका मानसिक धरातल, सृजनात्मक शक्ति से ओत प्रोत होकर नव स्फूर्ति एवं नव रस का संचार करता है। लोक गीत से विविध प्रांतो की संस्कृति दिखाई देती है। जो विविध प्रांतो को एकत्रित करके अपनी अपनी संस्कृति का प्रदर्शन करती हैं।

लोक संगीत में ढोलक के गीत, प्रांतों में प्रचलित गीत, गावों में विशेष उत्सवों पर गाए जाने वाले गीत आल्हा, भजन, फिल्मी गीत, गजल कब्बाली, दादरा, होरी, बिरहा, बारहमासा आदि अनेक प्रकार के गीत आ जाते है। वैसे ही मिर्जापुर में कजरी मारवाड में मांड, पूर्वी उत्तर में बिदेसिया, बिहुला आदि बहुत प्रचार में है।

आज जहां हर तरफ पाश्चात्य संगीत फैलता जा रहा है। वहां हमारा लोक संगीत लुप्त होता जा रहा है। परंतु आज भी ऐसे कलाकार है, जो अपनी लोक संस्कृति को संजोए रखे हुए है उन पर अपनी लोक धुनों के आगे विदेशी धुनों का कतई प्रभाव नहीं पड़ता है।

मां की ममता, मृत्यु का विवाद, दीन की करूणा, ईर्ष्या, राग-द्वेा उल्लास, कामना क्रोध, अहम् शमद, लोभ, मोह, आशा, निराशा, सभी का दिग्दर्शन लोक संगीत में सहजता से होता है। अपने इस भाव पक्ष की प्रधानता के कारण लोक संगीत पूरे संसार में लोकप्रिय हैं।

भारतीय परंपरा है कि ब्रह्मा द्वारा कैलासपति भगवान शंकर ने संगीत को सुचारू रूप में संसार के सम्मुख रखा और नारद ने उस संगीत को विद्या और कला की देवी सरस्वती, जो श्वेत पदम् पर आसीन एक हाथ में वीणा लिए और दूसरे से उसे बजाती हुई अंकित की जाती है, उनसे ग्रहण कर उसे स्वर्ग और भू पर प्रसारित किया। इसी से स्वर्ग और पृथ्वी पर एक रूप से विचरण करने वाले महर्षि नारद की भी कल्पना सदैव वीणा पर गाते हुए ही की गई है।

इंद्र की सभा तो संगीत-विशारदों से सदैव पूर्ण मानी गई है। गंधर्व गायक होते है, अपसराएं नृत्य करने वाली है और किन्नर लोग वादक है इस प्रकार भारतीय संगीत के अंतर्गत गायन, वादन और नृत्य, इन तीनों का समावेश होता है। शास्त्रकारों ने 'संगीत' शब्द की व्याख्या ही ऐसी की है–

गीत वाद्यं तथा नृत्य त्रंय संगीत मुख्यते।

(संगीत रत्नाकार, 1-1-21) गायन, वादन और नृत्य, ये संगीत की तीन शाखाएं है। भारत में नृत्य और नाट्य परस्पर संबंधित माने गए है। शास्त्रकारों ने इन कलाओं को परस्परालंबी बतलाया है।

नृत्यं वाद्यानुगं प्रोक्त वाद्यं गीतानुवर्तित च।

परंतु संगीत के अंतर्गत इन तीनों में से गान को ही प्रधानता दी है। सम्यक प्रकार से अर्थात् स्वर, ताल, शुद्ध उच्चारण हाव-भाव और शुद्ध आदि के साथ हो गया जाए, उसी का नाम संगी हैं

सम्यक् प्रकारेण यद् गीयते तत्संगीतम्।

प्राचीन भारतीय प्रबुद्ध ऋषियों, मनीषियों एवं दृष्टाओं ने सृष्टि की उत्पति ही नाद-ब्रह्म वाचक है और इसी नाद-ब्रह्म से संगीत की उत्पत्ति है। ब्राह्मंड की प्रत्येक चराचर वस्तु में नाद व्याप्त है। अतएव इस नाद को 'नाद-ब्रह्म' संज्ञा दी गई है। इसी से राजयोगी महाराज भर्तृहरि ने अपनी पुस्तक 'वाक्यपदी' में नाद को ही ब्रह्म माना है।

भारतीय संगीत के मुख्य तीन प्रकार है शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत एवं लोक संगीत। शास्त्रीय संगीत वह है जो शास्त्र के अनुसार नियमबद्ध होकर प्रस्तुत हो, लोक संगीत उसे कहा जायेगा, जो

कि साधारण व्यक्ति द्वारा भी गाया जा सकें। शास्त्रीय संगीत में ध्रुपद, धमार ख्याल ठुमरी दादरा प्रमुख शैलियां मानी जाती हैं भजन गीत की प्रस्तुति सरल सुगम संगीत के अन्तर्गत आती है।

लोक संगीत हमारी संस्कृति एवं लोक जीवन का दर्पण हैं। किसी भी देश एंव क्षेत्र का लोक संगीत उस देश की अमूल्य निधि है। लोक संगीत मानव हृदय की गहनतम अनुभूतियों और भावनाओं को व्यंजित करने का प्राचीन काल से ही उत्कृष्ट माध्यम रहा हैं।

वैदिक काल में संगीत की दो धारायें प्रवाहित हुई-शास्त्रीय संगीत एवं लोक संगीत। उस काल में संगीत कोई भी हो आध्यात्म से जुड़ा था, क्योंकि संगीत का आधार धर्म था। लोगों का विश्वास था ईश्वर की सत्ता संगीत से पृथक् नहीं है, अतः उस परमात्मा की प्राप्ति संगीत द्वारा ही संभव हैं। संगीत में नये गीतों की रचना तथा शास्त्रीय संगीत को परिष्कृत रखना तत्कालीन कलाकारों का उत्तरदायित्व था। इसके अतिरिक्त समाज के अन्य वर्ग भी इसमें भाग लेते थे, चाहे वे संगीतज्ञ न भी हो।

लोक संगीत का सामान्य अर्थ है–''लोको का संगीत'' जिसे आज परम्परा का रक्षक सहेजने वाला कहा जाता है। यह देशी संगीत का एक प्रकार है। जिस प्रकार संगीत के अन्तर्गत गायन वादन एवं नृत्य का समावेश होता है। उसी प्रकार लोक-संगीत के अन्तर्गत लोक-संगीत के अंतर्गत लोकगीत, लोक वाद्य एवं लोक नृत्य का समावेश होता है।

लोक-संगीत सरल, सुलभ एवं परिवर्तनशील है क्योंकि इसका मुख्य आधार लोक रूचि हैं। विभिन्न क्षेत्रों की परम्पराएं, रीति-रिवाज, आचार-विचार, भाषा, संस्कार, व्यवहार, तौर-तरीके, विश्वास, रूढ़ियां, धार्मिक अनुष्ठान आदि की समान प्रवृत्तियों के दर्शन वहां की लोक संगीत में होते हैं। अतः इसके वाद्य लोक-मानस की आवश्यकताओं के अनुरूप सीमित प्राकृतिक उपादानों से सहज रूप में निर्मित कर लिये गये जो प्रकृति से साम्य रखते हैं। जैसे-बांस का इकतार, चिमटा, डमरू, शंख, खंजरी, मंजीरा, ढोल या ढोलक, नगाड़ा, अलगोजा, थाली, घंटा, मुखचंग, कठताल, तुरही, बीन आदि। शास्त्रीय संगीत में वाद्ययंत्रों का निर्माण भी शास्त्रीय विधि द्वारा हुआ, जिनमें तानपुरा, सितार, सरोद, इसराज, वीणा, सारंगी बाँसुरी, मृदंग या पखावज तथा तवला आदि प्रमुख हैं।

लोक संगीत और शास्त्रीय संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध बहुत गहरा व अटूट है, दोनों ही पक्ष अनादिकाल से एक-दूसरे के समकक्ष चलते आये है और एक-दूसरे से प्रेरणा लेते हैं। शास्त्रीय संगीत की कुछ ऐसी रागें है जैसे सारंग, भूपाली, देस, पीलू काफी माँड, पहाड़ी आदि जो मूलरूप से लोक-धुन थी। उनका विश्लेषण करके उन्हीं के आधार पर इन रागों का निर्माण और विकास हुआ। लोक-गीतों के कुछ प्रकार जैसे बनारस की कजरी आदि शास्त्रीय संगीत के बहुत करीब है। शास्त्रीय संगीत के उपादान स्वर, लय, ताल तथा लोक संगीत के उपादान शब्द, लय, भाव और भाषा है। लोक संगीत में अनेक ताल जैसे दादरा कहरवा आदि का विकास होने के उपरान्त शास्त्रीय संगीत में प्रयोग हुए।

संगीत नाट्य के आदि प्रवर्तक भगवान शिव है। शास्त्रों में कहा जाता है कि भगवान शिव ने नृत्य करने के बाद उन्होने डमरू बजाया था। डमरू की ध्वनि से ही शब्द ब्रम्ह-नाद हुआ है। यही ध्वनि चौदह बार प्रतिध्वनित होकर व्याकरण शास्त्र के वाक् शक्ति के चौदह सूत्र हुये। नृत्य में ब्राम्हाड का छन्द, अभिव्यक्ति का स्फोर्ट सभी कुछ इसी में निहित है। शिवजी का नृत्य तांडव है और पार्वती जी का लाक्ष्य। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के अनुसार लाक्ष्य का अर्थ लीला है। स्त्री-पुरुष के आपसी मनोभावों के आधार पर होने वाली लीला लाक्ष्य है।

कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में शिव का नृत्य का वर्णन करते हुये लिखा है, कि यह नाट्य देवताओं को सुहावना लगने वाला यज्ञ है। पार्वती के साथ विवाह के अन्नतर शिव ने अपने शरीर में इसके दो भाग कर दिये थे। पहला ताडव और दूसरा लाक्ष्य कहलाया। शिव के आनन्द तांडव के साथ ही

सृजन का आरम्भ होता है और रोद्र रूप में तांडव के साथ सम्पूर्ण विश्व पुनः शिव में समाहित हो जाता है।

विभिन्न प्रान्तों में प्रादेषिक संस्कृति के अनुसार विभिन्न अवसरों पर गायन, वादन एवं नृत्यों के प्रस्तुतीकरण को लोक संगीत कहते है। लोक संगीत के सन्दर्भ में पं. ओंकार नाथ ठाकुर का मत है—देशी संगीत की पृष्ठभूमि ही लोक संगीत हैं। रवीन्द्र नाथ टैगोर के मतानुसार-संगीत का सुखद संदेश ले जाने वाली कला ही लोक संगीत हैं।

शास्त्रीय संगीत के अंतर्गत सात्विक विचारशीलता तथा विकसित शास्त्रीय तत्व की नियमबद्धता का आधिक्य होता है। शास्त्रीय संगीत की मुख्य विशेषता राग-नियम है।

पश्चिम में संगीत के लिये म्यूजिक शब्द का प्रयोग किया गया है। म्यूजिक शब्द की व्यूत्पत्ति ग्रीक मौसिक से मानते है। वस्तुतः म्यूज शब्द मूल है। ग्रीक परम्परा में यह उन देवियों के लिये प्रयुक्त संज्ञा है, जो विभिन्न ललित कलाओं की अधिष्ठात्री मानी जाती है। ग्रीक पुराण कथाओं में इनका सम्बन्ध उस चतुर्वणीय उत्सव से भी जोड़ा जाता है जिसमें सम्भवतः गायन और वादन स्पर्धा आयोजित की जाती थी। उसी हैलीकोन पर्वत पर रहने वाली अनेक देवियाँ उसमें भाग लेती थी।

अरबी परम्परा में संगीत का समानार्थी शब्द 'मूसीकी' है। इसकी व्युत्पत्ति 'मूसिका' शब्द से मानी जाती है। ''भूमिका यूनानी भाषा में आवाज को कहते है। इसलिये 'इल्पे मूसीकी' (संगीत कला) 'आवाजों' यानी रागों का इल्म कहलाने लगा।

संगीत एक टेक्नीकाल तत्व है (सूत्र) जो प्राय गायन, वादन और नृत्य के रूप में प्रयुक्त होता है, इन तीनों कलाओं के संयुक्त रूप को ही संगीत कहते है। अतः गायन, वादन और नृत्य तीनों के सम्बन्धि रूप का नाम ही संगीत है। 'व्याहारिक रूप में आप चिन्तन कीजिये कि जब गायक गाता है तो उसे आधार स्वर के लिये वाद्य की आवश्यकता होती है ताल के लिये भी वाद्य आवश्यक है। ऐसे ही वादन कला में भी कलाकार जब अपनी कला प्रदर्शन करता है। तो वह स्वर के लिये गुनगुनाता है क्योंकि भाव के साथ ही प्रदर्शन का महत्व हैं नृत्य में तो गायन लय का प्रत्यक्षः महत्व हैं।

Shiva-Shakti in Music

Sutapa Dutta

1. INTRODUCTION

a) What is Music:

Music (Sangeet) is a part of lalit-kala where the swar, laya and taal are perfectly balanced to each other. Which means Sangeet is a combination of "Gayan, Vadan and Dance".

Indian society and culture are primarily based on religion. Music as well as musical instruments are having relations with religion. Mata Saraswati the goddess of wisdom carries Veena. Similarly God Vishnu carries Shankha and Flute by God Krishna. Lord Shiva prefers Damru. At Swarg Gandharva sings, Kinnara plays instruments and Apsara performs dance. It is told about musical instruments that,

"Tatang wadyam Tu Devanang
Gandharvanangcha Shosiram
Anandhang Rakshasanangtu
Kinnaranang Ghanang Binduha"

It means that Tat Vadya is related to God, Sushir Vadya to Gandharva , Avanaddha to Rakshasa and Ghana is related to Kinnara.

b) How it is created: A Historical Explanation.

The origin of music is believed to be happened with the origin of Universe. Different opinions regarding the source of Music are as under.

Bramha-ji creates four Vedas named Rig Ved, Jajur Ved, Sam Ved and Atharv Ved with his four faces. Music is originated from Sam Ved. The Sangeet which gives us freedom is created by God Bramha and presented by Bharat muni before Lord Shiva.

Sangeet is created by God Bramha which is forwarded to Lord Shiva and then to Goddess Saraswati and finally to Narad muni who teach, it to Gandharva, Kinnara and Apsara. The saints who are experts in music circulate it on earth.

Narad muni had performed 'Yoga-Sadhana' for years long after which he was blessed to get the knowledge of music by Lord Shiva.

Having seen the 'Sayan-Mudra' of Goddess Parvati, Lord Shiva has created the 'Rudra-Veena' and originate five raagas from his five faces.

i. Raag Bhairav from eastern face.
ii. Raag Hindol from western face
iii. Raag Megh from northern face
iv. Raag Deepak from southern face
v. Raag Shree from face towards sky.

The sixth raag originated from Goddess Parvati was Koushik.

c) Two different genre of music:

There are two different genre of music, Hindustani Sangeet and Carnatic Sangeet which are preferentially used in northern and southern part of India respectively.

In Carnatic genre the raagas based on lord Shiva are Shiva- Shakti, Panthuvarali, Kedaram, Hindolam, Bhupalam, Kirawani and Revati. The favorite Carnatic raag of lord Shiva is Kharaharpriya which is similar to raag Kafi of hiindustani genre. Similarly the raagas based on Shakti in Carnatic genre are Saveri, Aaaheri, Dhanyas, Bhairavi, Mukhari, Arabhi etc.

In Hindustani genre the raagas besd on Lord Shiva are Kedar, Shankara and Bhairav. Raag Bhairav represents the music for Tandava which is a manifestation of Lord Shiva. Raag Durga and Bageshree are based on goddess Durga (Shakti) and raag Shree and Bhairavi are based on goddess Parvati(Another form of Shakti).

2. Definition of Shiva-Shakti—An Explanation:

Shiva-Shakti represents the power of transformation of energy as well as destruction of evil forces. Shiva is representing the masculine form and Shakti feminine. Shiva is consciousness whereas Shakti (Parvati or Durga) is the activating force. When Shiva and Shakti unite, it creates spiritual enlightments. It also results destruction of evil forces for the sake of transformation of new energy and power. Shiva and Shakti can also be resembled as Purusha and Prakriti. Shiva (Purusha) is pure consciousness representing unchanging, unlimited observer. He provides the paternal love of God and gives us clarity and direction of our life. Shakti on the other hand represents power, energy and nature. She contains the whole kingdom and provides nourishment in motherly manner and provides warmth, caring and protection.

Hence it is truly told that there is no Shiva without Shakti and Shakti without Shiva. The two are one in themselves. When Shiva and Shakti combine it results new creations. Here energy (Shakti) is impregnated with consciousness (Shiva) and the result is pure creation in favor of our universe. Hence Shiva and Shakti complements the existence of each other just like two different sides of a coin, always stays in different face but unitedly creates the valuation. Shiva and Parvati(Shakti) are the whole of existence(Creations) which is also manifested in the form of 'Ardhanariswar' which was shown to Bhringi, the follower of Lord Shiva when he intends to go around only Shiva but failed to do so even after taking the form of a black bee. By disposing the 'Ardhanariswar' form (Shiva in right half and Shakti (Parvati) in left half), Lord Shiva teaches that without Prakriti, the Purusha is non-existing.

3. Significances of Shiva-Shakti on Musical Acts:

'Taal' the rhythmic beat for musical time measurement , is also originated by Lord Shiva. It is created from the word Tandava of Shiva and Lasya of Parvati(Shakti). Following Taals may be signified by different acts of Lord Shiva eg,Trivangi Taal- Named after Trivangi (Lord Shiva),Parvatilochan- Named after

Parvati. Similarly Chandra, Nandi, Rudra etc. are the name of Taals originated from the name of different Gods.

The act of Dance is also originated from Lord Shiva. Lasya nritya (A form of Dance) is created by Goddess Parvati and Tandava nritya by Lord Shiva. Nritya-Kala (dance) related to Shiva-Shakti is also manifested in the walls of ancient caves and temples. In vedic age also there was a culture of music practised by common people and extensively used as a prayer during the worship of God. The following prayer of Lord Shiva may be cited as an example:

"Karpura Gouram, Karuna Avataram
Sansar saram Bhujangendra Haram
Sadaa Vasaṇtam, Hrida Ravinde
Bhavan Bhavani, Sahitam Namami."

It means the one who is pure as camphor. The incarnation of compassion, The one who is the essence of the world, adorned by the serpent- Kings garland. Always residing as the lotus of the heart. I bow down to the nature of Shiva and Shakti.

4. Regional Folk / Marriage songs based on Shiva-Shakti:

Shiava-Shakti can be predominantly correlated with our different social family culture. Shiva-Shakti based themes are very commonly used during our marriage ceremony as well as in regional folk music. As example, the Bhojpuri folk song:

"Basaha Charal Shiv ailey bariyatia
Ho derala jiara
Aisa na Boura Barse,
Goura na Bihawat ho
Muhawa me eko nehi daat."

Similarly the Maitheli Song:

"Shiv Chati dani rangeele rasiya
Chalo Gouri biyawan ko
Kathiya ki mala, Kathi ke modey
Kathiya ki kundal Sobhana Shiv ke."

All the auspicious occasions in our society are planned in between Nagpanchami and Shivratri which signifies that all our rituals are started as well as ended by the grace of Shiva-Parvati(Shakti). In Bengali culture, the 'Agamani' songs are played in the occasion of Durga-Puja, which is also based on Shiva-Parvati story.

5. Conclusion:

Sangeet is originated hand in hand with the origin of our universe and since our universe is created by Lord Shiva, Sangeet is also blessed by him. Music (Sangeet) is an integral part of the acts of Shiva-Shakti. Hence like the auspiciousness of Shiva-Shakti, the creator of this universe, Music is also considered as the blessing for the happiness of all kingdoms of the universe.

संगीत में शिव शक्ति

डॉ. स्वाती तेलंग

87, महावीर बाग कालोनी, परमेश्वरी गार्डन के पीछे,
सांवेर रोड, उज्जैन (म.प्र.)

भारत में प्रायः समस्त विधाओं के लिये कोई न कोई देवी या देवता निश्चित कर दिये गये हैं। इसी आधार पर सरस्वतीजी को विद्या तथा संगीत की देवी माना जाता है। माँ सरस्वती के हाथों में वीणा, शंकर जी के हाथों में डमरु तथा स्वर्ग में गंधर्व (गायन करने वाले), किन्नर (वादन करने वाले), अप्सरा (नृत्य करने वाली स्त्रियाँ) आदि के उल्लेख से स्पष्ट है कि भारतीय संगीत अत्यन्त प्राचीन है।

पौराणिक कथाओं के अनुसार नारद जी ने अनेक वर्षों तक योग-साधना की तब शंकर भगवान ने प्रसन्न होकर उन्हें संगीत का वरदान दिया, शिवजी ने पार्वतीजी की शयन-मुद्रा को देखकर उनके अंग प्रत्यंगों के आधार पर रूद्रवीणा तथा पांच रागों को जन्म दिया और पार्वती जी ने छठे राग को जन्म दिया। अतः हम कह सकते हैं कि संगीत कला के जन्म का आधार **"शिव शक्ति"** है।

शिवजी ने नृत्य करते हुए जिन मुद्राओं का अविष्कार किया उन्हें तण्डुमुनि एक-एक कर संकलित करते गये और उन्हें लय ताल में बैठाकर अभ्यास करने लगे। जब भरत मुनि ने शिवजी के सम्मुख **"त्रिपुरदाह"** नाम का नाटक प्रस्तुत किया तब शंकर भगवान ने इस नाट्य प्रयोग में नृत्य की योजना करने का सुझाव दिया और अपने प्रिय. ाष्य तण्डुमुनि को आदेश दिया कि वह भरत मुनि को नृत्य शिक्षा प्रदान करें। इस प्रकार तण्डु के द्वारा सिखाये जाने के कारण ही शिवजी का प्रसिद्ध नृत्य **"ताण्डव"** कहलाया।

शिवजी को नृत्य करते हुए देखकर भगवती पार्वती ने भी सुकोमल अंगहारो से युक्त एक नृत्य रचना की, जो **"लास्य"** कहलायी। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि ताण्डव या लास्य नृत्य किसी विशेष परिस्थिति में किसी विशेष व्यक्ति द्वारा ही किया जाना चाहिये या शिवजी का रूप धरकर जोर-जोर से उछल कूद करते हुए क्रोध व संहार का भाव प्रदर्शित करना है, बल्कि वीर, रौद्र, विभत्स, अद्‌भुत आदि रसों से युक्त प्रत्येक नृत्य जो पुरुष के करने के योग्य हो वह ताण्डव कहलाता है और श्रृंगार करुण आदि रसों से युक्त सुकोमल अंग-संचालन वाला ऐसा प्रत्येक लालित्यपूर्ण नृत्य जो स्त्रियों के किये जाने योग्य हो वह लास्य नृत्य कहा जाता है। इसमें अंगों का संचालन कोमलता के साथ किया जाता है ग्रीवा, नेत्र, भ्रू, कलाई आदि भी बड़ी कुशलतापूर्वक चलाई जाती है। भावों को कोमलता के साथ प्रदर्शित किया जाता है। इसका संगीत भी सुमधुर होता है। प्राचीन ग्रंथों में ताण्डव के सात भेद बताये हैं–

आनन्द ताण्डव, संध्या ताण्डव, उमा ताण्डव, गौरी ताण्डव, त्रिपुर ताण्डव, तालिका ताण्डव, संहार ताण्डव। इसी प्रकार लास्य के दो भेद हैं यौवत और छुरित।

भारतीय मान्यता के अनुसार शिवजी आदि-नर्तक हैं, उन्हीं से नृत्य कला का प्रवर्तन हुआ है, इसीलिये उनका एक विरुद्ध **"नटराज"** है। जब शिवजी का नृत्य आरंभ होता है तब उसकी

झंकार से समस्त विश्व-व्यापार को गति मिलती है तथा जब इस नृत्य का समापन होता है तब वे इस सम्पूर्ण चराचर जगत को स्वतः में समाहित कर आत्मानन्द में स्थित कर लेते हैं। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि नटराज ईश्वर के समस्त क्रिया कलाप के प्रतिरूप हैं। उनके विराट नर्तन से ही विश्व की क्रियाओं, सृष्टि, स्थिति, लय, तिरोभाव और मोक्ष का जन्म हुआ है। नृत्य की समाप्ति पर शिवजी ने चौदह बार डमरू बजाया किन्तु स्वयं पाणिनी उस शिव-सूत्र जाल को समझ न सके। तब शिवजी ने उन चौदह ध्वनियों के अंत में प्रत्यय लगाकर उन्हें समझाया, जिनके आधार उन्होंने अपने प्रसिद्ध व्याकरण ग्रंथ की रचना की और वे चौदह ध्वनियाँ **"माहेश्वर सूत्र"** कहलाई।

संगीत के आधार भूत तत्व स्वर और ताल की उत्पत्ति भी नटराज के नृत्य से ही हुई है। शिवजी ने **"त"** अर्थात ताण्डव कहा और पार्वती जी ने **"ल"** अर्थात लास्य का स्मरण किया। इस प्रकार शिव और शक्ति के सहयोग से "ताल" का अविष्कार हुआ। शिव के इस नटराज स्वरूप में पार्वती भी अर्धांग रूप में वाम भाग में अवस्थित है। इसलिये उन्हें **"अर्द्धनारीनटेश्वर"** भी कहा जाता है। भारतीय परम्परा में गायन, वादन और नृत्य तीनों मिलकर ही संगीत कहे जाते हैं। विधाता ने इस संसार की रचना पुरुष और स्त्री इन दो तत्वों के योग से की है तदानुसार संगीत परम्परा में नृत्य दो भागों में विभक्त है। ताण्डव में पौरूष का उत्साह ओज प्रकट होता है जबकि लास्य सुकुमार नृत्य है और कोमल भावों के प्रदर्शन में स्त्रियों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। शिवजी ने उमा को अपनाकर अपने ही अंगों में इसे दो भागों में बांट दिया एक ताण्डव और दूसरा लास्य। शिव शक्ति से ही संगीत है अतः शिव शक्ति ये युक्त होकर ही सृष्टि संहार व अनुग्रह करने में सक्षम है, अन्यथा वह शव है। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही शिव शक्ति की नृत्यशाला है।

Ardhnarieshwara Shivshakti[1]

Beena Sharma

India is a mysterious land of faith and deities, and devotion towards the Holy Beings has their own significance. The philosophies behind all their worship evolve through tana-bana, the rhythmic weave of *Gati,* or movement, of chanting mantras based within its time of Kâla, which is Mahā Śhakti'spulse beat, and a greater Nada time cycle of Śhiv, the Mahā Kāla.

The link that binds Kâla and Mahā Kāla as melody is the principle *Bhav* '*Prem'* which is the magnetic power of attraction associated with K[cGa. Exemplified through Raslila of Râdhâ and K[cGa, the compelling power showcases a particular sequential harmonious Laya, Svar, Taal and Chaal notations which the seers named after the *Gupteshwari* Daúa Mahâvidyâs. Each of the Devi had one beautiful letter adorned to her in Mahâ Œhakti's Avroh (scale going upwards) and Avaroh (scale coming downwards) as her energy aspects. These glow in her cyclic Kâla Chakra as Lâs÷eúvari. In mythology we know her as Goddess Durga, Tara, Umâ, or Kâlî etc., the personified nine Daivik Œhaktis and including Mahâ Œhakti make up the Daúa Mahâ Vidyâ. The tenth, or gupt, MahâÚhakti[2] is *Úrî Vidyâ* and she manifests all in a flash of spontaneous forceful energy in action, like thunder, in impromptu creativity becoming alive without any connectivity was named MahâKâla's Œhiv's Tandav dance. This instantaneous burst of energy became a treatise termed Œhiv Vidyâ.

When Œhakti and Œhiva (of Lord Shiv), as energies, vibrate at different frequencies in expressions they are called emotions *or Bhavas,* and as they express the same feeling the rishis said they are merging to a point, or a Bindu called 'SA'or Samayarasa, the sameness in everything which is the bhav of Krishna, 'Love'. To explain Œhiva and Œhakti, in unison bhav of love as a musical note, I have used 'SA' of Sargam as an index of measurement of movement, 'gati', and Œhakti and Œhiva, in equanimity become Kundalinî Œhakti, or the Ardhnârîúwara Murti in Úuddha Vidyâ, the Pure Consciousness.

Ardhnârîúwara's image is based on MahâÚhaktis, which emerges from *Man-nat-iti.* On being repeatedly chanted in reyaz or sadhana, the energy produced becomes powerful mantras that generate mass of energy called Nada Dhavni in the body temple. The burst of source

energy produces light of Œhakti and heat of Œhiva (jyoti and agni), and between them emerges the neutral zone of cool soundless sound, Nâda, of the source ShivŒhakti. Nâda, as Ardhnârîúwara, becomes the shrine, or seat, for gods and goddess to give darshan to a sadhak in a vision. They appear seated on their Pîmha, in H[daya or in the expanded oceanic like space of Lakcmî Nârâyana.

Once fully absorbed in the neutral resonance space of Œhiv Bindu any individual, wherever they are, can open a dialogue, and have a direct relationship with their chosen Devi-Devtas, even the highest Almighty - Paramatma. In Yog this is called the path of pathless PrâGa of lord Shiv. In music it is compared with *Raag Dhrupad*, a drone melodic framework of reference for improvisation without harmonies. In traditional Shastras, ethnic communities, or Aboriginal societies, and others, the melodic framework became a fundamental tool for self realization. Symbolically it stands as the universal flame, *Œhivjyotilinga*; and we call it *SatCitAnand* - which translates as 'Truth in Blissful effulgence' having the name of Ardhnârîúwara and metamorphosis to KuG

alinî in India and Kulini in Australia.

I am an example as a living proof: in my research, through dance or Laya Yog, I became a yantra, or an instrument, for Lord Ardhnarihwara (ŒhivŒhakti). Through me the mystical and magical sketches of divine forms, as devi-devtas, their geometrical diagrams (like the Trisûla, Swastika, and a Yagya Kunda) arose. Images like elephant, horse, lion, (for GaGecœa, VicGu, and Durga) or syllables (like Úrî) and words like 'K[cGa, Rudra or boacœi' emerged on their own. As forms of the mantra, or *Œábda Œhakti*, they helped me recall 'my live performance' as they manifested in my time cyclic pattern for documentation as my PhD dissertation.

It was an unknown system of creativity over which I had no control and *gupteshvari* graced me to exist with my Guru *Kundalinî Œhakti* in the Self, my higher Being. I automatically merged in complete surrender to her (without any expectations), and I became the witness of my Œrî Vidyâ worship, the worshiped one, and the means of worship. As one can see, I neither meditated nor went to any physical guru to learn. My guru was my higher Self-Œhiva-Œhakti, and I obeyed their command.

My performance in Australia, in 1997 was based on Œhiv Tandav Strotam, and my Master's Thesis became Ardhnârîúwara's biography. A process with the help of bindus, dots, and colored lines (Œhiva as dots or vowels, and Œhakti as rays of colored consonants) transformed into a non verbal language[3] through Paravak, the highest flash, of Prana and converted into Pashyanti (a recall of sound), which became a Madhyama (an idea), and in Vaikhari (a spoken word) became a communicative language of myself with myself in myself. Úrî Vidyâ was identified up to the 32nd tattvas out of 36th tattvas in Trika system of Kashmiri Œhaivism.

Narrated in philosophical terms the Rishis called it Turîya, 'chaturtha' or the fourth level of consciousness or *Ardhnârîúwara Pîmha* of Avadhuta Natha

Sampradaya, a 'way of life', wherein there is a direct commune of Guru Shishya ParâmParâ. Grounded in this dharma reality, I realized 'Hinduism' was never considered as a religion; our elders instructed us, and in fact they remind us, 'oneness with Paramatama is our culture in daily life'. To 'live and let live' in peace, happiness and tranquility is the basis of our unity in diversity act called Gita Sar of Sanatâna Dharma.

Living a content life of ŒhivŒhakti or Atma in Paramatama in tantra which is derived from '*Tam-Trayete*' and '*Tanu-Vistare,* which means by its power it nourishes life, nurtures it and protects it. '*Tanu-Vistare*' reflects both spirituality and philosophy. Without religiosity I accepted the many Tantric, Vedic and Sankhya traditions in our ancient scriptures and out of them Kaula and Œhakti are extensively followed.

I was absorbed in the path of *Tripura Rahasya* (Secrets of Tripura), where the *Charya Khand*, or direct worship of Goddess Lalita, was missing. In itself, an answer to a lot of traditions was held, and, by the introduction of Úrî Chakra, the *Navayoni puja* by Adi ÚaEkarâcârya, it became clear without oblation to Mahâmâyâ, Maheœhvara was inaccessible. From the two ancient cultures I learnt that they open the paths of social order of Dharma, Artha, Kama, and Moksha and in the cross cultural study of Ardhnârîúwara my simple methodology of worship sparked a direct transcendence in lighting the flame association to 'Awakening of the Kundalini', the Primordial Energy.

Within the Hindu tradition the 'Trinity of God' Lords Brahmâ, VicGu and Œhiva are the chosen deities by Anadi Œhakti to create, preserve, and destroy the universe respectively. To them, their main source of energy is derived from their consort goddesses Saraswati, Lakcmî, and Œhakti. In my perspective the united primordial Lord ŒhivŒhakti is the main source of creation. Œhiv is passive without Œhakti, as she is the primary energy, and together they represent the polar aspect of one's essence. And, as Shiv's nature, Œhakti is active through the entire process of creation, preservation, and multiplication. Otherwise, Œhiv without Œhakti is *Shav.*

Lord Œhiv in temporal world is known by a multitude of names like Œhiva, Natraj, Rudra, Shanker, Shambhu, Shulpani, to name a few. His physical structure is envisaged in the Murti as one with a snake around his neck, the river Ganga falling from the head, a damru (a small hand drum) in one hand, a trishul (trident) in another, and with Nandi (a bull) as his vâhana (vehicle). He is the divinity of life and death, and life after death.

One can understand these challenging concepts only after having a profound insight into the secret of Yog, Sadhna and Tadatmya with God, which is the final union with the supreme power. To attain this, a yogi needs to perfect numerous processes of worship cleansing, and the practice of the being in the flow of yantra, mantra, and tantra. Without intention, I revered Lord Œhiv in the H[idya in a Œhiv Lingam system, which denoted the real source of creation. It

was a combined form of Prak[iti and Puruca (nature and divinity) and signified the cause of conception. In other words, this universe is a part of '*Jyotirlinga*' and the whole creation is within that 'Linga'.

As The Askandh Puran says:

Aakasham Linga Mityahu Prithvi tasya Peethika

Aalayah Sarvadevanam, layan ling Muchchte

(In the context to this world, the sky (Œhiv) is the Linga while Prithvî, the earth, is its Yoni or Pîmha, its base. Everything in between becomes part of that Linga and culminates in it. That is the reason it is called Œhiv Linga, a symbol of Lord Œhiv and his Œhakti. It has no other negative connotation attached to it as presented by the western minds that connects it to Kamasutra series).

Drawing the attention to the worship of Œhiv Linga it is not, however, merely confined to India but existed during the civilizations of Mesopotamia and Mohenjo-Daro. In Babylonia, in the city of Mesopotamia (modern Iraq) there was, at one time, a Mahalingam of 1200 feet, while the city of Hierapolis in Turkey had a Œhiv Lingam of 300 feet. Even the great religious place, Mecca, also has ŒhivLinga by the name of Macceshwar and is called 'Aashwadh' by the Muslims. In northern Italy Shivlingas were found in the ancient region of Etruria. In Fiji, a ŒhivLinga is worshipped by the name of Ashir on the hill top of Taganikula. Places like Afganisthan, Chitral, Kabul, and Balakh Bhukhara are full of Œhiv Lingas and are worshipped in the name of 'Panchchera Panchveer'. In Europe, Brazil, Vietnam, Cambodia, Java, Sumatra, Australia, the sacred-secret tantra philosophies of Œhiv and Œhakti are present.

In India, Dwadash Jyotirlingas (twelve special ŒhivLingas) play a vital role in uniting the country. They are situated in all the four directions of the country. Infact, one can learn a lot of philosophical aspects from the Ardhnareshvara form of Lord Œhiva, which is deeply narrated in different PurâGas, including Œhiv PurâGa. It also defines Dwaitya and Advaita philosophies, which ultimately say that 'God Is one' but narrated in different forms.

Eko-bramh-dwityo-nasti (God is one)

Eka-sad-viprah-bahudha-vedanti (only one is true which is narrated by the cognizant's in several forms).

This Brahma Vidyâ philosophy unfolds that there is no difference between Rama, Œhiva, Krishna, Vishnu, and Brahma. In my study its cognition tapped as Úrî Vidyâ belonged to the Siddhas. Moving on, in its absolute truth the Úrî Mâhâ Vidyâ in its indeterminate way transcended through *Œhiv d[cmi* and the graced *Jñâna*, knowledge graced Úhiv Vidyâ of Avadhuta Dattâtreya in the Trika system. From Îúhvara, Úadâúiva, 33rd, 34th tattva to 35 th and 36th, Œhakti and Œhiva tattva, the three iconography of Brahma-Nada, Vishnu's- Chakra, and Œhiva's-Trident within the Swastika[4]-live directions helped me retain a distinct 1è3rd Grace Awareness to return and document its ultimate bibliography: My PhD Dissertation.

The relationship between Œhiva-Œhakti and Tantra is based on the creation

of universe: *'Yata Pinde Tat Brahmande'* (whatever is in the universe is also in the body). The combined form of 'Panch Tatvas' (the five elements - earth, water, fire, air, and sky) is present in all the creatures. In this the yantra (the body), the mantra (the sound vak), and tantra (their action) are woven yarns of daily life, which is a natural simple sadhana. They create and balance the energy in the body as well as in the universe. It is this natural (PrâGa) power which graces the sleeping 'Serpent Energy' to awake from Muladhar (Prithvî – the earth base) to Sahastrara (Akash – sky, the place of thousand petals).

The book 'Awakening of Serpent energy through Tantra' is a result of similar sadhana that represents my real experiential philosophy of heat, light, and energy of Lord Œhiva and the Advaita system of worshipping Him. My activation of ŒhivŒhakti, through the generated spiral energy of Kathak dance, is my sahaja worship of Lord Œhiva. In Laya Yog, my spontaneity attained Turiya state, from the heightened state of awareness. This led me to grasp a new text of knowledge that I observed during the performance, to document and narrate the in-depth subject-object knowledge, as I witnessed the philosophy of divinity unfold. Lord Œhiv has himself given this dance system to the world and I became his Kathaka, a story teller.

In a cross-cultural study between Indian and Australian Aboriginal dance traditions the different system of worshipping Œhiv and Œhakti was put across and the message of 'Oneness' or 'unity in diversity' as a reconciliation and independent act of all people came through this book. It justified my concept 'In Samadhi attain Karma Yoga' i.e., 'remaining in tune (is samadhi), within yourself (is yoga), and act accordingly (through your actions), as corroborated in Gita Sar. It expedited the validation ofArdhnârîúwara as 'Universality' which is worshipped in different forms; for example, as Kulini by the Pitjantjatjara people of Australia, meaning 'deep inner listening and quiet still awareness in Dreamtime'. In my view, the Monolith Uluru, or Ayers Rock, in Australia is about the ancestors who gave two important sacred secrets to their people. One is the weapon boomerang for hunting, and the other that the Aborigines are not of the earth; they have come from Patal lok, like Sita.

When you look at the picture cover of the book ASETT it revolves around the worship of Œhiv and Œhakti, reflecting the Indian art and culture. The picture adds, metaphorically, its own meaning for one adept in Turiya. The idol is surrounded by blackness, signifying the vast space of infinite MahâKâla; red and gold define the glowing jyoti or beauty of Devi Œhakti, and white color is the Sativ bija, or seed of Lord Œhiva, in its momentary blissful explosive sprout imagery. The photograph depicts the jyotilinga flame encircling ŒhivŒhakti in SatCitAnand, and the birthing of Gunas that follow as Satvic, Rajsic and Tamsic characteristics in male and female form cause the future progeny of this world.

Beena is currently residing in the USA. In her PhD thesis she gives a first

hand account of a biographic narrative, of ŒhivŒhakti Vidyâ that cover her topic '*Sanatana Dharma examined through Úrî Vîdyâ, the graceful performer*'. Goddess Bala Tripurasundari and her other aspects, like Bhadrakali roleplayed a scientific presentation, and guided Beena with Jñâna to fulfill her promise made before this birth. Through Œhiv Vidyâ, Beena completes the *Charya Khand in Tripura Rahasya ordained by Lord Dattâtreya* that went missing or hidden in bygone times.

In her endeavor to connect the live Itihas as a relationship amongst all beings, Beena was gifted with the revelation of ancient Œhakti Pîmha which she plans to share with all spiritual souls.

(Footnotes)

1. Book cover-Ardhnârîúwara's
2. Tripura Sundari-Sri Vidya
3. The Hindu Paper
4. Swastika-The living Yugha

विश्व के प्रमुख शिव शक्ति मन्दिर

उर्मि कड़ोतिया

सी-31/1 वेदनगर तृप्ति पैलेस के पास, उज्जैन म.प्र.

शिव शिक्ति का संयोग ही परमात्मा है, शिव की जो पराशक्ति है उससे चित शक्ति प्रकट होती है। जो शिव है वह परम शुभ और पवित्र आत्मा तत्व है अर्थात् परमात्मा शिव और शक्ति के अलावा कुछ भी जानने योग नहीं है। परमात्मा शिव के 12 ज्योर्तिलिंग और शक्ति के 51 शक्तिपीठ है जो पूरे विश्व में फैले हुए है जिनका वर्णन इस प्रकार है।

1. सोमनाथ ज्योतिर्लिंग : भारत का ही नहीं इस पृथ्वी का पहला ज्योतिर्लिंग सोमनाथ को माना जाता है। यह मंदिर गुजरात राज्य में स्थित है इस मंदिर के बारे में मान्यता है कि जब चंद्रमा को दक्ष प्रजापति ने श्राप दिया था तब चंद्रमा ने इस स्थान पर तप कर इस श्राप से मुक्ति पाई थी। कहा जाता है कि इस शिवलिंग की स्थापना स्वयं चंद्र देव ने की थी।

2. मल्लिकार्जुन ज्योर्तिलिंग : यह ज्योर्तिलिंग आंध्रप्रदेश में कृष्णा नदी के तट पर श्रीशैल नाम के पर्वत पर स्थित है। इस मंदिर का महत्व भगवान शिव के कैलाश पर्वत के समान माना जाता है। उस पर्वत पर आकर शिव का पूजन करने से व्यक्ति को अश्वमेध यज्ञ के समान पुण्य फल प्राप्त होते है।

3. महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग : यह ज्योतिर्लिंग मध्यप्रदेश की उज्जैन नगरी में स्थित है इस ज्योतिर्लिंग की विशेषता है कि यह एक मात्र दक्षिणमुखी ज्योतिर्लिंग है। यहाँ प्रतिदिन सुबह की जाने वाली भस्मारती विश्वभर में प्रसिद्व है उज्जैनवासी मानते है कि भगवान महाकालेश्वर ही उनके राजा है और वे उज्जैन की रक्षा कर रहे हैं।

4. ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग : ओंकारेश्वर मंदिर मध्यप्रदेश के इंदौर शहर के समीप स्थित है। पहाड़ों के चारों और नर्मदा नदी बहने से यहाँ ऊँ का आकार बनता है, ऊँ शब्द की उत्पति ब्रह्मा के मुख से हुई है। यह ज्योर्तिलिंग ऊँ का आकार लिये हुए है इस कारण इसे ओंकारेश्वर के नाम से जाना जाता है।

5. केदारनाथ ज्योतिर्लिंग : बाबा केदारनाथ का मंदिर बद्रीनाथ के मार्ग पर स्थित है यह समुद्र तल से 3584 मीटर की ऊचाई पर स्थित है। यह तीर्थ भगवान शिव को अत्यंत प्रिय है जिस प्रकार कैलाश पर्वत का महत्व है उसी प्रकार कैदारनाथ का भी महत्व है।

6. भीमाशंकर ज्योतिर्लिंग : यह ज्योतिर्लिंग महाराष्ट्र के पुणे जिले में सह्राद्रि नामक पर्वत पर स्थित है इस मंदिर के विषय में मान्यता है कि जो भक्त श्रद्धा से इस मंदिर के दर्शन प्रतिदिन सुबह सूर्य निकलने के बाद करता है उसके सात जन्मों के पाप दूर हो जाते है।

7. काशी विश्वनाथ : यह ज्योर्तिलिंग उत्तरप्रदेश के काशी नगरी में स्थित है। इस स्थान के बारे में यह मान्यता है कि प्रलय आने पर यह स्थान ऐसे ही बना रहेगा इसकी रक्षा के लिये भगवान शिव इस स्थान को अपने त्रिशूल पर धारण कर लेंगे और बाद में उसे पुनः वहीं स्थापित कर देंगे।

8. यबंकेश्वर ज्योतिर्लिंग : यह ज्योतिर्लिंग गोदावरी नदी के करीब महाराष्ट्र राज्य के नासिक जिले में स्थित है। इस ज्योर्तिलिंग के सबसे अधिक निकट ब्रह्मागिरी नाम का पर्वत है। इसी पर्वत से गोदावरी नदी शुरू होती है कहा जाता है कि भगवान शिव को गोतम ऋषि के आग्रह पर ज्योर्तिलिंग रूप में रहना पड़ा।

9. वैद्यनाथधाम ज्योतिर्लिंग : भगवान श्री वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग का मंदिर जिस स्थान पर अवस्थित है उसे वैद्यनाथ धाम कहा जाता है। यह स्थान झारखण्ड राज्य के देवधर जिले में है। सुल्तानगंज से जल लेकर भक्त बाबा धाम की और पैदल यात्रा प्रारंभ करते है।

10. नागेश्वर ज्योतिर्लिंग : यह ज्योर्तिलिंग गुजरात के बाहरी क्षेत्र में द्वारिका स्थान में स्थित है। धर्म शास्त्र में भगवान शिव नागों के देवता है और नागेश्वर का पूर्ण अर्थ नागों का ईश्वर हैं। द्वारका पुरी से भी नागेश्वर ज्योतिर्लिंग की दूरी 17 मील की है इस ज्योतिर्लिंग की महिमा में कहा गया है कि जो व्यक्ति पूर्ण श्रद्वा और विश्वास के साथ यहाँ दर्शन के लिये आता है उसकी सभी मनोकामना पूर्ण होती है।

11. रामेश्वर ज्योतिर्लिंग : यह ज्योतिर्लिंग तमिलनाडु राज्य के रामनाथपुरं नामक स्थान में स्थित है। 12 ज्योतिर्लिंग में एक होने के साथ-साथ यह हिंदुओं के चार धामों में से एक भी है। इस ज्योतिर्लिंग के विषय में यह मान्यता है कि इसकी स्थापना स्वयं भगवान श्री राम ने की थी। भगवान राम के द्वारा स्थापित होने के कारण ही इसे रामेश्वर नाम दिया गया है।

12. धृश्णेश्वर ज्योतिर्लिंग : धृश्णेश्वर महादेव का प्रसिद्ध मंदिर महाराष्ट्र के औरंगाबाद शहर के समीप दौलताबाद के पास स्थित है। दूर-दूर से यहाँ लोग आते है और आत्मिक शांति प्राप्त करते है। भगवान शिव के बारह ज्योतिर्लिंग में यह अंतिम ज्योर्तिलिंग है। बौद्व भिक्षुओं द्वारा निर्मित एलोरा की प्रसिद्ध गुफाएं इस मंदिर के समीप स्थित है। यहाँ पर श्रीएकनाथ जी गुरु व श्री जर्नादन महाराज की समाधि भी है।

जिस प्रकार शिव की महिमा का महत्व पूरी दुनिया मानती है उसी प्रकार शक्ति की महिमा अपार है। शिव व शक्ति दोने एक दूसरे के पूरक है जहाँ-जहाँ शक्तिपीठ स्थापित हुए वहीं भगवान शंकर भी भैरव रूप में शक्ति के साथ स्थापित हुए है। ये 51 शक्तिपीठ इस प्रकार है–

1. भैरवी देवी : इस स्थान पर सती का ब्रह्मरंध गिरा था यहां पर देवी भैरवी भीमलोचन भैरव के साथ प्रतिष्ठित है। यह स्थान बिलोचिस्तान के लासवेला स्थान में हिंगोस नदी के तट पर पश्चिमी पाकिस्तान में है। यहाँ गुफा के भीतर ज्योति के दर्शन होते है।

2. विमला देवी : इस स्थान पर सती का किरीट गिरा था। यहाँ पर देवी विमला रूप में किरिट भैरव के साथ गंगा तट पर स्थित है। गंगा तट पर वट नामक नगर में यह शक्तिपीठ है जहाँ अनेक तांत्रिक साधना करते है।

3. उमा शक्ति : इस स्थान पर शक्ति के क़ो गिरे थे। यहाँ देवी उमा नाम से भूतेश भैरव के साथ स्थित है। भूतेश्वर महादेव जी मंदिर में यह शक्तिपीठ है यह स्थान मथुरा वृंद्वावन रोड पर स्थित हैं।

4. महिषमर्दिनी देवी : इस स्थान पर सती के नैत्र गिरे थे यहां पर देवी जाग त क्रोधिश भैरव के साथ स्थित है। यह मंदिर म.प्र. में कोल्हापुर रेलवे स्टेशन के पास है इस मंदिर को महालक्ष्मी या अंबाजी का मंदिर भी कहते हैं।

5. सुनंदा देवी : इस स्थान पर देवी सती की नाक गिरी थी। यहां पर देवी सुनंदा के नाम से त्रयम्बक भैरव के साथ स्थित है। यह स्थान बंग्लादेश में शिकरापुर नामक गांव में सुनंदा नदी के तट पर स्थित है।

6. अपर्णा देवी : इस स्थान पर देवी सती का बायां तलुआ गिरा था। यहां पर देवी अपर्णा नाम से बामन भैरव के साथ स्थित है। यहां स्थान

भी बांग्लादेश में भवानीपुर गांव में करतोया नदी के तट पर स्थित है।

7. सुंदरी देवी : इस स्थान पर देवी सती का दांया तलुआ गिरा था। यहां पर देवी सुंदरी नाम से सुंदरानंद भैरव के साथ स्थित है। यह शक्तिपीठ लद्दाख में श्री पर्वत पर स्थित है।

8. विशालाक्षी देवी : इस स्थान पर देवी सती का कर्ण कुंडल गिरा था। यहां पर देवी विशालाक्षी के नाम से काल भैरव के साथ स्थित है। यह शक्तिपीठ मंदिर वाराणसी के मणिकर्णिका घाट के पास स्थित हैं।

9. विश्व मात का देवी : इस स्थान पर देवी का वामगंड (बायां गाल) गिरा था। यहां पर देवी विश्वेसी नाम से दंडपाणि भैरव के साथ स्थित है। यह स्थान आंध्रप्रदेश के गोदावरी तट पर स्थित है।

10. गंडकी देवी : इस स्थान पर देवी का दायां गाल गिरा था यहां पर देवी गंडकी के नाम से चंद्रपाणि भैरव के साथ स्थित हैं। यह स्थान नेपाल में काठमांडू में गंडक नदी के पास स्थित है।

11. नारायणी देवी : इस स्थान पर देवी सती के ऊपर के दांतो की पंक्ति गिरी थी। यहां पर देवी नारायणी संहार भैरव के साथ स्थित है। यह मंदिर कन्याकुमारी के पास शुचीद्रम नामक स्थान पर शिव मंदिर में स्थित है।

12. बाराहीं देवी : इस स्थान पर देवी सती के नीचे के दांतों की पंक्ति गिरी थी। यह दंत पंक्ति समुद्र के बीच में गिरी थी इस शक्तिपीठ को पंप सागर कहते है। यहां पर बाराहीं देवी महारूद्र भैरव के साथ स्थित है।

13. ज्वालामुखी देवी : इस स्थान पर देवी सती की जिह्वा गिरी थी। यहां पर देवी ज्वालामुखी के नाम से उन्मत भैरव के साथ स्थित है। यह पंजाब में ज्वालामुखी नामक स्थान पर स्थित है।

14. अवन्ति देवी : इस स्थान पर देवी सती का ऊपरी होंठ गिरा था। यहां पर देवी अवन्ति नाम से लंबकर्ण भैरव के साथ स्थित है। यह शक्तिपीठ मंदिर उज्जैन के शिप्रा नदी के तट पर भैरव पर्वत पर है।

15. फुल्लरा देवी : इस स्थान पर देवी सती का नीचे का होंठ गिरा था। यहां पर देवी विश्वेष भैरव के साथ स्थित है। यह स्थान पश्चिम बंगाल के वीरभूम जिले के लाभपुर स्टेशन के पास है।

16. भ्रामरी भद्रकाली : इस स्थान पर देवी के चिबुक गिरे थे। यहां पर भ्रामरी के नाम से विकृताक्ष भैरव के साथ स्थित है। यह पश्चिम बंगाल के जलपाईगुड़ी जिले में सालबाढ़ी गाँव में स्थित है।

17. महामाया देवी : यहां पर देवी सती का कंठ गिरा था। यह पर देवी महामाया त्रिसंध्येश्वर भैरव के साथ स्थित है। यह अमरनाथ यात्रा के स्थान पर स्थित है।

18. नंदनी देवी : इस स्थान पर देवी सती का कंठ हार गिरा था। यहां पर देवी नंदनी के रूप में नंदिकेश्वर भैरव के साथ स्थित है। यह शक्तिपीठ एक वट वृक्ष के नीचे स्थित है। यहां कोई मंदिर नहीं हैं। यह स्थान पश्चिम बंगाल के वीरभूम जिले में सैंथिया स्टेशन के पास नंदीपुर स्थान पर है।

19. महालक्ष्मी देवी : इस स्थान पर देवी सती की गर्दन गिरी थी। यहां पर देवी महाकाली के रूप में योगेश भैरव के साथ स्थित है। यह स्थान श्री शैल पर मल्लिकार्जुन पर्वत पर स्थित है।

20. महाकाली देवी : इस स्थान पर सती की आंत गिरी थी। यहां पर देवी महाकाली के रूप में योगेश भैरव के साथ स्थित है। यह शक्तिपीठ एक टीले पर है यह टीला आंत जैसी शक्ल का है। यह शक्तिपीठ हावडा-क्यूल लाईन पर नलहाठी स्टेशन से तीन किलोमीटर की दूरी पर है।

21. महादेवी (उमा) : इस स्थान पर देवी सती का बायां स्कंध गिरा था। यह पर देवी उमा के नाम से महादेव भैरव के साथ स्थित है। यह स्थान मथुरा में स्थित है।

22. कुमारी देवी : इस स्थान पर देवी सती का दांया स्कंध गिरा था। यहां पर देवी कुमारी के

नाम से शिव भैरव के साथ स्थित है। यह स्थान रत्नावली पर्वत पर मद्रास के पास स्थित है।

23. चंद्रभागा देवी : इस स्थान पर देवी सती का उदर गिरा था। यहां पर देवी चंद्रभागा नाम से वक्रतुंड भैरव के साथ स्थित हैं। गुजरात के जुनागढ़ शहर के पास गिरनार पर्वत पर स्थित है।

24. त्रिपुरमालिनी देवी : इस स्थान पर देवी सती का बायां स्तन गिरा था। यहां पर देवी भीाण भैरव के साथ स्थित है। यह शक्तिपीठ पंजाब के जालंधर शहर में हैं।

25. शिवानी देवी : इस स्थान पर देवी का दायां स्तन गिरा था। यहां पर देवी चंड भैरव के साथ स्थित है। यह स्थान रामगिरी पहाड पर शारदा मंदिर में हैं।

26. वक्रेवरी देवी (महिषमर्दिनी) : इस स्थान पर देवी सती का मन श्मशान भूमि पर गिरा था। यहां पर देवी महिषमर्दिनी के नाम से वक्रनाथ भैरव के साथ स्थित है। यह स्थान पश्चिम बंगाल के सैंथिया के पास दुबराजपुर नामक स्थान पर स्थित है।

27. शर्वाणी देवी : इस स्थान पर देवी सती की पीठ गिरी थी। यहां पर देवी शर्वाणी नाम से निम्रि भैरव के साथ स्थित है यह शक्तिपीठ कन्याकुमारी में कुमारी देवी के मंदिर में स्थित है।

28. बहुला देवी : इस स्थान पर देवी सती की बायीं बाह गिरी थी। यहां पर देवी बहुला नाम से भीरूक भैरव के साथ स्थित है। यह पश्चिम बंगाल में कटवा स्टेशन जिला वीरभूम में केतुब्रह्म नामक गांव में स्थित है।

29. भवानी देवी :- इस स्थान पर देवी सती की दायीं बाह गिरी थी। यहां पर देवी माता भवानी नाम से चंद्रशेखर भैरव के साथ स्थित है। यह स्थान बंगलादेश के चटगांव से चालीस किलोमीटर दूर सीता कुंड नामक स्थान पर चंद्रशेखर पर्वत पर स्थित है।

30. मंगलचंडी देवी : इस स्थान पर देवी सती की कोहनी गिरी थी। यहां पर देवी कपिलाम्बर भैरव के साथ स्थित है। इस शक्तिपीठ जाने के लिये उज्जैन में रूद्रसागर के पास हरसिद्धि मंदिर में स्थित है।

31. गायत्री देवी : इस स्थान पर देवी सती की दोनों कलाइयां गिरी थी। यहां पर देवी माता गायत्री के नाम से सर्वानंद भैरव के साथ स्थित है। यह स्थान राजस्थान के अजमेर में पुष्कर पर्वत पर स्थित है।

32. दाक्षायणी देवी : इस स्थान पर देवी सती की दायीं हथेली गिरी थी। यहां पर देवी माता दाक्षायणी के नाम से अमर भैरव के साथ स्थित है। यह शक्तिपीठ कैलाश मानसारोवर के पास स्थित है।

33. यशोरेश्वरी देवी : इस स्थान पर देवी सती की बायीं हथेली गिरी थी। यहां पर देवी चंड भैरव के साथ स्थित है। यह शक्तिपीठ बांग्लादेश के यशोहारी के ईश्वरीपुरी गांव में स्थित है।

34. ललिता देवी : इस स्थान पर देवी सती की हस्तांगुलि गिरी थी। यहां पर देवी ललिता के नाम से भव भैरव के साथ स्थित है। यह स्थान इलाहाबाद में स्थित है।

35. विमला देवी : इस स्थान पर देवी सती की नाभि गिरी थी। यहां पर देवी मां विमला के नाम से जगन्नाथ भैरव के साथ स्थित है। यह स्थान पश्चिम बंगाल के मुर्शिदाबाद में जगन्नाथपुरी धाम में स्थित है।

36. देवगर्भा देवी : इस स्थान पर देवी सती का कंकाल गिरा था। यहां पर देवी मां काली के रूप में भैरव के साथ स्थित है। यह शक्तिपीठ कांची के काली मंदिर में स्थित है।

37. काली देवी : इस स्थान पर देवी सती का बायां नितंब गिरा था। यहां पर देवी काली के नाम से कालामाधव भैरव के साथ स्थित है।

38. नर्मदा देवी : इस स्थान पर देवी सती का दांया नितंब गिरा था। यहां पर देवी नर्मदा के नाम से भ्रदसेन भैरव के साथ स्थित है। यह स्थान

अमरकंटक में सोन नदी के उद्गम के पास स्थित है।

39. कामाख्या देवी : इस स्थान पर देवी सती की योनि गिरी थी। यहां पर देवी कामाख्या के नाम से उमानाथ भैरव के साथ स्थित है। यह स्थान गुहाटी के कामगिरी पर्वत पर स्थित मंदिर में है।

40. गुह्येश्वरी देवी (महामाया देवी) : इस स्थान पर देवी सती के दोनों घुटने गिरे थे। यहां पर देवी महामाया के नाम से कपाल भैरव के साथ स्थित है। यह स्थान नेपाल के पशुपति मंदिर के पास बागमति नदी के तट पर स्थित है।

41. जयंती देवी : इस स्थान पर देवी की बायीं जांघ गिरी थी। यहां पर देवी क्रमदीश्वर भैरव के साथ स्थित है। यह स्थान गोहाटी से .शिलांग जाकर वहां से 500 किलोमीटर दूर जयंतिया पहाड़ी पर बाडरभाग ग्राम में जयंती देवी का मंदिर है।

42. सर्वानंदकरी (पटनेवरी देवी) : इस स्थान पर देवी सती की दांयी जांघ गिरी थी। यह पर देवी सर्वानंदकरी के नाम से व्योमक्रो भैरव के साथ स्थित है। इस शक्तिपीठ के दर्शन के लिये बिहार प्रांत की राजधानी पटना के पटनेश्वरी मंदिर में जायें।

43. भ्रामरी देवी : इस स्थान पर देवी सती का बायां पैर गिरा था। यहां पर देवी भ्रामरी के नाम से ईश्वरी भैरव के साथ स्थित है। यह स्थान जलपाईगुडी के शालवाड़ी गांव में तिस्ता नदी के किनारे स्थित है।

44. त्रिपुरसुंदरी देवी : इस स्थान पर देवी सती का दांया पैर गिरा था। यहां पर देवी त्रिपुरसुंदरी के नाम से त्रिपुरेा भैरव के साथ स्थित है। यह स्थान त्रिपुरा राज्य के राधाकिशोर गांव में एक पर्वत पर यह मंदिर स्थित है।

45. काली कपालिनी देवी : इस स्थान पर देवी सती का बायां टखना गिरा था। यहां पर देवी कपालिनी के नाम से सर्वानंद भैरव के साथ स्थित है। यह स्थान पश्चिम बंगाल में मिदनापुर जिले में तगलुक नामक स्थान पर स्थित है।

46. सावित्री देवी : इस स्थान पर देवी सती का दायां टखना गिरा था। यहां पर देवी सावित्री के नाम से स्थाणु भैरव के साथ स्थित है। यह स्थान हरियाणा के कुरूक्षेत्र में सदैपायन सरोवर के पास स्थित है।

47. इंद्राक्षी देवी : इस स्थान पर देवी सती का नुपूर गिरा था। यहां पर देवी इंद्राक्षी के नाम से राक्षषेश्वर भैरव के साथ स्थित है। यह शक्तिपीठ श्रीलंका के जाफना के नल्लूट नामक स्थान पर है।

48. भूतधात्री युगाधा देवी : इस स्थान पर देवी सती के दाएं पैर का अंगूठा गिरा था। यहां पर देवी युगाधा के नाम से क्षीरकंटक भैरव के साथ स्थित है। यह स्थान पश्चिम बंगाल के वर्धमान जिले में क्षीरग्राम नामक स्थान पर है।

49. अंबिका देवी : इस स्थान पर देवी सती की बाएं पैर की अंगुली गिरी थी। यहां पर देवी अंबिका के नाम से अमृत भैरव के साथ स्थित है। यह स्थान जयपुर से 70 किलोमीटर दूर बैराट नामक गांव में स्थित है।

50. कालिका देवी : इस स्थान पर देवी सती की दायीं पैर की चार उंगलियां गिरी थी। यहां पर देवी कालिका के नाम से नकुलीश भैरव के साथ स्थित है। यह स्थान कलकत्ता के कालीघाट नामक प्राचीन मंदिर में है।

51. जयदुर्गा देवी : इस स्थान पर देवी सती के दोनों कान गिरे थे। यहां पर देवी जयदुर्गा अभीभैरव के साथ स्थित है। यह स्थान कर्नाटक में स्थित है।

भारत एक हिंदू धर्म प्रधान देश है। यह तीर्थ पूरे भारतीय उपमहाद्वीप पर फैले हुए है। हिंदू धर्मों में इन तीर्थ स्थानों व धार्मिक स्थलों का बहुत महत्व माना जाता है।

विश्व के प्रमुख शिव शक्ति मन्दिर

विशाल शिन्दे

शा. कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्ट महाविद्यालय, दशहरा मैदान,
उज्जैन विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

भारतवर्ष आस्था व विश्वास की पावन भूमि माना जाता है। हमारे यहाँ भगवान शिव को आदिनाथ माना जाता है। पुराणों में मान्यता है कि विश्व के जिन-जिन पावन स्थलों पर भगवान शिव स्वयंभू रूप में प्रकट हुए वहाँ साक्षात् शिव का वास माना जाता है।

अर्थात् सौराष्ट्र में सोमनाथ और श्री शैल पर्वत पर मल्लिकार्जुन उज्जैन में महाकालेवर, ओंकारेवर और ममलेश्वर। पर्लिग्राम के निकट श्री वैद्यनाथ और डाकिनी शिखर पर भीमाशंकर, सेतुबंध में रामेश्वर और द्वारूकावन द्वारका में स्थित है नागेश्वर। वाराणसी में विश्वनाथ के रूप में गोमती नदी के तट पर त्रंयम्बेकश्वर के रूप में हिमालय पर केदारनाथ और आखिरी ज्योतिर्लिंग शिव रूप में घृष्णेश्वर के रूप में विराजमान है।

भारतवर्ष के पश्चिम क्षेत्र में गुजरात प्रदेश के जूनागढ़ जनपद के प्रभास ग्राम में श्री सोमनाथ मन्दिर स्थित है। सोमनाथ के शिवतीर्थ, अग्नितीर्थ एवं सूर्यतीर्थ की सर्वप्रथम साधना प्रजापति दक्ष के दामाद चन्द्रमा द्वारा की गई थी जिन्हें सोम के नाम से जाना जाता है।

श्री मल्लिकार्जुन आन्ध्रप्रदेश के श्रीशैल पर्वत पर पावन कृष्णा नदी के तीर पर कुर्नूल जिले में श्री मल्लिकार्जुन विराजित है। यह ज्योतिर्लिंग 08 मीटर ऊँची पत्थर की दीवार से आवृत्त है। मध्यप्रदेश के खण्डवा जिले में मैकलसुता माँ नर्मदा के मध्य मान्धाता नाम द्वीप पर स्थित ओंकारेश्वर स्थान है। इस द्वीप की आकृति ''ऊँ'' को लिये हुए है।

परली श्री बैधनाथ मन्दिर महाराष्ट्र राज्य के मराठावाड़ा में परलीबीड़ जिले में एक प्रसिद्ध ग्राम है परली कॅटिपुर मध्यरेखा वैजयंती या जयंती के रूप में भी जाना जाता है। श्री भीमाशंकर ज्योतिर्लिंग महाराष्ट्र प्रदेश पुणे के अन्तर्गत राजगुरु नगर तट से घोड़गांव के आगे भीमाशंकर की पहाड़ी पर यह ज्योतिर्लिंग स्थित है। श्री रामेश्वर ज्योतिर्लिंग भगवान श्री रामचन्द्र जी द्वारा बंधाये सेतु से परम पवित्र श्री रामेश्वर तीर्थ है। यह सभी तीर्थों एवं क्षेत्रों में उत्तम है। जिनके दर्शन मात्र से भवसागर से मुक्ति होकर पुण्य की वृद्धि होती है। श्री औढ़ा नागनाथ महाराष्ट्र के मराठवाड़ा क्षेत्र में स्थित छिंगोली जिले के औढ़ा नामक तालुकें (तहसील) में स्थित है।

श्री विश्वेश्वर ज्योतिर्लिंग काशी नगरी के उत्तर की और ओंकारखण्ड, दक्षिण में केदारखण्ड़ व मध्य में विश्वेश्वर खण्ड़ है। त्रयंबकेश्वर ज्योतिर्लिंग महाराष्ट्र प्रान्त के अन्तर्गत नासिक जिले के मुख्यालय से 30 किलोमीटर की दूरी पर त्रयम्बक क्षेत्र है यह स्थान समुद्र तट से 825 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है।

केदारनाथ ज्योतिर्लिंग उत्तराखण्ड़ के चारधाम में से एक तथा द्वादश ज्योतिर्लिंग में से एक श्री केदारेवर महादेव चौरीबरी हिमनद हुण्ड से प्रकट हुई मंदाकिनी नदी के तीर पर 3562 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है।

श्री घृष्णेश्वर ज्योतिर्लिंग महाराष्ट्र राज्य के अन्तर्गत औरंगाबाद से पश्चिम की ओर लगभग 20 कि.मी. की दूरी पर श्री घृष्णेश्वर महादेव का ज्योतिर्लिंग वैसल नामक गाँव में स्थित है।

अमरनाथ सनातन धर्मावलम्बियों का अमरनाथ एक मुख्य आस्था 91 केन्द्र है। यह जम्मू-कश्मीर राज्य के अन्तर्गत श्रीनगंर शहर के उत्तरपूर्व में स्थित है। पर्वतीय क्षेत्र में यह गुफा प्राकृतिक है और इसमें प्राकृतिक हिम पीठ पर हिमनिर्मित शिवलिंग के दर्शन होते है। प्राकृतिक रूप से हिमनिर्मित होने के कारण इसे हिमानी स्वंयभू शिवलिंग भी कहा जाता है।

इसी प्रकार हिन्दू धर्म के पुराणों के अनुसार जहाँ-जहाँ सती के अंग के टुकड़े धारण किए वस्त्र या आभूषण गिरे वहाँ-वहाँ शक्तिपीठ अस्तित्व में आया ये शक्तिपीठ पूरे भारतीय उपमहाद्वीप पर फेले हुए है देवी पुराण में 51 शक्तिपीठों का वर्णन है हालांकि देवी भागवत में जहाँ 108 और देवी गीता में 72 शक्तिपीठों का जिक्र मिलता है।

वहीं तन्त्रचुड़ामणि में 52 शक्तिपीठ बताए गए है देवी पुराण में जरूर 51 शक्तिपीठों की ही चर्चा की गई है। इन 51 शक्तिपीठों में से कुछ विदेश में भी है। वर्तमान में भारत में 42 पाकिस्तान में 1 बांग्लादेश में 4 श्रीलंका में 1 तिब्बत में 1 तथा नेपाल में 2 शक्तिपीठ है। किरीट शक्तिपीठ पश्चिम बंगाल के हुगली नदी के तट लालबाग कोट पर स्थित है। यहाँ सती माता का किरीट यानी शिराभूषण या मुकुट गिरा था। वृन्दावन, मथुरा के भूतेश्वर में स्थित है। कात्यायनी वृन्दावन शक्तिपीठ जहाँ सती का केशपाश गिरा था यहाँ की शक्तिदेवी कात्यामानी है।

करवीर शक्तिपीठ कोल्हापुर महाराष्ट्र में स्थित है। यह शक्तिपीठ जहाँ माता का त्रिनेत्र गिरा था। यहाँ की शक्ति महिषसुर मदिनी तथा भैरव क्रोधशिष हैं। यहाँ महालक्ष्मी का निज निवास माना जाता है। श्री पर्वत शक्तिपीठ को लेकर कुछ विद्वानों का मानना है कि इस शक्तिपीठ का मूल स्थल लद्दाख है। जबकि कुछ का मानना है कि यह असम के सिलहट में स्थित है जहाँ माता सती का दक्षिण तलप यानी कनपटी गिरी थी यहाँ कि शक्ति श्री सुन्दरी एवं भैरव सुन्दरानन्द है।

वाराणसी के उत्तरप्रदेश में विशालाक्षी शक्तिपीठ है। यहाँ वाराणसी के मीरघाट पर स्थित है शक्तिपीठ जहाँ माता सती के दाहिने कान के मणि गिरे थे यहाँ की शक्ति विशालाक्षी तथा भैरव काल भैरव है। गोदावरी तट शक्तिपीठ आंध्रप्रदेश के कब्बूर में गोदावरी तट पर स्थित है। यह शक्तिपीठ जहाँ माता का वामगण्ड यानी बाया कपोल गिरा था यहाँ की शक्ति विश्वेश्वरी या रूकमणी तथा भैरव दण्डपाणि है। शुचीचन्द्रम शक्तिपीठ तमिलनाडु कन्याकुमारी के त्रिसागर संगम स्थल पर स्थित है। पंचसागर शक्तिपीठ यहाँ माता के नीचे के दाँत गिरे थे इस शक्तिपीठ का कोई निश्चित स्थान नहीं है।

ज्वालामुखी शक्तिपीठ हिमाचल प्रदेश के कांगडा में स्थित है यह शक्तिपीठ जहाँ पर सती की जिह्वा गिरी थी।

भैरव पर्वत शक्तिपीठ कुछ गुजरात के गिरिनार के निकट भैरव पर्वत को तो कुछ मध्यप्रदेश के उज्जैन के निकट क्षिप्रा नदी तट पर वास्तविक शक्तिपीठ मानते है।

अट्टहास शक्तिपीठ पश्चिम बंगाल के लाबपुर में स्थित है। जहाँ माता का होंठ गिरा था जनस्थान शक्तिपीठ यह महाराष्ट्र नासिक के पंचवटी में स्थित है। जहाँ माता की हुड्डी गिरी थी। महामाया शक्तिपीठ यह जम्मू कश्मीर के अमरनाथ में स्थित है। जहाँ माता का कंठ गिरा था।

नंदीपुर शक्तिपीठ यह पश्चिम बंगाल के सैन्ययान में स्थित है। जहाँ देवी की देह का कण्ठहार गिरा था। श्री शैल शक्तिपीठ आंध्रप्रदेश के कुर्नल के पास स्थित है। जहाँ माता का ग्रीवा गिरा था। नलहटी शक्तिपीठ यह पश्चिम बंगाल के बोलपुर में स्थित है। जहाँ माता की उदरनली गिरी थी।

इसी प्रकार मिथला शक्तिपीठ, रत्नावली शक्तिपीठ, अम्बाजी शक्तिपीठ, जालंध्र शक्तिपीठ, रामागिरी शक्तिपीठ, वैधनाथ शक्तिपीठ, वक्त्रोश्वर शक्तिपीठ, कण्यकाश्रम कन्याकुमारी शक्तिपीठ, बहुला शक्तिपीठ, उज्जयिनी शक्तिपीठ माँ हरसिद्धी, मणिवेदिका शक्तिपीठ, प्रयाग शक्तिपीठ, उत्कल शक्तिपीठ, कांची शक्तिपीठ कालमाध्य शक्तिपीठ, शोण शक्तिपीठ, कामाख्या शक्तिपीठ, जयन्ती शक्तिपीठ, मगध शक्तिपीठ, त्रिस्तोता शक्तिपीठ, त्रिपुरी सुन्दरी शक्तिपीठ, विभाष शक्तिपीठ, देवीकूप पीठ कुरूक्षेत्र शक्तिपीठ, युगाधा शक्तिपीठ, विराट का अम्बिका शक्तिपीठ, कालीघाट शक्तिपीठ, मानस शक्तिपीठ, श्रीलंका शक्तिपीठ, गण्ड की शक्तिपीठ, गुह्यायेश्वरी शक्तिपीठ, हिंग्लाज शक्तिपीठ, सुंगध शक्तिपीठ, करतोयाघाट शक्तिपीठ, चट्टल शक्तिपीठ यशोर शक्तिपीठ।

इस प्रकार पुरे विश्व में शक्ति के विभिन्न रूप दिखाई देते है। इस प्रकार विभिन्न देशों एवं शहरों में भगवान शिव व शक्ति के रूप में अलग-अलग देशों व शहरों में शक्ति के रूप विराजमान है।

शिव शक्ति और उज्जयिनी

डॉ. जफर मेहमूद

असिस्टेंट प्रोफेसर, डिपार्टमेंट ऑफ उर्दू, शात. माधव कॉलेजत, उज्जैन

भारत वर्ष की चिन्तन परम्परा के केन्द्र में धर्म साधना और अध्यात्मिकता हमेशा बनी रही है। वैदिक काल से आज तक अनेक मतमतांतरों के होते हुए भी चिन्तन की मूल धारा अविरल चल रही है। जो यह मानती है कि सृष्टि का कोई नियंता है जो सारे संसार को गतिमान किये हुए है। वैदिक देव परम्परा में हमारे ऋषि मुनियों ने जिस देव मण्डल की कल्पना की थी उसमें लगभग सभी देवता प्रकृति और उसकी शक्ति से जुड़े हुये थे ।

इन देवताओं में अग्नि, वरूण, मरूत, प्ररजन्य, द्यौ, पृथ्वी, अन्तरिक्ष सभी के प्रति ऋषियों के प्रार्थना मंत्र है। इन्द्र के रूप में देवराज की कल्पना साकार हुई। यह सारा धार्मिक चिन्तन और अनुष्ठान आर्य परम्परा से जुड़ा हुआ है। वैदिक परम्परा में यज्ञ हवन के माध्यम से वातावरण को परिशुद्ध करने की प्रक्रिया भी चलती रही। यज्ञ के साथ ही पशु बली के रूप में अध्वमेघ और गौमेघ जैसे धार्मिक अनुष्ठान भी हुए । बाद में पशुपालन और कृषि के कामकाज में गाय और बैल के महत्व के कारण गौ मेघ का निषेध हुआ। वैदिक विद्वानों की परम्परा भगवान शिव को वैदों में वर्णित रूद्र के रूप में देखती है। तैतीस कोटी (तरह के) देवताओं में ग्यारह रूद्रों की चर्चा भी वेदों में आई है। वेदों में उपरयुक्त देवताओं के अलावा सूर्य, उषा, आदि, देवों की भी मनोहारी प्रार्थनाएं मिलती हैं। शक्ति रूपी भगवती का उल्लेख वेदों में नहीं मिलता और ना ही शिव पुत्र गणेश की स्पष्ट चर्चा हुई है।

भारत की आचार विचार और चिन्तन की परम्परा में शास्त्र के साथ लोक की महीमा को हमेशा प्रतिष्ठा मिली है। भगवान शिव वस्तुतः लोक जीवन के ही आदिम देवता है और शक्ति ही उनकी जीवन संगीनी है। भारत और भारत के बाहर आदिम समाजों में उस समय जब मनुष्य कबीलों के रूप में रहता था, तब भी गई जगह लिंग पूजन के रूप में शिव की पूजा होती रही है। वस्तुतः लिंग और योनी सृष्टि के उत्पत्ति का एक वैज्ञानिक प्रतीक है। इस तथ्य से कोई भी इंकार नहीं कर सकता। भारतीय समाज में शिव कथा और शिव की आराधना के संकेत बुद्ध के बाद के इतिहास में मिलते हैं।

जैसा की विदित है शिव का धाम हिमालय इसे शास्त्र और बाद में लिखे गये पुराण मानते है। हमारी धार्मिक पूजा पद्धति में लोकजीवन से लेकर नगर जीवन तक शिव पार्वती उपासना के लिये विराजमान है। जहाँ शिव की पूजा स्थली के रूप में बाहर ज्योर्तिलिंग है वही शक्ति की पूजा के लिये बावन शक्ति पीठों की चर्चा हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों में मिलती है।

भारत ऐसे प्राचीन नगरों का देश रहा है जिसके किनारे सभ्यताओं और संस्कृतियों ने जन्म लेकर भारत की सांस्कृतिक यात्रा को प्रवाहमान बनाया है। अगर वैदिक काल में सप्त सिन्धुओं का महत्व था तो बाद के समय में गंगा, जमना, सरस्वती से लेकर नर्मदा, गोदावरी और कृष्णा तक हमारी

सांस्कृतिक यात्रा प्रवाहित रही है। सारे जहाँ से अच्छा गीत लिखने वाले अल्लामा इकबाल कहते है:

ए आबरू दे गंगा वो दिन याद है तुझको
जिस दिन उतरा तेरे किनारे कारवां हमारा॥

भारत के ऐसे प्राचीन नगरों और तीर्थ स्थलों में काशी, हरिद्वार, मथुरा, उज्जैन, द्वारका, पुरी और काशी का विशेष महत्व रहा है। इन्हें मोक्ष देने वाली सात नगरी भी कहा जाता है।

उज्जैन को इतिहास में अनादि नगरी का सम्मान प्राप्त है। जैसे पश्चिम में कारथेज, एथेन्स, स्पार्टा और रोम अपने इतिहास के लिये जाने जाते हैं। वैसे ही उज्जैन भी इतिहास के अनेक दौर में ना जाने कितनी तूफानी करवटें बदलता हुआ आज भी अस्तित्व मान है। उज्जैन का इतिहास बहुत पुराना है। इसके सुदूर इलाकों में आदि मानव की गुफाएं और आसपास के इलाकों में हडप्पा संस्कृति के अवशेष कायथा और भैरवगढ़ में मिले हैं फिर भी ग्रन्थों में उज्जैन का उल्लेख सबसे पहले महाभारत काल में मिलता है जहां उल्लेख है कि यहाँ के राजा बिन्द और अनुबिन्द न कौरवों की सेना के साथ मिलकर युद्ध किया था। भगवान श्रीकृष्ण की एक पत्नी मित्रवृन्दा भी उज्जैन की ही मानी जाती है। यह सारा घटना क्रम आज से लगभग साढ़े तीन हजार साल पुराना है। इसके बाद बुद्ध के समकालीन राजा चण्ड प्रदयोत और वस्तं जनपद के राजा उदयन की घटनाओं में उज्जैन का उल्लेख मिलता है। कालिदास के रघुवंश महाकाव्य में भी इन्दुमती स्वयंवर के प्रसंग में अवन्तिका नाथ की चर्चा आती है जिसे बहुत से इतिहासकार प्रथम विक्रमादित्य (ईसा पूर्व पहली शताब्दी) के रूप में मानते है। इस दौर में उज्जैन बौद्धों और जैन धर्म का एक प्रमुख केन्द्र था। पश्चिमी भारत से समन्दर के रास्ते होने वाले व्यापार का केन्द्र बहुत बड़ी मण्डी उज्जैन था। डॉ.भगवत शरणअध्याय ने अखण्ड भारत पुस्तक में मालवा के इतिहास के संदर्भ में अज्ञात यूनानी नाविक के यात्रा व तांत 'पेरिप्लस ऑफ द इरिथ्रियन सी' में उज्जैन के उल्लेख की चर्चा की है। किसी विदेशी पुस्तक में उज्जैन का यह पहला जिक्र हमें मिलता है। बाद में उज्जैन का वैभव गुप्तकाल में अपने चरम उत्कृट पर था और यहाँ के बाजारों के वैभव की चर्चा कालिदास ने अपने खण्ड काव्य मेघदूत में की है। गुप्तकाल के बाद इस ऐतिहासिक नगर की किस्मत एक बार फिर परमार काल में चमकती है आज उज्जैन में और उज्जैन के आस-पास जितने मंदिर है वे लगभग सभी परमार काल में ही बनाए गए हैं।

उज्जैन शैव और वैष्णव परम्परा का महान तीर्थ है भूत भावन भगवान शिव यहाँ पर महाकालेश्वर के रूप में विराजमान है तो दूसरी और विष्णु के सर्व प्रिय पूर्णावतार योगेश्वर श्री कृष्ण ने महर्षि सान्दीपनि के आश्रम में शिक्षा पाकर सौलह विद्याओं और चौसठ कलाओं का ज्ञान प्राप्त किया। कालिदास के मेघदूत में कवि ने महाकाल मन्दिर की सायंकाल आरती में शामिल होने के लिये मेघ को उज्जैन में रुकने के संकेत दिया था। मेघ स्वयं अपनी गर्जना और गढ़गढाहट से भगवान शंकर की आरती में प्रकृति की ओर से नगाड़े बजाने का उद्घोष करता है। वह उस क्षिप्रा के पावन तट पर रुक कर पवित्र जल का स्पर्श भी करता है। क्षिप्रा की वे हवाऐं उज्जैन की ललनाओं को हमेशा तरोताजा बनाएं रखती है। यह बात भी कालिदास हमें बताते है। कालिदास के अलावा भास, शुद्रक, वाणभट्ट और भर्तृहरि के साहित्य में भी उज्जैन के जनजीवन का मनोहारी चित्रण मिलता है। राजशेखर आदि समीक्षकों ने भी उज्जैन को कविता की परीक्षा स्थली कहा है।

भगवान शिव इस नगर के राजाधिराज है। भस्म से उनका प्रतिदिन शृंगार होता है। गर्भगृह में शिवलिंग को अनेक रूपों में सजाया जाता है। सावन के महिने में शिव का नित नूतन शृंगार देखने के लिये सारे भारत से श्रद्धालु आते है। धार्मिक दृष्टि से स्कन्द पुराण के अवनित खण्ड में उज्जैन की महिमा का सर्वाधिक उल्लेख हुआ है। शूद्रक ने मृच्छकटिक और भाण ने चतुभाणी में उज्जैन के जनजीवन बाजार और जनता के मनोविनोद

की बहुत विस्तार से चर्चा की है। भर्तृहरि और रानी पिंगला की कहानी भी आज तक उज्जैन की गलियों में गायी और दोहराई जाती है।

शिव की अर्द्धांगिनी शक्ति का अनेक रूपों में वास उज्जैन में दिखाई देता है। भारत के बावन शक्तिपीठों में से एक हरसिद्धी का सुप्रसिद्ध मन्दिर भी यहाँ उपस्थित है। मान्यता है कि यह देवी विक्रमादित्य की आराध्या रही है। नगर के दूसरे सिरे पर प्राचीन किले के इलाके में देवी गढ़कालिका का मन्दिर है, इन्हें महाकवि कालिदास की आराध्या देवी माना गया है। इन्हीं देवी की कृपा से मन्दबुद्धि कालिदास शास्त्रज्ञ और महाकवि बन गए थे। शक्ति केन्द्र में नगर के अन्य हिस्से में नगर कोट की ग्रनी नाम से शक्ति मन्दिर स्थापित है। आज जहाँ पर महाकालेश्वर का मन्दिर स्थित है उसे पुराणों में महाकालवन कहा गया है। भगवान शिव के प्रमुख सेनापति काल भैरव का मन्दिर भी उज्जैन में स्थित है। इसके साथ शिव के गण के रूप में 56 भैरव भी नगर में विराजमान हैं। शक्ति रूपी देवी के रूप में भूखी माता का मन्दिर भी कर्क राजेश्वर महादेव मन्दिर के सामने क्षिप्रा तट पर स्थित है। गढ़कालिका और भूखीमाता परपशुबली की परम्परा रही है। महाकालवन के बाहर के मुख्य द्वार को चौखम्बादेवी का स्थान कहा गया है जहाँ महामाया और महालया के रूप में शक्ति की देवी विराजमान है। इसके साथ ही चौसठ योगिनियों का पूजा स्थल भी उज्जैन में है। शैव और वैष्णव परम्परा के साथ ही शाक्त और तांत्रिक परम्परा का केन्द्र भी उज्जैन रहा है। मध्यकालीन धर्म साधना से जुड़े सिद्धों और नाथों की भी यह भूमि साधना स्थली रही है। मत्सैन्द्रनाथ की समाधी और राजा भर्तृहरि की गुफा इसके उदाहरण है।

उज्जैन को पृथ्वी का नाभिकेन्द्र माना गया है। इसके कुछ दूर से कर्क रेखा भी गुजरती है। आज शिव और शक्ति के केन्द्र के रूप में उज्जैन की अलग ख्याती है। पौराणिक आख्यान के अनुसार प्रत्येक बारह वर्ष में होने वाला हिन्दु धर्म का सबसे बड़ा पर्व सिंहस्थ महाकुम्भ भी यहाँ आयोजित होता है जिसमें भारत के सभी सम्प्रदायों के साधु सन्तों का समागम होता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. विक्रम स्मृति ग्रन्थ–1944
2. प्राचीन वैदिक संहिताएं
3. प्राचीन भारत का इतिहास–डॉ.रमाशंकर त्रिपाठी
4. प्राचीन भारत का इतिहास–डॉ. भगवतशरण उपाध्याय
5. साहित्य और कला–डॉ. भगवतशरण उपाध्याय
6. मेघदूत–कालिदास
7. शिवपुराण
8. अखण्ड भारत–डॉ. भगवतशरण उपाध्याय
9. स्कन्द पुराण
10. उज्जैन का पुरातत्व–व्ही श्रीवाकणकर
11. महाभारत
12. रघुवंश–कालिदास
13. उज्जयिनी दर्शन–1957 सूचना एवं प्रकाशन विभाग म.प्र.

आध्यात्म एवं संगीत का अंतः सम्बन्ध

सरस्वती नेगी

शोधार्थी (संगीत) महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

संगीत एवं आध्यात्म भारतीय संस्कृति का सुदृढ़ आधार है तथा भारतीय संस्कृति में पनपने वाली प्रत्येक कला का ध्येय भौतिक संसार से ऊपर उठकर आलौकिक आनन्द को प्राप्त करना है। अतः भारतीय मनीषियों ने कला के माध्यम से अपनी आत्मा की उन्नति करके भौतिकतावाद से भी ऊपर एक आनन्द सुख को महत्व दिया है, जो आत्मिक सुख के नाम से जाना जाता है।

मानव जीवन का चरम लक्ष्य परमात्मा का साक्षात्कार माना गया है। इस लक्ष्य की प्राप्ति का सर्वोत्तम माध्यम संगीत होने के कारण इसे आध्यात्म के रंग में पूरी तरह रंगने का प्रयत्न किया गया है।

हिन्दी विश्वकोष में आध्यात्म शब्द की व्याख्या इस प्रकार दी गई है–

'आत्मानं देहमिन्द्रि दिव्यं क्षेत्राय ब्रह्मा व अधिकृतम।'

आत्मा या ब्रह्मजीव से सम्बन्धित ज्ञान अथवा परमात्मा से सम्बन्धित ज्ञान।

गीता के इस कथनानुसार–

'स्वभावोआध्यात्मुच्यते' अर्थात् स्वभाव ही आध्यात्म है। एक अन्य कथन के अनुसार प्रत्येक शरीर में परब्रह्म का जो अंश या उसकी सत्ता विद्यमान है वही 'आध्यात्मा' है। जब मनुष्य जगत के राग द्वेष से ऊपर उठकर ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है जो केवल प्रकाशमयी अवस्था है, चेतनावस्था है वही आध्यात्म है और इसके प्रति किया गया बौद्धिक तर्कपूर्ण विवेचन 'दर्शन' है। 'परमात्मा' एक है, ब्रह्म और ब्रह्माण्ड दो हैं या ईश्वर, जीव और जगत तीन हैं आदि।

आध्यात्म क्षेत्रा में 'ज्ञान' मन-मस्तिष्क का आहार है 'कर्म' उसका 'प्राण' है 'उपासना' उसके हृदय की विश्राम भूमि तथा 'संतात' हृदय की शीतल छाया है और यह सभी मिलकर आत्मा को संतोष व तृप्ति प्रदान करते हैं। सच्च आध्यात्मिक अन्वेषक अपने मन को किसी प्रकार के सत्य के प्रति बन्द नहीं रख सकता।

संगीत कला का लक्ष्य आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति है जिसके कारण प्रत्येक कला, भक्ति, धर्म व उपासना प्रधान हो गई है जिनका उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति है। संगीत साधना द्वारा दिव्यता की प्राप्ति, आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध को समझते हुए, आलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है अतः यह स्थिति योग का एक उन्नत स्वरूप है। संगीत सौन्दर्यबोध को जागृत करने का एक सुगम व ईष्ट माध्यम है तथा दैवीय आनन्द की अनुभूति कराने में सहायक होता है।

अहोबल के कथनानुसार

जहाँ संगीत है वहीं ईश्वर निवास करते हैं।

स्वयं विष्णु नारद जी से कहते हैं–

"हे नारद! न तो मैं बैकुण्ठ में निवास करता हूँ और न ही रोगियों के हृदय में, अपितु मेरे भक्त जहाँ गान करते हैं, वहीं मैं निवास करता हूँ।"

समस्त दुःखों का मूल व्यक्ति का अहम है। कलाओं के स्पर्श से अहं का मेल कुछ काल के लिए धुल जाया करता है और मन निर्मल हो जाता है। समस्त कलाओं में संगीत कला इस कार्य में सबसे ज्यादा सक्षम है। संगीत के माध्यम से आत्मा लय सीख जाती है, संगीत चरित्र बनाता है, और उसमें धर्म की प्रवृत्ति आ जाती है। संगीत के द्वारा न केवल परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है वरन् स्वयं परमात्मा स्वरूप को प्राप्त किया जा सकता है। अतएव संगीत का अध्यात्म से गहरा तथा अभेद्य सम्बन्ध है।

. जीवनरूपी संगीत ही नारब्रह्म या वाग्देवी की वीणा है जिसके सप्तक में आनन्द की सत्प धाराएँ मूर्त रूप ग्रहण करती हैं। संगीत की सच्ची साधना वही है जिसके फलस्वरूप मानव का मन उस उच्चतर सूक्ष्म नाद का अनुभव करने योग्य बन सके। प्राचीन आध्यात्मवादी, आध्यात्मिक उत्थान के लिए संगीत का महत्व समझते थे और उसी के अनुसार उसका उपयोग करते थे। वे अनुभव करते थे कि ब्रह्माण्ड का जीवन स्वयं एक छंद है, और गीत का स्रोत, छंद में निहित है तथा आत्मज्ञान को धुनों में केन्द्रित कर दिया गया।

आध्यात्मिक दृष्टि से "जो अदृश्य है वही दृश्य जगत को, इन्द्रिय, ग्राह्य वस्तु जगत को, नियंत्रित करता है।" "वह जो भले ही अदृश्य है किन्तु जिसकी सत्ता है उसे आत्मा कहते हैं। इस अदृश्य सत्ता, इस आत्मा को जानने की की प्रक्रिया आध्यात्मिक संस्कृति का आधार है।" आध्यात्मिक संस्कृति में प्रकृति को समझने, उसके साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने और अन्ततः उसके पार जाने का प्रयत्न होता है। आध्यात्मिक दर्शन व्यक्ति के जीवन को पूर्णतः परिवर्तित कर देता है।

संगीत एक यौगिक विद्या है जिसकी तीव्र एवं तीव्रतर ध्वनियाँ मनुष्य के सूक्ष्म स्नायुओं को झंकृत कर सुषुप्त कुण्डलिनियों को जागृत कर देती है तथा मानव आत्मा को आत्मोन्नति की चरम सीमा 'मोक्ष' के द्वार पर पहुँचा देती है—जो भारतीय दर्शन का अंतिम दर्शन है।

संगीत की इस महान उपलब्धि एवं महत्व की स्वीकार्यता उपेन्द्र चन्द्र सिंह की कृति What is Music में प्राप्त होती है।

"To summarize what is music one can safelly say it is a kind of yoga system through the medium of sonorus sound which act upon the human organism and awaken and develop their proper function to the extent of self-realisation. The ultimate Goal of Hindu philosophy or religion."

संगीत में मन को एकाग्र करने की एक अत्यन्त प्रभावशाली शक्ति है। तभी से ऋषि मुनि इस कला का प्रयोग परमेश्वर की आराधना के लिए करने लगे। 'ऊँ' शब्द ही ब्रह्म है ऐसा मानकर उन्होंने इसे कड़े नियमों में बाँधने का प्रयत्न किया।

प्राचीन आचार्योंनुसार

"ओंकार, बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चेव ओंकारय नमो नमः॥"

अर्थात् ओंकार बिन्दु संयुक्त है। बिन्दु सृष्टि का परम रहस्य है। योगी इस बिन्दु संयुक्त ओंकार का नित्यमेव ध्यान करते हैं तथा काम व मोक्ष दोनों की प्राप्ति ओंकार से संभव है, ऐसा मानते हैं।

'ऊँ' अथवा 'अंकार' को नाद-ब्रह्म का सर्वोच्च गुण माना गया है। भारतीय वाङ्मय में यह विलक्षण शब्द है तथा इसे 'मस्य वाचकःप्रणवः' अर्थात् परमात्मा का वाचक पद माना गया है।

इस प्रकार संपूर्ण संसार अप्रत्यक्ष रूप से संगीतमय है। संगीत एक ईश्वरीय वाणी है, अतः यह ब्रह्म रूप ही है। संगीत आनन्द का आर्विभाव है तथा आनन्द ईश्वर का स्वरूप है तथा आध्यात्म एवं संगीत एक ही सिक्के के दो पहलुओं के बराबर माना गया है। आध्यात्म जितनी सरलता से संगीत

के द्वारा समझा जा सकता है उतना किसी और कला से नहीं।

अंततः सार्थक जीवन वस्तुतः उसी मनुष्य का है जिसने अपने जीवन में आध्यात्म, भक्ति, साहित्य और संगीत को पूरी गम्भीरता से जाना, समझा तथा अपने जीवन में उतारा।

संदर्भ ग्रंथ

1. भक्ति संगीत का उद्‌गम और विकास, लेखक डॉ. शरच्चंद्र परांजये
2. संगीत, आध्यात्म एवं मानव नाड़ी-तंत्र, डॉ. दिव्या त्रिपाठी, राज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
3. भारतीय संगीत का आध्यात्मिक स्वरूप, डॉ. राजीव वर्मा, डॉ. नीलम पारीक, अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स, दिल्ली
4. संगीत (मासिक) अप्रैल, 1975
5. इंटरनेट से डाउनलोड संदर्भ
6. संगीत का योगदान मानव जीवन के विकास में, डॉ. उमाशंकर शर्मा

रागों के बंदिशों में शिव-शक्ति

शिवेष कुमार

छात्रा टी.एम.बी.यू. भागलपुर

संगीत ईश्वरीय सुंदरतम सृष्टि का मधुरतम अभिव्यक्ति है, आराध्य के प्रति पूर्ण तन्मयता के लिए भजन, कीर्तन के रूप में इसे स्वीकार किया गया। आराध्य प्रतिमा तथा दैवी के साथ मानवीय गुण सम्पन्न आराध्य की भाँति भारतीय संगीतज्ञ की आराधना लौकिक स्तर पर स्वरों व्याकरण इत्यादि से आरंभ होती है। संगीत तैरते हिमखंड की भाँति अभिव्यक्ति का मात्र आंशिक रूप है, परंतु वास्तविक रूप हमारी दृष्टि से परे है।

वैदिक काल से भी पूर्व प्राचीनतम एवं परम्परावादी होने के बावजूद सतत् प्रयोग धर्मिता एवं उदार दृष्टिकोण ने भारतीय संगीत को समृद्ध किया है। आध्यात्मिकता समग्र भारतीय जीवन-दर्शन की मूल-भित्ति रही है। परमतत्व के अनुसंधान की चेष्टा हमारे सभी प्रयासों को चिरकाल से निरंतर अनुप्रमाणित करती रही। आध्यात्म के रंग में कर हमारे मनीषी कलाकारों ने विश्व के प्रत्येक रूप में सर्वव्यापी दिव्यसत्ता का साक्षात्कार किया है। तैत्तरीय उपनिषद के अनुसार–

''रसो वैस। रस ह्योवायं लब्धवा आनन्दीभवति। को ह्योवान्यातः कः प्राणयात यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एव ह्योघनन्दयति।''

उपरोक्त वर्णित श्लोकों के अनुसार यही परमानंद की मीमांसा है। संगीत इसी आत्मानंद का माध्यम है। संगीत का मधुर कलरव जब कर्ण कुहलों में पड़ता है तब हृदय के अन्तस की चेतना प्रबुद्ध हो जाती है तथा अन्तस की ऐसे अलौकिक आनन्द एवं दिव्यानुभूति का अनुभव करता है जो साधारण इन्द्रिजन्य से शतोगुण अधिक है।

डॉ. शरच्चन्द्र परांजपे जी के शब्दों में–''संगीत एक त्रिपुटी है, गीत, वाद्य, नृत्य उस त्रयी का समावेश नादा ही के विस्तार है। संगीत का नाद सारे ब्रह्मांड में व्याप्त है। भारतीय संगीत एवं संस्कृति का आध्यात्मक केवल एक व्यक्ति की गवेषण चेष्टा नहीं बल्कि विश्व में व्याप्त सामूहिक समष्टिगत आत्मा की खोज है।

यह सर्वमान्य तथ्य है कि संगीत में गीत, वाद्य, नृत्य तीनों का समावेश है–''Sangeet is a technical term used for a vocal and instrumental music along with the heart of dancing, these three fine art's are closely connected with one another in such a way that is a almost impossible to separate.''

मनुष्य एक ज्ञानशील प्राणी है। अतः संगीत से उसे विशेष आनंद प्राप्त होता है। संगीत में निहित स्वर लहरिया व्यक्ति में अंतर्निहित सूक्ष्मताओं और विशिष्टियों को अपने ही रूप में रूपान्वित व समाहित कर लेती है। ध्वनियम राग-रागणियों हमारी आत्मा को अत्यंत ही प्रभावित करती है, क्योंकि संगीत में गति है और हमारी क्रियाएँ भी

गत्यात्मक होती हैं तथा मानव जीवन का लक्ष्य आत्मालाभ है।

"आत्मालाभात्र परं विद्यते॥"

भारतीय संगीत शब्द 'गी' धातु में 'सम' उपसर्ग तथा 'क्त' प्रत्यय लगाकर बना है अर्थात सम+गी+क्त=संगीता इसलिए शाब्दिक व्युत्पति के आधार पर संगीत का अर्थ–भलीभाँति गाने योग्य-सम्यक् गीतम् संगीतः। प्राचीन संस्कृत वांग्मय में संगीत का व्युत्पात्तिगत अर्थ सम्यक् गीतम है अर्थात् ध्यानपूर्वक या आवधान से गाया गया गीत है। संगीत शब्द 'गीत' में सम् उपसर्ग लगाकर बना है। सम् यानी सहित अर्थात् अंगभूत क्रियाएँ एवं वादन के साथ किया हुआ कार्य संगीत कहलाता है। जब हम संगीत के शब्दों को अलग करके या तोड़कर देखते हैं तो कुछ और भी अर्थ नजर आते हैं जैसे–संगी, संत, गीत इत्यादि।

मध्यकाल में संगीत ग्रंथकारों ने निम्नलिखित आधारों का अनुकरण किया है–

"गीत, वादित्रा, नृत्यानां त्रांय संगीत मुच्यते गानस्था त्रा प्रधानत्वातच्छंगीतमितिरितम्"॥

"संगीत परिजात श्लोक"

"गीर्तं वाद्यं च नृत्यं त्रायं संगीत
मुच्चते नारदेन कृतं शास्त्रां
मकरन्दारव्यमुक्तम्"॥

'संगीत मकरंद प्रथम पाठ श्लोक'

उपरोक्त श्लोको के अनुसार संगीत गीत वाद्य और नृत्य तीनों का ही समावेश है।

"नृत्यं वाद्यानुगं प्रोक्तं वाद्यं गीतानुवृतिच
अतोगीत प्रधानत्वादत्राा ऽऽदावशीधीयते॥"

अर्थात् गान के अधीन वादन और वादन के अधीन पर्तन है। अतः संगीत में गान को ही प्रमुखता दी गई है। संगीत पूर्णतः क्रिया प्रधान कला है। परंतु जब शास्त्र के आधार पर कोई क्रिया की जाती है तभी वह अधिक शुद्ध होती है। इसी आधार पर संगीत को परिष्कृत कला का रूप प्रदान करने के लिए नियम बनाए गए हैं। जिन्हें संगीत के सिद्धांत कहते हैं। जिस प्रकार सामान्य बोलचाल को व्यवस्थित विधान से प्रस्तुत करने के उद्देश्य से व्याकरण की रचना हुई और भाषा के परिष्कार के साथ साहित्य निर्माण हुआ उसी प्रकार परिष्कृत रूप में व्यक्त करने हेतु कुछ सिद्धांतों की रचना की गई जिन्हें शास्त्र की संज्ञा दी गई है।

शास्त्रीय संगीत अर्थात् शास्त्र निबद्ध व शास्त्र पर आधारित संगीत। अर्थात् वह संगीत जो शास्त्रों व नियमों के अनुसार हो अर्थात् नियमों में बंधा हो प्रचलित मान्यताओं का ज्ञान कराना ही शास्त्र पक्ष है। हमारा शास्त्रीय संगीत राग-प्रधान है। संगीत का रागों में वर्गीकरण भारतीय शास्त्रीय संगीत की अपनी प्राचीन अथवा अर्वाचीन संगीत में इस रूप में नहीं मिलता रागों का विकास कैसे हुआ उनके आरोह-अवरोह, जाति वादी-संवादी, चलन, पूर्वांग उत्तरांग इत्यादि के नियम कैसे और कब आ गये इन सब बातों को शास्त्रीय संगीत के द्वारा ही पता लग पाता है। शास्त्रीय संगीत के प्राचीन ग्रंथों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि प्रत्येक राग का अपना एक स्वरूप होता है।

राग और रागों की पत्नियाँ, उनके पुत्र और पुत्रियाँ, पुत्रवधु और संभवतः जमाता का भी वर्णन मिलता है। रागों का अपना एक विशिष्ट स्वरूप भी होता है इत्यादि। शास्त्रानुसार रागों का स्वरूप निश्चित है जिनसे रस की सृष्टि होती है। सप्तक के प्रत्येक स्वर का संबंध अलग-अलग रस से भी जोड़ा गया है।

"सरीड वीरेडभुते रौद्रेध विभत्से भयानके।
कर्यो ग नी तु करूणे हास्य श्रृंगारयार्मयौ॥

शायद उपरोक्त वर्णित श्लोकों के आधार पर ही ख्याल गायन अथवा राग गायन इतना रसात्मक रहा है। राग विबोध नामक पुस्तक में सोमनाथ जी ने भी लिखा है–

"सुस्वरवर्ण विशेषं रूपं रागस्य बोधक दुवेधा।

नादत्मक व रंवमयं.....तु।

अर्थात् रूप उसे कहते हैं जो सुन्दर स्वर और वर्ण विशेष द्वारा राग को सम्मुख उपस्थित कर देता है। यह रूप दो प्रकार का होता है—नादमय और देवमय स्वर विधान राग का शरीर है, तो भाव अथवा प्रकृति उसकी आत्मा है। यही आत्मा राग के देवतामय स्वरूप का विधायक है। राग देवता का आवाह्न करने के लिए कुछ अवलम्ब चाहिए, इसलिए ध्यान का विधान किया गया है। ध्यान के माध्यम से देवता निमंत्रित किये जाते हैं, इत्यादि।

"सरोवरस्थे स्फटिकस्य मण्डये सरोरूहे शंकर ताल प्रभेद प्रतिपन्न गीता, गौरीयमुर्नाम हि भैरवीयमा"

अर्थात्—एक तालाब बना हुआ है। जिसके बीचों बीच एक स्फटिक मणि का मंदिर बना है। ताल में कमल फूले हैं। उन फूलों को लेकर जो भगवान शंकर की पूजा कर रही है, ताल के भेद विभेद द्वारा गीत संपन्न हो रहे हैं। वह समान शरीर वाली पार्वती रागिणी है।

ठीक इसी प्रकार रागों के बंदिशों में शिव-शक्ति का वर्णन काफी देखने को मिलता है। प्रसिद्ध ध्रुपद गायक डागर बंधु तानसेन के निम्न पद को प्रायः गाया करते थे—

"पूजक चली महादेव।
चंद्रवदनी मृगनयनी हंसगमनी पार्वती।
कर अग्र थाल लिए पुष्पों के गूंथे हार।
मुख दियरा जराय देवन में महादेव।
नख शिरव सोलहू शृंगार किए।
सुंदरता बरनी न जाई ॥
'तानसेन' प्रभू धुप दीप नैवेध ले।
हर हर हर महादेव ॥"

राग कल्याण के बंदिर में भी, शिव-शक्ति का वर्णन कुछ इस प्रकार देखने को मिलता है—

तीनताल (छोटा ख्याल)

स्थायी— "सदा शिव भज मना निशदिन।
रिधी-सिद्धि दायक बिनती सहायक।
काहे न सुमिरत फिरत अनवरत ॥

अंतराः— शंकर भोले पार्वती रमण।
शीततन पन्नग भूषण अनुपम।
नाहक भटकत फिरत तु रहत ॥

राग हिंडोल के ध्रपद में शिव-शक्ति के बंदिश

स्थायी— डमरू बाज हर के हाथ।
काशी बीच बास कियो ॥
सारी सृष्टि नावे माथ।
संग सोहे गिरिजा मात।

अंतरा— धथुरे और पीवे भंग।
अंग माही सोहे भुजंग ॥
तीन नेत्र सोहे माथ।
संग सोहे गिरिजा मात।

राग ललित में शिव-शक्ति के बंदिश

स्थायी— जोगिया मोरे घर आये।
घर-घर अलख जगाये ॥

स्थायी— अंग भभूत सोहे रूद्र माल।
गले नाग लटकाये।
संग पार्वती मात।

उपरोक्त बातों को गंभीरता से पढ़ने के बाद यह ज्यादा समझने को मिलता है कि ईश उपासना प्रत्येक धर्म का परम लक्ष्य है। धर्म चाहे जो भी हो, ईश्वर को किसी भी रूप में माना जाता हो। किन्तु गुणगान, उपासना आदि द्वारा उसे प्राप्त करना संगीत और धर्म का अंतिम लक्ष्य माना जाता है। संगीत के माध्यम से ही ईश्वर का गुणगान संभव है। जब श्रद्धा से हृदय भर जाता है। तो हृदयोद्गार स्वर लहरी फूट पड़ती है। इसलिए तो भक्ति काल में जब जनता तत्कालीन अत्याचारों से त्रस्त हो चुकी थी तो उसके सामने ईश्वर के शरण में जाने के अतिरिक्त और कोई मार्ग शेष नहीं था। यह कार्य संगीत के द्वारा ही सुलभ हुआ। भक्तिकाल में संतों ने ज्यादातर संगीत का ही सहारा लिया है। वे स्वच्छन्द होकर गाते थे। तुलसी जी की रचनाओं में ध्रुपद, ख्याल, टप्पा, ठुमरी आदि के उदाहरण मिलते हैं। संगीत की व्याख्या करते हुए सुप्रसिद्ध वैष्णव साहित्य मर्मज्ञ डॉ. दीन दयालु गुप्त ने लिखा

है—भगवान के नाम, गुण, महात्म लीला इत्यादि, भगवत भक्ति के यश का प्रेम और श्रद्धा के साथ कथन, स्तुति, स्वरों में पाठ तथा गान संगीत कहलाता है तथा यह गायन कला से ही संभव हो पाता है।

अतः हम यह कह सकते हैं कि जिस प्रकार तुलसी, मीरा, आदि जैसे भक्त संगीतज्ञों ने राम-कृष्ण इत्यादि देवी-देवताओं का वर्णन अपने संगीत में किया है। ठीक उसी प्रकार शिव-शक्ति का वर्णन भी शास्त्रीय संगीत में काफी देखने को मिल जाता है। इस तरह संदिशों में वर्णन किसी भी देवी-देवता के हों लेकिन उद्देश्य ईश्वर उपासना के साथ मोक्ष की प्राप्ति ही रही होगी। तथा साधक अपने ईश की उपासना संगीत के माध्यम से ही किया करते होंगे, ताकि ईश्वर का साक्षात्कार उन्हें सुलभता से हो सके। उदाहरणार्थ—रागों के बंदिशों में शिव-शक्ति, राम-कृष्ण, गणेश इत्यादि।

रामायण एवं मानस में ललित कलाएँ

डॉ. रोमा अरोरा

एसो. प्रो. संगीत विभाग, राजा मोल गर्ल्स पो. जो. कॉलेज, फैजाबाद

भारतीय संस्कृति का प्रधान भंग ललित कलाएँ हैं। रामायण और मानस में इन कलाओं का विवरण एवं चित्रण व्यापक रूपेण किया गया है। दोनों महाकाव्यों में कलात्मक विवेचन करने के पूर्ण कला का स्वरूप अथवा कला का महत्व ज्ञान अनिवार्य है।

कला को परिभाषित करना सरल नहीं है किंतु सहज रूप में कहा जा सकता है कि जिसमें ललित्य है, सूक्ष्मता से, आधूर्य हो, जो मनुष्य के भाव जगत को स्वतंत्रता पूर्वक अभिव्यक्त कर सके तथा जो परंपरागत रूप में अक्षुण रह सके, वह कला है। मानव हृदय की भावनाओं को जब सुंदरता से प्रस्तुत किया जाए, जिससे आत्मा प्रसन्न हो और हृदय अलौकिक आनंद से परिपूर्ण हो जाए, वह कला-ललितकला कहलाती है। कला का संबंध नियमों से नहीं है। कला, असीमित है अर्थात् मनुष्य की भावनाओं का जहाँ तक विस्तार है, वह सब कला का विषय है। इस दृष्टि से कला के दो विभाग होते हैं :–

1. उपयोगी कला 2. ललित कला।

ललित कला के अंतर्गत वास्तु कला, मूर्ति कला, चित्रकला, संगीत तथा काव्य कला है। यह श्रेणी इन कलाओं के आधार तत्वों पर निर्भर है।

रामायण और मानस भारतीय संस्कृति की धरोहर के रूप में हैं। ये दो–महाकाप्य, काव्य कला के प्रकाश स्तंभ हैं ही किंतु अन्य चार कलाओं का सांस्कृतिक रूप भी हमें रामायण और मानस में दृष्टव्य होता है।

रामायण व मानस में वास्तुकला :

रामायण युग में यज्ञ मंडपों का सूक्ष्म चित्रण मिलता है। इस युग में यशादि की प्रधानता थी। ये मंडप केवल साधारण वर्ग ही नहीं वरन् शिल्प शास्त्रियों के संचालन में निर्मित कराए जाते थे। व्यापक यज्ञ शालाओं के निर्माण का चित्रण भी रामायण में मिलता है। राजा दशरथ की नगरी अयोध्या के भवन, उपवन, सार्वजनिक स्थानों में शिल्प कला का आदर्श स्वरूप रामायण में दर्शाया गया है।[1] तत्कालीन वृद्धाकार गगन-चुंबी भवय रामायण एवं अनेक चौकें आदि का चित्रण भी रामायण में मिलता है।[2] एक भवन से दूसरे भवन जाने हेतु रथ का प्रयोग के अतिरिक्त किष्किंधा नगरी में वानर जाति के निवासगृह भी रामायण में अवलोकनीय हैं। आर्य एवं आचार्य जाति के प्रतीक राक्षसराज रावण की नगरी भी शिल्प कला में किसी से कम नहीं थी। वाल्मीकि ने रावण के घर को भी 'देवगृहीपमम्'[3] ही चित्रित किया है जिसमें अनेक अट्टालिकाएँ, अनेक कक्ष, स्वर्णमय-स्फटिक एवं चाँदी से निर्मित सुंदर स्तंभ थे। स्वर्ण का ही सोपानमार्ग था, जिसमें हाथी दाँत एवं चाँदी के मनोहर गवास थे। पर्वत-शिखर पर स्थित, प्रकार से आहत रावण के गृह की समृद्धि वैभव के साथ-साथ उसकी सुदृढ़ स्थिति का विवरण भी रामायण युग की वास्तुकला की मव्यता को प्रमाणित करता है।[4] रामायण में वाल्मीकि ने अयोध्या नगरी व लंका

नगरी दोनों के भवन निर्माण कला का उत्कृष्ट वर्णन किया है।

रामायण में भवनों की भाँति 'राजमार्ग' निर्माण का भव्य वर्णन है जिसमें 'जनपथ' की सभी सुविधाओं की ओर ध्यान दिया गया है। 'पंचवटी' निर्माण का सुंदर वर्णन वास्तुकला का एक अद्‌भुत उदाहरण है।

1. वा.स.1/5/7.8.
2. वा.रा. 1/15/30 से 35.36.37.
3. वा.रा. 3/55/6.12.

इस प्रकार महाकवि महर्षि वाल्मीकि ने वास्तुकला का पर्याप्त चित्रण रामायण में किया है जिससे तत्कालीन शिल्प कला की समृद्धि प्रमाणित होती है।

'पुर व्यवस्था' का चित्रण तुलसी के मानस में भी प्राप्त होता है जिससे तत्कालीन भवनों, मंदिरों की वास्तुकला का परिचय मिलता है।

रामायण एवं मानस में पूर्तिकला :

रामायण में मूर्तिकला का संकेत कौशल्या के 'पूजा-विधान के प्रसंग में मिलता है। देवी-देवताओं की मूर्तियों के विधान का भी उल्लेख मिलता है।[1] मानस में कौशल्या द्वारा इष्टपूजन, सीता द्वारा 'पार्वती पूजन' आदि के प्रसंगों में पूर्ति कला की भव्यता दृष्टिगत होती है।

रामायण एवं मानस में चित्रकला :

रावण के महलों में चित्रित कलाओं का वर्णन रामायण में मिलता है। तुलसी के समय में चित्रकला अपने विकास पर थी क्योंकि उस समय मुगल संस्कृति का समन्वय भी ले चुका था। दोनों संस्कृतियों का सम्यक चित्रण मानस में स्पष्ट होता है। तुलसी की मौलिक प्रतिभा एवं भक्ति में व्यक्ति का प्रभाव उनकी चित्रकला में भी निर्दिष्ट है। उनकी चित्रकला में रामचरित्र में समाहित है–

'चारुचित्र साल गृह-गृह प्रति लिखे बनाई।
रामचरित्र जे निरख मुनितेमन लेहिं चोराई।।[2]

रामायण एवं मानस में संगीत कला :

रामायण युग में संगीत विषयक समुन्नति एवं प्रसार के सर्वत्र दर्शन होते हैं। संगीत के कलापक्ष के साथ ही शास्त्रपक्ष के उत्कृष्ट प्रमाण रामायण में उपलब्ध हैं। 'साम संगीत' उस समय अपने पूर्ण उत्कर्ष पर था। धार्मिक अनुष्ठान के अतिरिक्त सामाजिक रीति-रिवाजों ने संगीत का प्रयोग बहुतापद से किया जाता था। रामायण के माध्यम

Mystic & Philosophical Aspects of Shiva Shakti : A Scientific Approach

Dr, Gaveesh

Ph.D. Music, M.A. (Music Vocal), M.Sc. (Math), B.Ed. Freelance Artist and Writer Samrala, Punjab

Abstract:

Shiva Shakti is very Mystic and philosophical concept of Ancient Indian philosophy. This concept is very useful in understanding life through consciousness, Energy & matter. This Concept is in equilibrium with Einstein's Mass-Energy equation ($E=kmc^2$) and other concepts of modern physics. Concept of Shiva Shakti is also backed by similar concepts around the world like Taoism, Greek philosopher Plato & Christian Gnostic mystic Simon the Magus. This Concept helps one to understand the basic principles of universe and ultimate reality of life. This paper explains the significance of the concept of Shiva Shakti through Ancient Indian philosophy and laws of modern Physics.

Keywords: Shiva Shakti, Modern Physics, Mass, Energy, Consciousness, Matter

Full Length Paper:

I have been constructed by someone out of half your body;

Therefore there is no difference between us, and my heart is in you.

Just as my Self, heart, and life has been placed in you,

So has your Self, heart, and life been placed in me.

– Brahma-Vaivarta-Purana

Shiva Shakti is the primal energy emanating continuously from the universal source and can never be exhausted. Shiva Shakti is that form of primal vibration, which is associated with everything existing in the universe. Anything existing in the universe is only manifestations of Shiva Shakti. Right from living to non-living, form or formless, working on natural or scientific energies, each and everything lie within the unlimited expanse of Shiva Shakti. There exists no place in reality or fiction, where the applications of Shiva-Shakti are not applicable. Shiva Shakti is the single source of universal existence, and is emanating out continuously. [1] Shiva represents the un-manifest and Shakti the manifest; Shiva the formless and Shakti the formed; Shiva consciousness and Shakti energy, not only in the cosmos as a whole but in each and every individual.[2] *Shiva Shakti* is the power of transformation and liberation in some

yoga traditions. It is one of three main forces and is personified in the Hindu god, Shiva, the transformer and destroyer of evil; while the feminine *Shakti* energy is represented by his consort, Parvati (sometimes referred to as Mahadevi). The masculine Shiva represents consciousness. The feminine Shakti is the activating and energizing principle. The two are said to unite in the crown chakra, sparking transformation in the form of spiritual enlightenment. [3]

Margaret Stutley, a world renowned scholar of World Religions defines 'Shakti' as representative of the dynamic energy or creative principle of existence. A power that is envisaged as not only feminine but it is manifested through a God's consort; the female being considered more creative, powerful, and continuously productive than the male. Shakti indicates how the undifferentiated Unity (Brahman) can produce the multi-dimensional cosmos with myriads of finite forms, since Shiva; the personification of the transcendental, static, immutable principle is incapable of creation. Hence, Shiva without Shakti is likened to a corpse (Shava), for they represent two inseparable principles and the union of energy (Shakti) with being (Shiva) is one of the Tantric ways to ultimate knowledge. [4] Shiva and Shakti are two inseparable entities in Indian mysticism. Just as moonlight cannot be separated from the moon, Shakti cannot be separated from Shiva. Kashmir Shaivism says that "Shiva without Shakti is lifeless (Sava) because wisdom cannot move without power". For comparison, what relationship Matter and Energy have in Physics; Infinite and Zero in Mathematics; Potential and Kinetic Energy in Energetic; Meaning and Word in Linguistics; the same is with Shiva and Shakti in understanding the mystery of Vedanta. [5]

Everything you see around you, whether physical, mental or whatever, is Shakti. This includes everything from a tiny stone to the sun. All manifestations of Shakti come from the underlying substratum, Shiva. The aim of Tantra is to invert the process to retread the path of creation as it were, back to union with Shiva (supreme). Tantra says that Shakti or the power of creating separate centers of manifestation (i.e. objects, individuals, etc.) is in essence consciousness itself (Shiva). However, the power of the phenomenal world around us veils itself through the power of Maya. Each and everything in the created universe is actually no more than manifested consciousness and even though everything comes from it, there is no change in the nature of consciousness. From Shiva comes the universe as a whole and everything individually through the power of Shakti, yet Shiva remains the same. The eternal wonder and mystery is that Shiva and Shakti are one and the same. [6] In the tantric cosmology, the whole universe (the macrocosm) is considered to have emerged and to be permanently sustained by two forces, opposed in term of polarity: Shiva (masculine) and Shakti (feminine). [7]

The philosophical principle of Shiva Shakti dualism in terms of iconography gets translated in the image of 'Ardhanarishvara' which literally translates into "The Lord who is half – female" containing all the opposites. The form denotes the inseparability of all male and female forms, the cause of creation,

and the constant dynamic power of nature carrying everything onwards from growth to decay. [8]

Similar concepts of Shiva Shakti exist in other parts of the world as well. The concept of Shakti and Shiva is by no means confined to India only. In his book 'Phaedrus', the ancient Greek philosopher Plato states "What is on earth is merely the resemblance and shadow of something that is in a higher sphere, a resplendent thing which remains in an unchangeable condition." One of the Gnostic mystics, Simon the Magus once said, "The universe consists of two branches, which spring from one root, the invisible power and the unknowable silence. One of these branches is manifested from above and is the universal consciousness ordering all things and is designated male. The other branch is female and is the producer of all things." These two concepts are quite similar to Shiva Shakti Concept. Energy, including matter and consciousness, are functioning together in the cosmos as well as in each and every human being. This combination gives rise to the world we see around us, to time and to place. Energy is controlled by consciousness and consciousness cannot express itself except through energy. As Sri Adi Shankaracharya wrote in the first Shloka of his 'Saundarya Lahari' that in order to merge with consciousness, one must take the help of Shakti. [9] It can be said that Lord Shiva is the first scientist in the whole world to show the existence of these two powers in human body, which is now scientifically proved.

Concepts of Modern Physics like Theory of relativity and Quantum physics can be understood in terms of concept of Shiva-Shakti. There is no Shiva without Shakti. Shiva is matter and Shakti is energy. This implies that there is no matter without energy and similarly one can say that matter too is a form of energy. Like what theory of relativity says $E=kmc^2$ (Where E is Energy, m is mass and c is the speed of light). Ardh-Narishwara, the deity with half Shiva and half Shakti is a representation of this, the whole universe being made of matter and energy, and both are in equilibrium, where matter keeps changing in to energy and energy in to matter. This concept is not only present in the Indian philosophy, but also in Toaism. [10]

Concept of Shiva Shakti is a vast concept which further leads to another concepts like concept of 'Full Consciousness', Formation of the Universe, and Concept of enlightenment. First two concepts are explained through Mass Energy duality of Shiva Shakti whereas principle of enlightenment can be understood in terms of 'Brahman' experience of Shiva Shakti. There is a supreme experience where Shiva and Shakti no longer exist as separate entities. Some call it 'Brahman', others refer to it as being 'Not this, not this', meaning that it is inexpressible, while still others say that it is one without a second. This is the state of Nirvana, Samadhi, perfect Oneness, Moksha or enlightenment. It is the state where Shiva merges so closely with Shakti that they become one. They embrace each other so tightly that they cease to be separate. They symbolize that enraptured state where separateness is no more. This is the Mystic and Philosophical aspect of Shiva-Shakti Concept. [11] By proper understanding Shiva Shakti concept one can understand

the mysteries of universe and understand higher purpose of one's life so as to attain peace, prosperity & happiness in one's life.

References:

1. https:\\www.speakingtree.in\blog\shiv-shakti-concept as retrieved on 23-08-18
2. http:\\www.yogamag.net\archives\1991\bmar91\twins.shtml as retrieved on 24-08-18
3. https:\\www.yogapedia.com\definition\ 10441\shiva-shakti as retrieved on 24-08-18
4. https:\\qrius.com\understanding-philosophy-shiva-shakti-ardhanarishvara\as retrieved on 25-08-18
5. http:\\blog.kkaggarwal.com\2013\03\ understanding-the-concept-of-shiva-and-shakti\ as retrieved on 25-08-18
6. http:\\www.yogamag.net\archives\1991\bmar91\wins.shtmlas retrieved on 24-08-18
7. https:\\www.sivasakti.com\ shakti-a-fundamental-tantric-concept-part1\as retrieved on 25-08-18
8. https:\\qrius.com\understanding-philosophy-shiva-shakti-ardhanarishvara\as retrieved on 25-08-18
9. http:\\www.yogamag.net\archives\1991\bmar91\twins.shtmlas retrieved on 24-08-18
10. http:\\www.ajithkumar.cc\sivam\shiva-shakthi-duality-and-the-science-of-saivam\ as retrieved on 24-08-18

011. http:\\www.yogamag.net\archives\1991\ bmar91\twins.shtmlas retrieved on 25-08-18

Shiva Shakti : A Tradition in Music

Dr. Uma Vijay

Assistant Professor, Department of Music

Maheshwari College, Jaipur

The two fundamental forces on which the entire universe is created, perceived and are indestructible in their cosmic union are known as 'Shiva Shakti'. Both Shiva and Shakti correspond to masculine and feminine energy where the masculine principle represents the "Force" and the feminine principle represents 'Energy' in its raw form.

Shiva and Shakti being the twin flames are the mirror images of each other. They complement each other and are the indestructible force that unite together to create the entire Universe. It is traditional to worship the Lord along with his consort and "Shiva-Shakti" symbolises this tradition.

Shiva defines the traits specific to pure transcendence and elevation to higher level of consciousness and is normally associated to manifestation of Shakti who is somewhat stronger (such as Kali and Durga) personification of Her own untamed and limitless manifestation.

Shiva is also known as 'Nataraja' - Lord of Dance and it is said that his 'Damaru' created the sound of musical notes and dance syllables. Shakti is known for her Lasya Priya Movements. It is also believed that the Raagas too originated from the Union of Shiva and Shakti.

Being one of the most worshipped deities in India, Lord Shiva and Goddess Shakti are inseparable as a couple and worship of the deities always happen together. The nature of being inseparable also extends to the fact that both Shiva and Shakti cannot operate without each other and their union creates life.

A very famous temple in Kanchipuram where Lord Ekamreshwarar and Devi Kamakshi are enshrined in separate temples in Kanchipuram. Kanchipuram is one of the "Pancha Bhoota Sthala"s where Lord Shiva is worshipped as "Prithvi Lingam". Devi Kamakshi, the presiding deity of Kanchipuram is one of the most famous shrines where Devi is worshipped in the "Sri Chakra".

According to Bengal traditions, the goddess Kali, often addressed as Tara, is identified with Krishna, locally known as Keshto. Both share the same dark-complexion, "Shyam-ranga", and their partners, Shiva in case of Kali, and Radha in case of Krishna, are fair as camphor, "Karpura-Gaur".

An ancient Hindu temple, located in Tiruchengode, in the southern Indian state of Tamil Nadu, is dedicated to Ardhanareeshwar, the Shiva Shakti divine form. It is perhaps the only temple in Asia where this rare form of the Divinity is enshrined as the principal deity.

So the concept of divinity with both male and female aspects permeates throughout Hinduism where they are considered as the Purusha-Prakriti (Consciousness-Matter) duality and Shiva's form of Ardhanareeshwara is a visualisation of this idea of divinity. There are many famous temples in South India dedicated to this divine form of Shiva-Shakti.

Shiv Shakti - Union of Sound and Melody

The sound (Naad) is considered to be Brahma and the meaning of the word 'Naad' is an unexpressed sound. According to Sharangdev in his Treatise "Sangeet Ratnakar":

"नकार प्राण मानं दकार नलं विदुः।
जात प्राणाग्नि संयोगात्तेन नादोऽभिधीयते ॥"

In the root Naad, 'N' sound stands for Air and 'D' sound stands for fire. The sound 'Naad' is originated with the conjunction of these two elements." This symbolises the Union of Shiva and Shakti.

Lord Shiva is considered to be the sound and Shakti is considered to be the Raga or Melody and when both are combined together it reproduces Divine Music. Shiva and Shakti play their respective roles yet being a combined entity and give us numerous ideas to apply in Music.

The sharp tunes of Music vibrates even the small cells of human body by awakening and illuminating and to help one reach the ultimate stage of upliftment of the soul i.e. Moksha [Salvation]. This is the ultimate goal of Indian system of philosophy which Lord also sings in the Bhagvad Geeta:

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मदक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

O' Narad :, "I do not reside in heaven, nor in the heart of the yogis, I reside where my devotees sing."

The Legendary Musician and one of the Trinity of Karnatic Music, Muthuswami Dikshithar has composed many Kritis in praise of Ardhanareeshawara. This one is based on Raag Kumudpriya.

पल्लवि

अर्धनारीश्वरम्आराधयामिसततं, अत्रिबृगुवसिष्टा-
दिमुनिबृन्दवन्दितं

अनुपल्लवि

अर्धयामअलङ्कारविशेषप्रभावं, अर्धनारीश्वरीप्रियकरं-
अभयकरंशिवं

चरणं

नागेन्द्रमणिभूषितंनन्दीतुरगारोहितं, श्रीगुरुगुहपूजितं-
कुमुदक्रियारागनुतं
आगमादिसन्नुतंअनन्तवेदघोषितं, अमरेशादिसेवितं-
आरक्तवर्णशोभितं

"I offer my prayers to Lord Ardhanareeshvara all the time. He is extolled by many sages such as Atri, Brighu, and Vashishta. His decoration for the Puja at night is specially splendorous. He is beloved of Ardhanareeshwari . He

gets rid of our fears, he is Shiva the auspicious, the benevolent. He is adorned by the king of serpents as ornament. Alternatively, he is adorned with the jewel Nagendramani. He rides Nandi as mount. He is worshipped by Guruguha (Subrahmanya, the signature of the composer), he is praised and worshipped in Raga Kumudapriya. Well praised in the Agamas etc. he is proclaimed in all the Vedas. He is worshipped by Gods such as Indra. He is splendorous with a reddish colour."

Saint Thyagaraja, one of the Trinity of Carnatic music, reveals the importance of worship of the sound and the melody in several of his compositions. In his Telugu *kriti* (or composition), '*Naadatanumanisam*', he states: *'Nadatanumanisam Sankaram Namamimey Manasa Sirasa'*,

"I bow to that Lord Siva who is the very essence of Nada or resonance (sound)".

Yet in another famous composition of Thyagaraja says *'Sobhillu Saptaswara Sundarulu Bhajimpavey Manasa'*, where Thyagaraja talks about the Divine Light glowing through the seven *swaras* or notes. Saint Thyagaraja very interestingly talks about the divinity of Shiva and Shakti and the worship of the two for a perfect Musical Sadhana.

Two Karnatic Ragas Kedaragowla and Surati are considered to be like the Shiva-Shakti duo whose shades overlap each other yet retain their exclusive domain. The masculinity of Kedaragowla is like the mighty Shiva on the Himalayan heights while the graceful Surati flows downhill like a gentle stream springing from the lofty pinnacle. From an aesthetic point of view such Ragas with Shiva and Shakti as the power driving them can be the most elevated ragas. Both the ragas originate from the same parent, the 28th Melakarta - Hari Kambhoji. Raag Shiv Shakti is also a rare Raaga in Karnatik Music and is a Janya of Natakapriya which also depicts the Union of Shiva and Shakti as its name suggests.

Every raga in Hindustani music also depicts a particular or a variety of emotional experiences. A raga called Chhayanat is a very popular raga and is a mixture of Chhaya and Nat Ragas. The union of its two constituents – Chhaya and Nat – is so natural as to leave virtually no trace of any suture. Both retain their individuality by having the other in it. Thus symbolising Shiva Shakti union this raga brings out the emotional powers mostly for joy and romance. There are very beautiful Hindi Film Songs tuned on Raag Chhayant. Baad Muddat Ki Yeh Ghadi Ayi from Film - Jahan Ara sung by Mohd. Rafi and Suman Kalyanpur, Chaina Nahin Aye, Kahan Dil Jaye from Film - Samundar sung by Lata Mangeshkar, Chanda Re, Ja Re Ja Re from Film - Ziddi also sung by Lata Mangeshkar, Ham Bekhudi Men Tumko Pukare Chale Gaye from Film - Kaala Paani sung by Mohd. Rafi, Mujhse Naraz Ho To

from Film - Papa Kehte Hain sung by Sonu Nigam and Tere Naina Talash Kare Jise

from Film - Talaash sung by Manna Dey.

Visualising Ragas as Shiva (Male) and Shakti (Female): Elevating the enjoyment of listening

Musical Scriptures say that five main melodies were derived from the union of Shiva and Shakti which are Bhairav, Hindol, Megh, Deepak and Shree. The sixth Raga that is said to originate from Parvati is Malkauns. The ones originated from Shiva are called Ragas and the ones from Shakti are called Raginis – wives of Ragas. So in the Treatises on Indian Classical Music, Ragas are classified as masculine and feminine which is more common in the Hindustani System.

Every Raga has a personality and a character that an artist has to understand. While Listening to certain ragas like Darbari, Malhar , Sarang, Bhairav etc. one can notice the attitude of Dominance, Aggression, Meditativeness, Stability which are the characteristics of a male mind and denotes a manly attitude. There are some ragas like Bhairavi, Madhuvanti, Bhimpalasi, Puriya Dhanashree etc whose moods and attitude depict absolute Romance, Surrender, Delicateness, Restlessness and Playfulness which are all feminine qualities.

Such kind of Music wrapped up with the divine union of consciousness and energy conveys happiness and peace of greater magnitude and connects us with the universal storehouse of tranquility, liveliness, knowledge and utter bliss.

Shiva Shakti in Scriptures

Scriptures say about music, "Music is beyond knowledge, meditation and chanting because by the devotional practice of music inner peace is attained." Music gives the ultimate joy and beauty. The greatness of music is narrated even in the Vedas and music consists in each and every hymn of the Vedas.

It is said in the very first verse of Kalidasa's Raghuvamsha he says that Shakti and Shiva stand to each other in the same relationship as the word and its meaning. Just as heat and fire are inseparable, wetness never separates from water, sweetness never separates from sugar and warmth is inseparable from sunlight, so are Shakti and Shiva are inseparable.

'जगतः पितरौवन्देपार्वतीपरमेश्वरौ''

This is also emphasised by Jagadguru Sri Sankaracharya in the first verse of Saundarya Lahari which means "The Wave of Beauty" and is a famous literary work in Sanskrit. This has been beautifully composed and sung by various artists of Karnatic Music.

"शिवः शक्त्यायुक्तोयदिभवतिशक्तः प्रभवितुं
नचेदेवंदेवोनखलुकुशलः स्पन्दितुमपि।
अतस्त्वामाराध्यांहरिहरविरिन्चादिभिरपि
प्रणन्तुंस्तोतुंवाकथमकृतपुण्यःप्रभवति॥''

Lord Shiva, only becomes able,
To do creation in this world along with Shakthi
Without her, Even an inch he cannot move,
And so how can, one who does not do good deeds,
Or one who does not sing your praise,
Become adequate to worship you
Oh, goddess mine, Who is worshipped by the trinity.

Adi Shankaracharya also composed the Ardhanarishwar Stotram which has been rendered to beautiful tunes by great musicians of Karnatic Music.

This oneness of Shiva and Shakti which is the tradition of Indian Music is the symbol of reverberation of that 'Divine music'. The bliss thus attained nurtures, transforms and awakens us into states of ecstasy. When Shiva's sounds join the energy of Shakti, the music thus generated is divine, passionate and sweet and there can't be anyone who is not compelled to dance with an unknown passion surrendering oneself to the divine realm. This music is filled with radiant energy and has a power so illustrious that there is nothing in this world that cannot be accomplished by worshipping "Shiva Shakti".

References:

1. Sangeet Ratnakar, Pt. Sharangdev
2. Soundarya Lahiri, By Adi Shankaracharya
3. Shiva and Shakti in Indian Mythology: By Mandira Ghosh
4. Shiva Shakti: By Mandira Ghosh
5. Shree Tyagaraja Keerthnai - By Parthasarathy TS (Tamil)
6. Bhagavad Geeta, Gita Press, Gorakhpur
7. Muthuswamy Dikshitar Compositions: By Dr. S. Bhagyalakshmi and Dr M N Moorthy
8. Raagas in Karnatik Music : By Dr. S. Bhagyalakshmi
9. Raagas in Indian Classical Music: By Anupam Mahajan
10. Rajan Parrikar Music Archive: https:èèwww.parrikar.orgè
11. https:\\www.aliakbarkhanlibrary.com\
12. http:\\lyrical-thyagaraja.blogspot.com\2009\09\nadatanumanisham.html
13. https:\\karnatik.com\c1184.shtml

Shiva-Shakti in the compositions of Muttuswamy Diksitar

Manjula Surendra, Dr. B.M. Jayashree

Research Scholar, Bangalore University

The whole Universe is professed as being created and sustained by two fundamental forces, which are in perfect union. These two universal forces are the bivâ and the bakti.

Lord bivâ represents the constitutive elements of the Universe while bakti is the dynamic potency, which makes these elements come to life and act. Hence bakti is the dynamic power of bivâ through which he manifests the world and their myriad existences.

In tangent with the topic this paper is a study of the aspect of bivâ bakti in musical compositions in Karnatik music.

Indian music is generally believed to have had its roots in the *Sâmagâna* or the *Sâma Vedâ*. Towards the end of 13th century, as a result of Mughal invasion, music in the north got influenced by the Persians and the Muslims. But in the south the music was intact and came to stay as Karnatik music. It is spiritual in nature. The *Sâhityâ* or the lyrical content is a treasure house of sublime outpour of the composer's transcendental experiences.

It is in the 18th century that the music trinity *Sri. Tyâgarâja Swâmy, Sri Syâmâ 'âstry and Sri Muthuswâmy Dikaitar* enriched the Karnatik music with their prolific compositions of supreme devotion and musical brilliance. This was undoubtedly the golden era in the sphere of Karnatik music. Karnatik music stands heavily on the foundation of composed music like swarajatis, varGâs, kritis, etc. Kriti is a compositional form, composed in a particular râgâ with lyrics and music (vâkèmâtu and Geyaè dhâtu) respectively, with great profundity. The hallmark of all great composers is the beautiful blending of the lyrics (*mâthu*) and the music (*dhâtu*) in a composition.

'वागर्थाविवसम्पर्क्तौ वागर्थप्रतिपत्तये
जगतः पितरौ वन्दे पार्वति परमेश्वरौ'

says *Kâlidâsâ.*

The way word and meaning are inseparable; similarly the lyrics and music in the compositions of the great composers are inseparable. *Muthuswâmy Dikaitar* was one such composer.

As a tribute to this great composer the author proposes to touch upon a few compositions of his in tangent with the topic of the seminar: ***bIVÂ - bAKTI IN MUSIC..***

Muthuswâmy Dikcitar (1776-1835) was unique among the Karnatik Trinity, for it was he alone who widely travelled across the length and breadth of the country visiting pilgrimage centres. His knowledge on *Advaitâ Vedântâ, Âgama bâstrâ, Tantra bâstrâ and Yantra bâstrâ* are revealed in his compositions. During his tutelage in *Kâsi*, he must have studied the *Prasthânâthraya* of *Vedanta* - the *Upanishads, Brahma sûtrâs and the Bhagavad Gita* which form the basis of elaborate commentaries on *Advaitâ* philosophy. He composed songs integrating the iconography, the temple lore and modes of worship in detail, making them a colossal work that prompts for an endless study and debate by scholars. While his compositions extol the particular forms, they also speak volumes of the formless reality. The repository of compositions of *Muthuswâmy Dikcitar* covers the deities of Hindu pantheon like *GaGeca, Subrmanyâ, Devi, bivâ, Guru* etc.

Dikcitar was born at *Tiruvârûr*, a place near *Tanjâvûr* in South India, to *Râmaswâmi Dikcitar* - an eminent musician and musicologist, by the grace of *Lord Muttukumâraswâmi* and *Lord bivâ* of *Vaitishwaram Koil*. He was mentored under the tutelage of *Chidambaranâtha Yogi*, who took him to *Kasi*. He was initiated into the cult of b*rividyâ*, learnt *Vedântâ* and other b*âstrâs* and was blessed with a divine veena. He also came under the influence of one of the foremost *Advaitic sanyâsins* of his time- *Upanishad Brahmendra Yogin* of *Kanchi*. His compositions are held in great reverence and forms an indispensable part of the present day music.

Interestingly Dikcitar has, in most of his compositions, addressed both bivâ and his consort establishing the union of Siva and Sakti in his prayers. The composer has praised the lord in different forms with his consorts in different names. Some of them are as follows;

1. In the kriti *MangaLâmbâyai namasthe* in the râgâ *Mâ7avacri*, he says

मङ्गळाम्बिकायै नमस्ते श्री वान्चलिङ्ग निज शक्ते विलीन चिच्छक्ते श्री!

....इन्दीवरासनादीडित शिवाङ्गने....

"Salutations to *Mangalâmbâ* who is the hidden power behind *Sri VâGchaliGgâs* true powers.....she is the spouse of *"ivâ"*.

2. In the kriti '*Ânandanamana*' in the râgâ Kedâra, he says

आनन्द नटन प्रकाशम् चित्सभेशं आश्रयामि शिवकाम वल्लीशं॥

"I take refuge in the Lord of bivakâmavalliz , the cosmic dancer of the Citsabhâ, who dances with ecstacy.

"

3. In the kriti '*AkchayaliGga' in the râgâ Shankarabharana*, the composer says,

अक्शयलिङ्ग विभो स्वयंभो अखिलाण्डकोटि प्रभो पाहि शंभो.....बदरीवनमूल नायिकासहित भद्रकाळीश भक्तविहित....

Oh Lord of beings of the Universe, protect me. The consort of Bhadrakâli is seated under the jujube tree of the forest ,the master of the creator.

4. In the kriti '*Ardhanârcwaram*' in râgâ *Kumudakriya*, he says

अर्धनारीश्वरं आराधयामि सततं...

I pray incessantly to the Lord *Ardhanârizcwara, embodiment of biva and bakti.*

5. In the kriti *bringâra RasamaGjarim*, in the *râgâ RasamaGjari*, the composer says

श्रृंगार रसमंजरी श्रीकामाक्षी गौरी......अनंग कुसुमादि शक्तिप्रियकरी द्विसप्तति रागाङ्गरागमोदिनी मतङ्ग भरत वेदिनी.....

I contemplate on *Goddess Kâmâkci*, benevolent to *baktis* like *AnaGgakusuma*, exults in the 72 mela *râgâs* and their *janya râgâs*, comprehensible to sages like *Matanga* and *Bharata*.

6. In the kriti *Ânandâmrita varcini* in the *râgâ Amritavarcini*, the composer prays to Devi as

आनन्दामृताकर्षिणि अमृतवर्षिणि हरादिपूजित भवानि...

'Oh *bive, Bhavâni*, you charm the nectar like bliss, You cause the rain and is worshipped by *biva*.

7. In the kriti *NâgaliGgam namâmi* in the râgâ *Môhana*, the composer extols the glory of *bivâ* as

नागलिङ्गं नमामि सततं.......आगम वेदान्त सार लिङ्गं आदिमध्यान्त रहितलिङ्गं.....

the one who transcends the world of name and form,. He is the essence of *Vedâs and Âgamâs* and has no beginning middle or end.

8. In the kriti *Brahmavidyâmbike* in the *râgâ KalyâGi* the composer worships to

ब्रह्मविद्यांबिके श्रीश्वेतारण्येशनायिके...... सुरनरमुनिगण सुखकर नयने कामकले कम्बुजयगळे.. ..

Goddess *Brhamavidyâmbika*, the cosort of *SvetâraGyizcwarâ*, the *Lord bivâ;* she is the form of harmonious union of *biva- bakti –Kâmakalâ.*

9. In the kriti *Bhajare re chitta* in the *râgâ Kalyani*,

भजरे रे चित्त बालांबिकां.....श्रृंगार कामराजोद्भव सकलविश्वव्यापिनी....

Goddess *Bâlâmbikâ is* worshipped as the consort of *"ivâ* who pervades this universe created by the handsome *Kâmecwarâ.*

10. In the kriti *Madhurâmbikâyâm* , in the *râgâ Deci simhârava*, the composer says

मधुरांबिकायां सदा भक्तिंकरोमि..... सकलकलारूपायां सदाशिवपतिव्रतायां....

I am always the devotee of *Madhurâmbikâ*, who is extolled by all the *âgamâs*; is the embodiment of all arts and the inseparable consort of Lord *"ivâ.*

11. In the kriti *Vamcavati civayuvati* in the râgâ *Vamcavati*, the composer prays to

वंशवति शिवयुवति पालयमां.....द्वाविंशत् श्रुतिस्वर स्वरूपिणि....

the goddess *Vamcavati,* spouse of Lord *Sivâ,* who is of the form of musical notes- based on 22 crutis.

12. In the kriti *Sri Vâlmika liGgam chintaye* in the *râgâ Kâmbodhi*, the composer meditates on

श्रीवाल्मिकलिङ्गं चिन्तये शिवार्द्धाङ्गं चिन्तये

Lord *VâlmikaliGga,* who shares half of his body with goddess *Pârvati*. He is the honey bee hovering over the lotus faced *Pârvati*, born I the lunar dynasty.

13. In the kriti *Kamalâmbikâyai* in the râgâ Kâmbodhi, the composer salutes

कमलाम्बिकायै कनकांशुकायै....... चराचरादिकल्पनायै चिकुरविजितनीलघनायै चिदानन्दपूर्णघनायै॥

goddess *Kamalâmbâ*, the creator of movable as well as unmovable phenomena. He says you are the

plenitude- represents the grossest manifestations of *bakti*, belonging to the manifest worlds - of consciousness and bliss.

14. In the kriti *Lalitâmbikâm chintayâmyaham* in the *râgâ Devakriya*, the composer meditates on

ललितांबिकां चिन्तयाम्यहं.....त्रिलोकञ्नी... कलारूपिणीं कात्यायनीं कञ्जलोचनीं...पालित मन्त्रिण्यादिसमूहां पशुपति हृदानन्दकरमोहां॥

goddess *Lalithâmbikâ*. She is the sovereign ruler of the three worlds, she is the personification of arts, protects *MantriGi* and other forms of *bakti*. She is the one who enchants the heart of *Pachupati*

There are more than 106 compositions on Lord *bivâ* in different forms. Among them are two sets of group compositions. One set is on the deities in *Tiruvârûr* called *Panchalinga k[tis* and another set is on *bivâ lingams* in different places like *Chidambaram, TiruvaGGâmalai, Kânchipuram , Tiruvânaikâvâ and Kâlahasti* representing the five elements of nature – Ether, Fire, Earth, Water and Air respectively. They are called as the *Panchabhûta linga k[tis.*

There are about 146 compositions on *Devi* in different forms of *bakti*. Among them are group compositions on deities Abhayâmbâ, Nilotpalâmbâ, Kamalâmba NavâvarGa , Lakshmi, Srividyâ and Saraswathi.

Dikcitar has invoked various forms of *bivâ and bakti* in his compositions. Likewise there are other composers too who have worshipped *bivâ and bakti* in their compositions in South Indian Karnatik music.

Conclusion

Muthuswâmy Dikcitar worshlps bivâ as one who has shared half of his body with bakti. He describes him as his ancestor or progenitor. He has deftly incorporated the theme of Parâcakti. The composer expresses his philosophy of advaitâ: 'Chidânanda rûposmi, Brahmânanda rûposmi'. The composer has addressed bakti (Girijâ) as the consort of Lord Sadâchalizswara. Apart from the above compositions mentioned in this paper, there are many more that establish that bivâ-bakti is worshipped together as one in different forms.

This way Dikcitar has made full justification to worship of form in his compositions though he strongly believed in principles of Advaitâ.

Bibliography

- Raghavan, Dr. V., Muthuswamy Dikshitar, National Centre for Performing Arts, Quarterly journal, September, 1975.
- Sambamurthy, Prof. P., South Indian Music, The Indian Music Publishing House, Eleventh edition, 1998
- Sriram. V., "A Tiruvarur Diary", Sruti, issue 240, September, 2004.
- Subbarama Dikshitar, Sangita Sampradaya Pradarshini.
- Sumathi Krishnan, Muthuswami Dikshitar and Tiruvarur, The C P Rmaswami Aiyar Foundation, Chennai, 2006
- Asha. R. Dr., Concepts, Contexts and Conflations, 2013
- Govinda Rao. T.K., Compositins of Mudduswâmi Dikshitar, Ganamandir Publications, 2003

Rock of Jungheera, Lord Shiva's Abode-inspiration for H.L.V. Derozio

Dr. Norhoh Nivedita Shaw

Head, Associate Professor, Dept of English, Shri Arvind Mahila College Patna

Henry Louis Vivian Derozio holds a very significant place in the history of Indo-Anglian literature. In fact he is often described as the main torch bearer particularly of the Indo-Anglian poetry. Among all his works, the two poems which stand prominently apart and are quite popular are My Nativeland and The Harp of India. Although his poems exhibit a rare beauty and simplicity presenting the ethnicity yet strangely enough, this young intellectual and great pioneer of the New learning has unfortunately been rather neglected and not given apt attention or acclamation both by the British as well as by the Indians.

The paper explores the inspirational sight which played a significant role in the growth and making of the young and talented poet, Henry Louis Vivian Derozio. Compelled to leave his school at the age of fourteen Derozio was left only to pursue work at mercentile firm of Messers James Scott & company, Calcutta. But Derozio did not like the job and left it in 1824 to earn his living at his uncle's Indigo factory at Tarapur in Bhagalpore. The young poet's move towards this new place whether by compulsion or deliberation, was destined for brighter journey ahead to glow the torch of Indo- Anglian poetry and literature. It was here that he came across the beautiful sight of the magnificent rock of Jungheera still standing in the middle of the pious river of Ganges in Sultanganj, Bhagalpore. There is no doubt that he was completely mesmerized by the majestic rock of Jhungheera which gave birth to the superb imaginative verse tale ever written in the history of Indian literature in English. It is very surprising that The Fakeer of Jungheera which is a great piece of supreme art has not been given apt recognition. It is in fact the first great Indian English ballad. The spirit of revelry that reigned in the early 19th century against the prevalent cruel *'Suttee Pratha'* and the contemporary movement against it (burning of widow with her dead husband) is deeply pondered upon in this poem.

The Fakeer of Jungheera is finest and longest verse tale published in 1828, the background, majestic rock of Jungheera. The 'gigantic rock rising out

of the midst of the river and towering over the low-lying alluvial plain with its air of mystery and romance impressed' the young boy's fertile imagination. Derozio writes:

"Although I once lived in the vicinity of Jungheera, I had but one opportunity of seeing that beautiful, and truly romantic spot. I had a view of the rocks from the opposite bank of the river, which was broad, and full, at the time I saw it during the rainy season. It struck me as a place where achievements in love and war might take place and the double character I had heard of the Fakeer together with some acquaintance with the scenery induced me to form a tale upon both these circumstances"

As already mentioned, the rock of jungheera is in the middle of river Ganga near Sultanganj in Bhagalpur district. It is popularly known as Ajgaivinath According to the mythology, Lord shiva was given ajgab bow at this rock. There are several temples of various gods and goddesses. However it is famous for the temple of Lord Shiva. The spot has its significance for its sanctity. It is said to be the hermitage of Rajarshi Jahnu. As per the mythology while Bhagiratha was bringing the Ganges from Heaven down to earth, Jahnu the sage had been performing an oblation on this rock. Jahnu drank off the Ganges in gulp for fear that it might cause an interruption in his oblation. Later on, he ejected the Ganges from his ear. Since then Ganga is also known as Jahnavi. It needs to be mentioned that this rock in the Ganges attracted the English travelers as well in 18th and 19th century.

The rare Books division of Calcutta National library places numerous descriptions and photographs of the Rock of Jungheera. In one of those records William Hodges observes-

"The rock opposite the little village of Jangerah, in the Bhagalpore district is made famous amongst the Hindoos from its having on the top of it a small hermitage for a Hindu Fakir. The situation this holy father has chosen is certainly a proof of his taste as well as his judgement, for, from the top he has a most extensive view of all the neighbouring country, and in the summer heats is much cooler than any other situation in the country. This rock is always considered as a place of sanctity, having upon it a small temple of the Hindoos, and on many parts of the rock an imperfect representation in sculpture of some of the Hindoos deities."

In yet another record Thomas Daniell comments on the South-west view of the rock-

"Sultanganj is a village in the western bank of the river Ganges, about 300 miles above Calcutta. The Fakeer's rock is a small island in the Ganges. It consists of several masses of gray granite, and was formerly a point of land projecting from the shore but by the violence of the current is now become perfectly insular. This spot is said to have destined to religious purposes, from very remote antiquity, which, indeed, seems

probable, from the sculptures on many of the rocks, among which several small temples are interspersed, that give the island a very romantic appearance."

Thomas Edwards one of his main biographers observes about the strange fascination of Derozio towards the historical spot:

"The peaceful life of the country station made strong appeal to the town bred boy..... How vividly the smallest scenes and incidents appealed to him, the flood of poetry that from now onwards poured from his pen amply reveals. Here he was in touch with nature as he had never been before and with nothing to distract his thoughts, he could watch with absorbing interest the whole ceaseless round of life in the changeless passing of his slow moving bullock through the rich, upturned soil;..... the reaper gathering in his harvest, the happy nut- brown children, naked and unashamed, playing lazily the dust and the sun, the housewife cooking her evening meal against her lord's return or wending her way up from the river bank, her water- pot, filled to the brim, gracefully poised upon her head, her face averted beneath the close drawn veil: the even rhythm of the oars upon the river: the cheerful throbbing of the drums:..... all these to the eager minded boy were of abiding interest. To his poetic instincts they made instant appeal.... It was small wonder that the gigantic rock rising out of the midst of the river Ganges and towering over the low-lying alluvial plains with its air of mystery and romance impressed itself upon the boy's quick imagination"

Further he points out keenly-

"It was here at Bhagalpur, with the ripple of the Ganges in his ear, and the boats of the fisher and the trader borne on the tide out of whose broad bosom rose the fakir-inhabited rock of Jhungheera, that the youthful poet drank in all those sweet influences of nature and much of human nature which indelibly impressed themselves on his intellect and imagination, and stirred him to the production of his most sustained effort in poetry, The Fakir of Jhungheera."

It might have seemed a 'small wonder...boy's quick imagination' to Thomas Edward, however the very strength of Lord Shiva penetrated into the young boy leading him to emerge as the youngest and the first harbinger of Indian English prose and poetry respectively. Indeed, it is only against the backdrop of the Bengal Renaissance which happened to be in the vanguard of the Indian national movement that the poetry of Derozio can be aptly evaluated.

F. B. Bradley remarks in his book .....

"Essentially a social being, eager to share his fellows' joys and sorrows and already foremost among them, it might well have been imagined that the lonely factory would be almost as distasteful to him as the stool in a mercantile office. The months he spent

there, however, were destined to be of momentous import in his career. The solitude gave him time thoroughly to grasp and assimilate all that he had so rapidly learned, and opportunity for deep serious thought. Gradually as he grew to see things with greater clearness there came to him the revelation of his own exceptional gifts. In the midst of the primitive and picturesque scenes on the banks of the Ganges his gift of song first found expression and it was from the indigo factory, far removed from the surroundings to which he had always been accustomed, that he began to put forth those first literary efforts which were soon to attract the attention of all the leading intellects of his day in India."

As a matter of fact Deozio is known mainly for his most popular patriotic short poem, My Nativeland, however The Fakeer of Jungheera **deserves** no less importance in the annals of historical and classical literature. An exquisite piece of art and the first Indian English ballad remains actually Derozio's longest and most beautiful poem in the history of IndoAnglian poetry even to this day. If Raja Ram Mohan Roy is acknowledged as the leading revolutionary of the national movement against Sati Pratha, Derozio also holds an equal position in movement through his powerful expression in varied poems. Derozio sent his poetical contributions under pseudonym of Juvenis from the indigo plantation of Tarapur to The India Gazette edited by 'a man of great information' and a good writer at the time. Dr. John Grant at once recognized the genius of Derozio and persuaded him to return to Calcutta to take hold of the charming pen which was gifted with multifarious flow of essence.

The Fakeer of Jungheera written against the backdrop of the rock of Jungheera in due course elevated the young and talented boy to achieve unique fame. The poem stretching in about 2080 lines describes a young Brahmin widow Nuleeni's story. Nuleeni is forced into performing the rite of a suttee. As soon as she proceeds to the funeral pyre on which she has to cremate herself with her deceased husband, her former muslim lover named Fakeer comes to her rescue. He is young chief of a band of bandits Nuleeni accompanies him to thr rock of Jungheera where he resides. This casts a slur on the social prestige of her father. As a result her father seeks military help from Shuja, the prince of Rajmahal. The result is battle between the valiant soldiers (from the prince's side) and the band of bandit chief. The story casts a shadow once again in the life of Nuleeni aggrieved to find the dead lover in her arms.

It would be unfair if one does not glance at the beautiful lines of the poem:

Jhungheera's rocks are hoar and steep And Ganges' wave is broad and deep

And round that island rock the wave
Obsequious comes its feet to lave
Those rocks, the streams victorious foes,
Frown darkly proud as on it flown

The sacred wave goes on wandering on;
And fishers there their shallops guide
Upon the rosy bosomed tide!

High on the hugest granite pile
A small rude but unsheltered stands
Erected by no earthly by no earthly hands;
And never sinful foot might dare
To find its way unbidden there.
(canto I)

References

1. F.B. Bradley-Birt(ed), ***Poems of Henry Louis Vivian Derozio,orgotten Anglo-Indian Poet*** (Calcutta 1923) Introduction
2. Thomas Edwards, ***Henry Derozio, The Eurasian Poet, Teacher, and Journalist*** (Calcutta 1884)
3. Thomas Daniell, ***Oriental Scenery***(London,1800), **'S. W. View of the Fakeer's Rock in the river Ganges, near Sultanganj'**
4. William Hodges, ***Select Views(1786), 'View of an Insulated Rock, in the River Ganges, at Jangerah'***
5. H. L. V. Derozio, ***The Fakeer of Jungheera, a metrical tale, and other poems*** *(Calcutta,1828), quoted by Thomas Edwards*
6. Norah Nivedita Shaw, ***The Interiors*** (Journal Vol-4, 2015) ***Henry Louis Vivian Derozio: A Post –Colonial Poet***

नारी के प्रति भगवान राम का आदर्श दर्शन

ooooooo

भगवान राम मर्यादा पुरुषोाम हैं तो स्वभाविक ही उनके द्वारा कोई भी आचरण प्रेरणा दायक है और मर्यादित है। वह एक अनुकरण करने योग्य आदर्श दर्शन हजारों वर्षों से समाज में प्रचलित है।

वर्तमान समय में रामायण के विलक्षण पात्रों का स्मरण और अनुसरण की महति आवश्यकता है। आज के आधुनिक समाज में प्राचीन सामाजिक मुल्यों का ह्रास अत्यधिक तीव्रता से हो रहा है। ऐसे में यदि राम के आदर्श दर्शन का अनुकरण समाज में स्थापित करने पर ही समाज में स्वच्छ और पवित्रा वातावरण संभव है।

राम चरित मानस ही एक ऐसा ग्रंथ है जिसे सर्वसामान्यय लोग भी आत्मसात कर सकते हैं। क्योंकि एक एक सरल और सहज ही समझा जा सकता है। और इसके सभी पात्रा और घटनायें समाज को एक संदेश देने का काम करता है जो समाज के नैतिक मूल्यों से जुड़ा है।

आज के समय में जो अनैतिक घटनायें बढ़ रही है उसका मूल कारण यह है कि आज का समाज अपने संस्कारों से भटकता जा रहा है और आधुनिकता क नाम पर खाने पीने से लेकर वेषभूषा तक का भी भान नहीं रह गया है।

जहां तक नारी के प्रति राम को दर्शन की बात है तो मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान ने सर्वदा ही नारी के सम्मान की बात करते है, उसके लिए उन्होंने कई ऐसे चरित्रा किये है जो सर्वदा अनुसरण करने योग्य है।

राम चरित मानस के बालकाण्ड में ऐसा वर्णन आया है। जब भगवान श्रीराम लीला के क्रम में वन में भटक रहे हैं और पेड़ पौधों, लताओं से पूछते है, क्या तुम्हें मेरी सीता का पता है उसी मार्ग से शिव एवं सती जी का आवागमन होता है, भगवान शिव भगवान की लीला को समझते हुए दूर से ही प्रणाम कर आगे निकलते है। किन्तु सती जी को भ्रम हो जाता है। भगवान शिव के मना करने पर भी सती जी भगवान श्रीराम की परीक्षा लेने का प्रयत्न करती है और सीताजी का वेष धर कर सामने पहुंच जाती हैं। भगवान राम ने उन्हें सहज ही पहचान लिया। सती जी के द्वारा यह एक अपराध था किन्तु श्रीराम जी ने सर्वप्रथम पिता सहित अपना नाम बताते हुए सती जी को प्रणाम करते हैं यहां भगवान श्रीराम यह संकेत दे रहे है कि परस्त्राी में मातृभाव का दर्शन कराते हैं। एक तो देवत्व भाव का दर्शन कराते हैं दूसरा स्वयं को मानवी लीला के पात्रा सदृश दिखाते हैं। और सांकेतिक भाषा में ही सती जी को यह भी बताना नहीं भूले की किसी भी स्त्राी को वन या कहीं और भी अकेले विचरण नहीं करना चाहिए यह मर्यादा के विपरीत हैं। यह भी स्त्राी या नारी के प्रति श्रीराम जी का उपदेशात्मक दर्शन है।

एक प्रसंग आगे आगे आता है जब राजा दशरथ स विश्वामित्रा राम लक्ष्मण को मांग कर ले जाते है क्योंकि ताड़का मारीच सुबाहू आदि राक्षस यज्ञ में बराबर विघ्न डालते हैं। जब विश्वामित्रा ताड़का की ओर संकेत करते है तो श्री राम जी यह

सोच कर रूक जाते है कि एक क्षत्राय किसी स्त्री पर कैसे हाथ उठा सकता है। यह आचरण क्षत्राय मर्यादा के विपरीत है तब विश्वामित्रा के समझाने पर यहकि एक दुष्ट के मरने से हजारो लाखों का कल्याण हाता है तो उसे मारने में कोई दोष नहीं है। तब भगवान ने एक ही बाण से उसका प्राण हरण करते हैं और अपने धाम में वास देते है।

इसी क्रम में जब भगवान राम और लक्ष्मण विश्वामित्रा जी साथ जनकपुर के लिए प्रस्थान करते हैं तो एक आश्रम दिखता है पर वहां कोई भी जीव जन्तु मार्ग में एक शिला पड़ी है।

भगवान राम ने पूछा ये शिला कैसी है। तब विश्वामित्रा उस घटना का वृतान्त सुनाते है कि किस प्रकार गौतम ऋषि के श्राप के कारण उनकी धर्मपत्नी शिला हो गई, राघव आपके चरण स्पर्श से ही इसका उद्धार होगा, तभी ये पुनः अपना निज स्वरूप में आ सकेगी - तब भगवान श्रीराम मन ही मन विचार करते हैं। एक तो स्त्री है। दूसरी ऋषि पत्नी है ऐसे में कैसे चरण का स्पर्श कराऊ, तब भगवान ने वायु के माध्ययम से अपने चरण रज का स्पर्श कराते है तब वह शिला रूप से अपने वास्तविक रूप को प्राप्त करती है। यहां भी भगवान राम ने नारी की गरिमा और सम्मान को ध्यान में रखकर आचरण करते है, यहां भी नारी के प्रति राम का दर्शन परिलक्षित होता है।

आगे चलकर भगवान जब वनवास लीला में थे, वन-वन भटक रहे थे उसी क्रम में माता जानकी का पता लगाते हुए भक्तिमति सवरी माता के आश्रम में पहुंचते है। शवरी मईया भगवान का दर्शन कर धन्य धन्य हो जाती है। उनके मुख से वचन नहीं निकल पा रहा है। भगवान के चरण धो रही है और जंगल में मिलने वाले फल से भगवान का स्वागत सत्कार करती है। शवरी स्वयं को अधम के साथ अधम नारी जाति की बताती है।

तब भगवान राम शवरी को समझाते है कि जाति पाति कुल धर्म बड़ाई धन, बल, कुटुम्ब गुण और चतुरता इन सबके होने पर भी यदि भक्ति नहीं है तो सब अनर्थक है।

तब भगवान शवरी के माध्यम से समस्त जीवमात्रा को नवधा भक्ति का उपदेश देते है।

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।
दूसरी रति मम कथा प्रसंगा।।

दोहा

गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान
चौथी भगति मम गुम गन करइ कपट तजि गान

मंत्रा जाप मम दृढ़ बिस्वासा।
पंचम भजन सो वेद प्रकासा।।

छठ दम सील बिरति बहु करमा
निरत निरंतर सज्जन धरमा

सातवँ सम मोही भय जग देखा
मोते अधिक संत करि लेखा
आठवँ जथालाभ संतोषा
सपनेहुँ नहीं देखइ परदोषा

नवम सरल सब सन छलहीना
मम भरोस हियँ हरष न दीना

सबरी भगवान के दर्शन के पश्चात योग अग्नि द्वारा शरीर त्याग करती है।

भगवान ने यहां भी जाति-पाति के आडम्बर को नकारते हुए नारी की गरिमा का भगवान ने स्थापित किये।

अन्यान्य धर्मशास्त्रों में भी नारी का स्थान ऊँचा बताया गया है। भगवान श्रीराम ने भी मानव लीला के माध्यम से अनेक ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किये है जो सदा से ही समाज में अनुशरण करने योग्य है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिसमें श्रीराम जी ने नारी के प्रति आदर्श स्थापित किये है।

भारतीय संस्कृति के वाहक- राम

कुमारी जान्हवी बासू - डॉ. कावेरी त्रिपाठी

प्रस्तावना :- "राम" यह शब्द हिंदुओं की एकता और अखंडता का प्रतीक है तथा सनातन धर्म की पहचान है। हिंदु धर्म में भगवान विष्णु जी के दशावतार का उल्लेख है, जिनमें से सातवें अवतार हैं "राम"। इनके आदर्श लक्ष्मण रेखा की उस मर्यादा के समान हैं जो लांघी तो अनर्थ और सीमा की मर्यादा में रहे तो खुशहाल और सुरक्षित जीवन। वर्तमान समय में भी मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम के आदर्शों का जनमानस पर गहरा प्रभाव है। राम का जीवनकाल एवं पराक्रम **"महर्षि वाल्मिकी"** द्वारा रचित संस्कृत **"महाकाव्य रामायण"** के रूप में लिखा गया है। बाद में **"तुलसीदास जी"** ने भी भक्ति काव्य **"श्रीरामचरितमानस"** की रचनाकर राम को आदर्श पुरूष बताया।

"सीस जटा उर बाहु बिसाल विलोचन लाल तिरछी सो भौंहें।
तू न सरासन बान धरे, तुलसी बन मारन में सुठि सोहें।
सादर बारहिं बार सुभाग चितै तुम त्यों हमरो मान मोहै
पूछति प्राण वधू सिय सों कहौ सांवरे से सखि रावरे को है?

राम का जन्म -

भगवान राम का जन्म **"अयोध्या"** नगरी में शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को पुनर्वसु नक्षत्रा और कर्क लगन में कौशल्यादेवी ने दिव्य लक्षणों से युक्त सर्वलोकवन्दित श्री राम को जन्म दिया। अर्थात, जिस दिन भगवान राम का जन्म हुआ उस दिन अयोध्या के ऊपर तारों की सारी स्थिति का साफ-साफ वर्णित है। रामायण में वणित नक्षत्रा की इस स्थिति को **"नासा"** द्वारा प्रयोग किये जाने वाले सॉफ्टवेयर प्लैनेटेरियम गोल्ड में उस समय के सितारों की स्थिति से मिलान और तुलना करें तो जानते हैं कि क्या निष्कर्ष मिलता है।

सूर्य मेष राशि (उच्च स्थान) में
शुक्र मीन राशि (उच्च स्थान) में
मंगल मकर राशि (उच्च स्थान) में
शनि तुला राशि (उच्च स्थान) में
बृहस्पति कर्क राशि (उच्च स्थान) में
लगन कर्क के रूप में।

पुनर्वसु के पास चन्द्रमा मिथुन से कर्क राशि की ओर बढ़ता हुआ।

शोध संस्था **"आई सर्वे"** के अनुसार **"वाल्मीकि रामायण"** में चर्चित श्री राम के जन्म के समय ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति का सॉफ्टवेयर से मिलान करने पर जो दिन मिला वो दिन है 10 जनवरी 5114 ईसा पूर्व। उस दिन दोपहर 12:00 बजे आकाश पर सितारों की स्थिति और सॉफ्टवेयर दोनों एक जैसे हैं।

महत्वपूर्ण घटनाक्रम -

- गुरू वशिष्ठ से शिक्षा-दीक्षा लेना।
- विश्वामित्रा के साथ वन में ऋषियों के यज्ञ की रक्षा करना और राक्षसों का वध।
- राम स्वयंवर, शिव जी का धनुष तोड़ना।

- वनवास।
- केवट से मिलन।
- लक्ष्मण द्वारा सूर्पणखा (वज्रमणि) की नाक काटना।
- खर और दूषण का वध।
- लक्ष्मण द्वारा लक्ष्मण रेखा खींचना, स्वर्ण हिरण मारिच का वध।
- सीता हरण, जटायु से मिलन।
- कबन्ध का वध, शबरी से मिलन, हनुमानजी से मिलन, सुग्रीव से मिलन, दुंदुभि और बालि का वध, संपाति द्वारा सीता का पता बताना, अशोक वाटिका में हनुमान जी द्वारा माता सीता जी को राम जी की अंगूठी देना।
- हनुमान जी द्वारा लंका दहन, सेतु का निर्माण, लंका में रावण जी से युद्ध, लक्ष्मण जी का मूर्छित होना। हनुमान जी द्वारा संजीविनी बूटी लाना।
- महाबली रावण का वध, पुष्पक विमान से अयोध्या आना।

श्री राम का परिवार व महत्वपूर्ण लोग -

राजा दशरथ

कौशल्या सुमित्राा कैकेयी

श्रीराम सीता भरत
मांडवी

लक्ष्मण शत्रुधन
उर्मिला श्रुतकीर्ती

राजा जनक

सीता उर्मिला

कुशध्वज

मांडवी श्रुतकीर्ती

- वशिष्ठ और ब्रह्माजी ने श्रीराम को विष्णु अवतार घोषित किया।
- महान **"ऋषि वाल्मिकि ने उन पर रामायण लिखी"**।
- राम ने सीता को रावण के कैद से मुक्त कराने के लिये **संपाति, जटायु, हनुमान, सुग्रीव, विभिषण, मैंन्द, द्विविद, जाम्बवंत, नल, नील, तार, अंगद, धूम्र, सुषेण, केसरी, गज, पनस, विनत, रम्भ, शरभ, महाबली कंपन (गवाक्ष), दधिमुख, गवय** और **गन्धमादन** आदि की सहायता ली।
- राम के काल में राजा जनक थे, जो उनके श्वसुर थे। जिनके गुरू थे **"ऋषि अष्टावक्र"**। जनक-अष्टावक्र संवाद को **"महागीता"** के नाम से जाना जाता है।

नीति-कुशल व न्यायप्रिय नरेश -

भगवान राम विषम परिस्थितियों में भी नीति सम्मत रहे। उन्होंने वेदों और मर्यादा का पालन करते हुए सुखी राज्य की स्थापना की। स्वयं की भावना व सुखों से समझौता कर न्याय और सत्य का साथ दिया। राज्य त्यागने, बाली का वध करने, रावण का संहार करने या सीता को वन भेजने की बात ही क्यों न हो।

सहनशील व धैर्यवान -

सहनशीलता व धैर्य भगवान राम का एक और गुण है।

राम का संयमी होना माता कैकेयी की उस शर्त का अनुपालन था जिसमें उन्होंने राजा दशरथ से मांग की थी -

तापस बेष बिसेषि उदासी।
चौदह बरिस रामु बनवासी।।

- सीता हरण के बाद संयम से काम लेना।
- समुद्र पर सेतु बनाने के लिए तपस्या करना,
- सीता को त्यागने के बाद राजा होते हुए भी सन्यासी की भांति जीवन बिताना उनकी सहनशीलता की पराकाष्ठा है।

संयमित -

अर्थात् समय-समय पर उठने वाली मानसिक उत्तेजनाओं जैसे- कामवासना, क्रोध, लोभ, अहंकार तथा मोह आदि पर नियंत्राण रखना। राम-सीता ने अपना संपूर्ण दाम्पत्य बहुत ही संयम और प्रेम से व्यतीत किया। वें कहीं भी मानसिक या शारीरिक रूप से अनियंत्रित नहीं हुए।

दयालु और बेहतर स्वामी -

भगवान राम ने दया कर सभी को अपनी छत्राछाया में लिया। उनकी सेना में पशु, मानव व दानव सभी थे और उन्होंने सभी को आगे बढ़ने का मौका दिया। सुग्रीव को राज्य, हनुमान जी, जाम्बवंत जी व नल-नील जी को भी उन्होंने समय-समय पर नेतृत्व करने का अधिकार दिया।

श्रीराम द्वारा समतामूलक समाज की स्थापना–

श्रीराम जी सच्चे अर्थों में समता मूलक समाज के जनक थे। जिन्होंने जाति धर्म की भावना से ऊपर उठकर समाज में सब को गले लगाया। अपने 104 वर्ष के वनवास काल में भगवान राम ने न जाने कितने कोल भील और दलित जाति की महिला शबरी के झूठे बेर खाएं शबरी के भगवान राम के प्रति प्रेम का प्रतिउत्तर ही था कि रघुकुल नरेश भगवान राम जी ने बड़े प्रेम से शबरी के झूठे बेर खाए। **"सच्चा रामभक्त वही है जो इन भावनाओं से ऊपर है"**।

श्रीराम जी का आदर्श व्यक्तित्व :-

परिदृश्य अतीत का हो या वर्तमान का, जनमानस ने रामजी के आदर्शों को खूब समझा-परखा है। रामजी का पूरा जीवन आदर्शों, संघर्षों से भरा पड़ा है। राम सिर्फ एक आदर्श पुत्रा हीं नहीं, आदर्श पति और भाई भी थे। जो व्यक्ति संयमित, मर्यादित और संस्कारित जीवन जीता है, निःस्वार्थ भाव से उसी में मर्यादा पुरूषोत्तम राम के आदर्शों की झलक परिलक्षित हो सकती है। राम के आदर्श लक्ष्मण रेखा की उस मर्यादा के समान है जो लाँघी तो अनर्थ ही अनर्थ

और सीमा की मर्यादा में रहे तो खुशहाल और सुरक्षित जीवन।

वर्तमान संदर्भों में भी मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम के आदर्शों का जनमानस पर गहरा प्रभाव है। उनके महान चरित्रा की उच्च वृत्तियाँ जनमानस को शांति और आनंद उपलब्ध कराती हैं। संपूर्ण भारतीय समाज के जरिए एक समान आदर्श के रूप में भगवान श्रीराम को उत्तर से लेकर दक्षिण तक संपूर्ण जनमानस ने स्वीकार किया है। उनका तेजस्वी एवं पराक्रमी स्वरूप भारत की एकता का प्रत्यक्ष चित्रा उपस्थित करता है।

आदिकवि के अनुसार:

आदिकवि ने उनके संबंध में लिखा है कि वे गाम्भीर्य में उदधि के समान और धैर्य में हिमालय के समान हैं। राम के चरित्रा में पग-पग पर मर्यादा, त्याग, प्रेम और लोकव्यवहार के दर्शन होते हैं। उनका पवित्रा चरित्रा लोकतंत्रा का प्रहरी, उत्प्रेरक और निर्माता भी है। इसीलिए तो श्रीराम के आदर्शों का जनमानस पर इतना गहरा प्रभाव है और युगों-युगों तक रहेगा।

(Footnotes)

* Head; Department of Music & performing Arts. Nehru Gram Bharti University; Jamunipur Kotwa.

संगीत में शिवशक्ति (नृत्य के संदर्भ में)

अमित साखरे

शोधार्थी, (नेट/जे.आर.एफ.)
इंदिरा कला संगीत विश्व विद्यालय खैरागढ़ (छ.ग.)

हिन्दू संस्कृति और दर्शन की यह विशिष्ट एवं अद्भूत विशेषता है कि जो प्रायः किसी ओर संस्कृति में नही पायी जाती है। कि इसमें भगवान प्राप्ति के अनेक मार्ग स्वीकृत किये गये हैं। भारतीय दर्शन में इतना ज्यादा वैविध्य है जो सहज हो स्वीकारा जाता है। ऋग्वेद का प्रसिद्ध वाक्य है। "एकं सत विप्राः" अर्थात सत्य एक है। उसको समझने अथवा प्रकट करने के अनेक मार्ग है। जहाँ निराकार उपासना की जाती है। वही साकार उपासना भी उतनी ही स्वीकृत है। और साकार में भी अनेक रुप है जैसे- भगवान शंकर। भगवान शंकर के वैसे 108 नाम है। शिव, महादेव, शम्भू, पिनाकी, शशिशेखर, वामदेव, विरुपाक्ष, कपर्दी, नीललोहित, खडवांगी, विष्णवल्लभ, शिपिविष्ट, अंबिकानाथ, श्रीकण्ठ, भक्तवत्सल, भव, शर्व, त्रिकोकेश, शितिकण्ठ, उग्र, कपाली, काभारी, अंधकारसुरसूदन, गंगाधर, ललाटवक्ष, काल-काल, कृपानिधि, भीम, परशुहस्त, मृगपाणी, जटाधर, कैलाशवासी, कवची, कठोर, त्रिपुरांतक, वृषांक, वृष्भारुढ़, सामप्रिय, सर्वज्ञ, सदाशिव, मृत्युंजय इत्यादि।

भगवान शंकर के साकार रुपों में सबसे सशक्त और प्रभावशाली अभिव्यक्ति रुप नटराज का है। संपूर्ण ब्रम्हाण्ड में समस्त पदार्थ परिवर्तनशील है। एवं भारतीय मनीषियों ने सृष्टि को संसार कहा जो सदा गतिमान है। नटराज संपूर्ण ब्रम्हाण्ड में द्विव्य नर्तन के रूप में प्रतिस्थापित है। अभिनय दर्पण के अनुसार -

"आंगिकं भुवनं यस्य वाचिकं सर्व वाङ्मयम।
अहार्य चन्द्रतारादि तं नुमः सात्विकं शिवम् ।1 ।

अर्थात् आंगिक अभिनय है। जिनका सारा संसार और वाचिक अभिनय समग्र वाणी व्यवहार। चांद सितारे आदि जिनका है, अहार्य, उन सात्विक शिवजी को प्रणाम है।

भगवान शंकर जहाँ आदि "पुरुष" है तो वही शक्ति को "प्रकृति" माना गया है। एवं निके संयोग से ही अर्थात् शिव शक्ति के संयोग से ही चराचर जगत गतिमय है। एवं इनके आधार बिना सृष्टि की रचना अकल्पनीय है। डॉ. ज्योति बक्शी के अनुसार- "शिव व शक्ति इस शब्द की प्रकृति होने के कारण प्राण और आत्मा से यह ताल पुण्य, यश, मुक्तिदायक एवं योगियों का अभीष्ट है। जिस प्रकार शिव शक्ति की लय पूर्ण गति से विश्व का सृजन हुआ है। उसी प्रकार ताल भी अद्भुत सृजनात्मक क्रिया है। जिसके द्वारा गायन-वादन तथा नर्तन में प्राण का प्रवाह होता है।[1]"

जीवन के प्रत्येक संगीत में इस शिव शक्ति निर्मित संगीत व्यापत है। भगवान शिव द्वारा संगीत को भी अपने स्वरूप में एकाकार किया है। शारंगदेव ने कहा है–

"गीतं वाद्यं नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते"[2]

अर्थात गायन वादन एवं नृत्य को संगीत कहते है। संगीत की इन तीनों विधाओं में निश्चित ही शिव-शक्ति रुप समाहित है। कहा जाता है कि- नृत्य की समाप्ति पर नटराज शिव ने 14 बार डमरु बजाया, जिसे सुनकर सनक-सनन्दन आदि सिद्धों की कामनाएँ पूर्ण हो गई किन्तु स्वयं पणिनि उस

शिव-सूत्र-जाल को समझ न सके तब शिवजी ने 14 ध्वनियों के अंत में प्रत्यय लगाकर समझाया एवं यह ध्वनियाँ संगीत का आधार बनी।

जिसे बाद में महेश्वर सूत्र कहा गया। "पुरुष व प्रकृति का नर व नारी का युग्म सृष्टि में सर्वत्र विद्यमान है। संगीत एवं नृत्य की अनेक कल्पनाएं स्त्री व पुरुष के भाव से ही उद्‌भूत हुई है।"[3]

भगवान शिव एवं शक्ति को सृष्टि के हर भाव के रूप में व्यक्त किया है। उनका प्रत्येक भाव सृष्टि में निहित है और नृत्य की दृष्टि से देखे तो शिव-शक्ति "ताल" के रुप में निहित होती है। "ताल की प्राचीन परिभाषा के लिए शिव तत्व रत्नाकर में इस शब्द का विश्लेषण करके कहा गया है। है कि "ता" व "ल" दो अक्षरों से निर्मित ताल शब्द की उत्पत्ति हुई। "ता" शब्द ताण्डव व "ल" शब्द पार्वती के लास्य युक्त होकर ताल का निर्माण हुआ है"।

इस प्रकार निश्चित ही शिव शक्ति का संबंध प्रकृति व संगीत से निष्ठ है। भगवान शंकर को नृत्य के आदि देवता के रुप में माना जाता है। जो नृत्यरत नटराज है। "कालिदास ने भी मालविकाग्निमित्रम में कहा है। स्वयं महादेव जी ने उमा से विवाह कर अपने शरीर में उसके दो भाग कर दिए एक है ताण्डव व दूसरा है लास्य।"[4]

नृत्य की उत्पत्ति के संदर्भ में भगवान शिव ही नृत्यरत चरित्र के रूप में प्रस्तुत हुए उनके इस रूप का वर्णन "नृत्य साहित्यों" में भरपूर किया गया है। एवं नृत्य कलाकारों द्वारा भी इनके प्रंसगों पर नृत्य करते देखा जा सकता है।

देवताओं में सबसे अनूठे शिव देवाधिदेव है महादेव है। वे अपने सहज स्वभाव के लिए विख्यात है। छोटे बड़े संभ्रांत-उद्‌भ्रांत, कनिष्ठ-ज्येष्ठ को भी हो, सबके लिए उनका द्वार खुला है। "परम्परागत ग्रंथों में नटराज शिव के चार रूप मान्य है। जिनमें प्रथम संहारमूर्ति (ध्वंसात्मक शक्ति वाला रुप), द्वितीय दक्षिणामूर्ति (शुभप्रद रुप), तृतीय "अनुग्रहमूर्ति" (वर प्रदायक रुप) तथा चतुर्थ "नृत्यभूर्ति (गीतादी कलात्मक रुप) है।"[5]

भगवान शिव के नादन्त रुप में सभी को आकर्षित किया है। साहित्य या अध्यात्म के विषयों में शिव शिवतत्व रुप धारण करते हुए सभी में कही न कही परिलक्षित होता है। शिव से नृत्य की उत्पत्ति होना सर्वमान है। नाट्य शास्त्र के अनुसार-

"रेचका अङ्गहाराच्च पिण्ड्रीबन्धास्तथैवच।।261।।
सृष्टा भगवता दत्तास्तण्डवे मुनये तदा
तेनापि हि ततः सम्यग्गानभाण्ड् समन्वितः
नृतप्रयोगः सृष्टो यः स ताण्डव इति स्मृतः।262।।[6]

भारतीय परंपरा नृत्त का आरंभ भगवान शंकर से मानती है इसी कारण उन्हें नटराज तथा अर्धनारीश्वर आदि नामों से संबोधित किया गया है। महेश्वर शिव का यह नित्य नर्तन "ताण्डव" नाम से जाना जाता है। इसे ताण्डव कहे जाने का कारण यह है, कि जब ब्रम्हाजी की प्रेरणा से भरत मुनि ने अपने अपने दल के साथ हिमालय पर जाकर त्रिपुरदाह नामक "डिम" शिवजी के सम्मुख प्रस्तुत किया तब से देखकर शिवजी परम प्रसन्न हुए और उसकी प्रंशसा कर कहने लगे कि मैंने भी संध्याकाल में नाचते हुए नाना प्रकार के करणों एवं अंगहारों से विभूषित नृत का स्मरण किया है। बाद में शिवजी ने इसे अपने अनुचर तण्डु मुनि को बुलाकर भरत को सिखाने हेतु आदेशित किया जो ताण्डव नाम से विख्यात हुआ।

भगवान शिव-शक्ति के एक अनुपम उदाहरण उनका अर्ध नारेश्वर रुप है। जो पुरुष और प्रकृति का एक प्रब्लतम उदाहण है। जो पुरुष के उध्दत एवं स्त्री के कोमल भावों की ओर संकेत करते हुए सृष्टि के संतुलन को प्रतीकात्मक करता है। कथक नृत्य के संदर्भ में इन पर प्रस्तुत रचनों को कलाकारों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। "नन्दी बैल, भाल पर चन्द्र एवं अनेक लिपटे हुए सर्प, शिव की प्रजन्न शक्ति का प्रतीक है। लिंग उनके पुरुशत्व तथा योनि उनकी ऊर्जा का द्योतक है। इसलिए शिव लिंग पूजित है। एवं शिव के अर्धनारीश्वर रुप की भी वंदना की जाती है।"[7]

"जय जय विश्व नाथ शीश चन्द्र गंग माथ।
बिल्व माल कंठ व्याल नन्दी वाहन विशाल।
भष्म लसत अंग अंग गौरी वामांग संग।
गरल कंठ महाकाल काटत जग फंद जाल।
डिम डिम डमरु बजात भूत प्रेत को रिझात।
दानी दाता महान अखिलेश्वर गुण निधान।
धगधग धगधग तकिट ताण्डव निरतत प्रमुदित।"
जय शिव शम्भों - 3 बार।[6]

भारतीय नृत्य जगत में यह मान्यता लम्बे अर्से से चली आ रही है। भगवान शिव ने ताण्डव नृत्य का प्रवर्तन किया है। और भगवती पार्वती ने लास्य नृत्य का। भगवान शंकर ने उध्दत युक्त नृत्य किया था एवं पार्वती ने सुकोमल युक्त जो नृत्य किया वह लास्य कहलाया है। ताण्डव और लास्य से सत्व, रज और तम तीन गुण भी दिखलाई पड़ते है। और अनेक रसों में लोगों के चरित्रि भी दिखाई पड़ते है।

कथक नृत्य के संदर्भ में कलाकारों द्वार भगवान शिव के चरित्र पर नृत्य प्रस्तुत किया जाता है।

"डिमक डिमक डिम डमरु बाजे
ताथैई तत थैई सब जग नाचे
कर त्रिशूल रंग श्याम मनोहर
शीश गंग गंगाधर हर हर
शैल सुता माँ गौरी विराजे
सर्प माल नित कंठ विराजे
जय जय प्रलयंकर शंकर महादेव है।"[9]

जैसा कि पूर्व में उल्लेखित है, कि शिव के विभिन्न रुपों में नृत्यरत नटराज रुप सर्वाधिक प्रचलित है। शिवजी ने अनेक अवसरों पर नृत्य कर अपना नटराज स्वरूप प्रदर्षित किया है। भरतमुनि ने अपने नाट्य शास्त्र के चतुर्थ अध्याय में लिखा है कि दक्ष यज्ञ ध्वंस होने पर संध्या काल में महेश्वर शिव ने मृदंग भेरी, पटह, भाण्ड, डिण्डिम, गोमुख पणव, हुर्दर आदि सभी वाद्यों के बजने पर लय ताल के अनुसार गतिशील नाना अंगहारों से युक्त नृत्य किया। दक्षिण के चिदंबरम में शिव की नृत्यरत मूर्ति 108 करणों से युक्त है।

"शिव को ही नटराज अर्थात् नृत्य का राजा कहा जाता है। और नृत्य का आरंभ शिव तथा उनकी पत्नि नें ही किया ऐसा माना जाता है कि शिव के नटराज स्वरूप उन्हें चतुर्भज माना गया है। उनके सामने का दहिना हाथ वरद मुद्रा में होता है और बायां हाथ दण्ड या कज हस्त मुद्रा में वाम पाद की ओर संकेत करता है।"

भगवान शिव ने विशिष्ट नृत्यों का वर्णन किया है। एवं पुराण साहित्य में भूरिषः प्राप्त होती है। इनमें निम्न सात नृत्य विशेष प्रसिद्ध है।

1. आनंद ताण्डव- आनंद ताण्डव में पौरुष का उल्लास प्रदर्षित करता है।
2. संध्या ताण्डव- संध्या ताण्डव कालरात्रि के आगमन का सूचक माना जाता है।
3. उमा ताण्डव- जो दाम्पत्य स्नेह का सहज भाव प्रदर्शित करता है। एवं ताण्डव में उमा एवं शिव से संबंति है।
4. गौरी ताण्डव- आद्यशक्ति के प्रति आदि पुरुष के सहज सात्विक आकर्षण की अभिव्यक्ति है।
5. कालिका ताण्डव- इस ताण्डव में दुष्टों के दलन हेतु भैरव रुप का प्रदर्शन है।
6. त्रिपुर ताण्डव- यह त्रिपुरासुर की पूर्वोत्तर संहार कथा है।
7. संहार ताण्डव- जो शिव का प्रयलंकार रुप प्रदर्शित करता है जिस में कोई शेष नही रह जाता।

ताण्डव के इन सभी भेदों में यो तो विलक्षणता शिव के पराक्रम, भीष्णता और गम्भीरता का एक विचित्र सम्मिश्रण दिखाई पड़ता है। तदपि इनमें से संहार ताण्डव तथा संध्या ताण्डव विशेष रहे है।

शिव निश्चित ही आदि पुरुष है लेकिन उनकी पूर्णता पार्वती के बगैर अधूरी है। डॉ. ज्योति बख्शी लिखती है- "पुरुष स्त्री का संरक्षक है। कला की कल्पना स्त्री के बगैर कही नही यही कारण है आध्यात्मिक दर्शन आदि सभी क्षेत्रों में हमारी संस्कृति रागात्मक रही है।"

विधाता ने इस संसार की रचना पुरुष और स्त्री इन दो तत्वों के योग से की है- तदनुसार ही भारतीय परम्परा में नृत्य दो भागों में विभक्त है। ताण्डव और लास्य। वस्तुतः ये किसी व्यक्ति विशेष द्वारा किसी खास अवस्था में किए गए नृत्य विशेष ही नही है। ऐसा नही है कि शिवजी का रूप धरकर जो जोर जोर से उछल कूद करते हुए क्रोध व संहार का भाव प्रदर्शित करने से ताण्डव होता है। वास्तव में बात यह है कि वीर वीभत्स, रौद्र अदभूत आदि रसों से युक्त ऐसा प्रत्येक ताण्डव कहा जाता है। जिसमें पौरुष उत्साह ओज व स्फूर्ति व्यक्त हो।

भारत की प्रत्येक शास्त्रीय नृत्य शैली में ताण्डव व लास्य रुपों का अपने-अपने ढंग से स्वतंत्र विकास हुआ है। जिसे उनके अंतर सहित प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। जो निश्चित ही शिव शक्ति का प्रतीक रुप है। एवं ब्रम्हाण्ड का दिव्य नर्तन है। त्रिदेवों में शिव का तीसरा स्थान है। किन्तु इन्हें महेश कहा जाता है। शिव को विष्णु और ब्रम्हा से अधिक महत्व दिया जाता है। और अधिक शक्तिशाली माना जाता है। शिव को ब्रम्हाण्ड के पूर्ण चक्र उत्पत्ति से विनाश एवं पुनः प्रजनन का अधिष्ठाता माना जाता है। इसलिये शिव को महादेव तथा महेश्वर भी कहा जाता है। इनकी प्रधानता अथवा सर्वोच्च सत्ता को स्थापित करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. नाट्य शास्त्र (बाबूलाल शुक्ल शास्त्री) /चौखंबा संस्कृत संस्थान वाराणसी (उ.प्र.), संस्करण-द्वितीय 2017, पृ.क्रं. 135
2. अभिनय दर्पण (आचार्य नंदीकेश्वर) डॉ. पुरु दाधिच/ प्रकाशक-बिन्दू प्रकाशन उज्जैन (म.प्र.), प्रथम संस्करण 1988, पृ.क्रं. 01
3. कथक अक्षरों की आरसी (डॉ. ज्योति बक्शी)/ म. प्र. हिन्दी गंथ्र अकादमी भोपाल, संस्करण प्रथम 2000, पृ.क्रं. 223
4. कथक में कवित (डॉ. गीता रुवीर) /प्रकाशक-राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृ. क्रं. 46, 47, 51
5. नृत्य निबंध (डॉ. पुरु दाधिच एवं विभा दाधिच) /प्रकाशन- बिन्दु प्रकाशन इंदौर प्रथम संस्करण 2009, पृ.क्रं. 34

भगवान राम और उनके आदर्श

हिन्दू धर्म में भगवान राम विष्णु भगवान के दस अवतारों में से सांतवे अवतार माने जाते हैं। भगवान राम का जीवन काल एवं पराक्रम महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित, संस्कृत महाकाव्य, जो कि रामायण के रूप में लिखा गया है उस पर तुलसीदास जी ने भी भक्ति काव्य श्री 'रामचरितमानस' रचा। प्रभु श्री राम चन्द्र हमारे आदर्श पुरूष माने जाते हैं। राम आयोध्या के सूर्यवंशी राजा दशरथ और रानी कौशल्या के बड़े पुत्र थे। जिनका जन्म चैत्र मास की शुक्ल पक्ष की नवमी के दिन हुआ जब मन्द, सुगंध विचित्र बयार चलने लगी देवता और संत मन में बड़े प्रसन्न हुए, वन फूलों से प्रफुल्लित थे समस्त पर्वत रत्नमय हो गए और सब नदियों में अमृत की धारा बहने लगी। सभी देवतागण हाथ जोड़कर फूल बरसाने लगे, आकाश में गहगहे नगाड़े बजाने लगे एवं नाग देवता स्तुति करने लगे। इस प्रकार सब लोगों को सुख देने वाले जगन्निवास भगवान प्रकट हुए।

छन्दः- भए प्रकट कृपाला दीन दयाला कौशल्या हितकारी
हर्षित महतारी मुनि मनहारी अद्‌भुत रूप निहारी।
लोचन अभिरामा तनु घन श्यामा निज आयुध भुजचारी
भूषण बनमाला नयन विशाला शोभासिन्धु खरारी।।

इस प्रकार से जब कृपा के सागर माता कौशल्या के हितकारी दीनदयाल प्रभु प्रकट हुए तब उनका अद्‌भुत रूप देखकर माता कौशल्या दंग हो गई। सुन्दर नेत्र श्याम शरीर चार भुजाओं में शंख, चक्र, गदा और पद्‌म धारण किये वनमाला पहिने, सब अंगों में आभूषण साजे बड़े विशाल नेत्रों वाले, शोभा के सागर प्रकट हुए।

प्रभु के जन्म लेने से पूरे आयोध्या में हर्षोउल्लास सा छा गया। कुछ दिन इस प्रकार बीते कि आयोध्या वासियों को रात और दिन की भी खबर नहीं पड़ती थी। इस प्रकार से प्रभु के नामकरण का समय आया। तब राजा दशरथ ने अपने पूज्यनीय गुरू वशिष्ठ मुनि को नामकरण हेतु आमंत्रित किया।

तत्पश्चात् गुरू वशिष्ठ बोले- जो आनन्द सिन्धु सुखरासी,
सीकर ते त्रैलोक्य सुपासी।
सो सुखधाम राम असनामा,
अखिल लोक दायक विश्रामा।।
अर्थात -

जो आनन्द के समुद्र, सुख के पुँज, अपने अंश से त्रिलोकी को सुपास कराने वाले हैं। जो सब लोकों को आराम देने वाले और सुख के धाम हैं उनका 'राम' ऐसा नाम है। इस प्रकार से गुरू वशिष्ठ ने भगवान राम और उनके तीनों भाइयों का नाम क्रमशः भरत, लक्ष्मण और शत्रुधन रखा।

इसके पश्चात मैं प्रभु श्री राम की बाल लीलाओं का वर्णन इस कथन के माध्यम से भजे का प्रयास कर रही है।

ठुमक चलत राम चन्द्र बाजत पैजनियाँ
किलकी किलकी उठत धाय, गिरत भूमि लटपटाय,
धाय मात गोद लेत, दशरथ की रनियाँ, ठुमक चलत...।
विद्रुम से अरूण अधर, बोलत मुख मधुर मधुर

सुलभ नासिका में चारू लटकट लटकनियाँ, ठुमक चलत..... ।
तुलसी दास अति आनंद, देखि के मुखार बिन्द
रघुवर छवि के समान, रघुवर छवि बनिया, ठुमक चलत..... ।

तारणहार राम का नाम है - अर्थात् जब हम 'राम' कहते हैं तो हवा या रेत पर एक विशेष आकृति का निर्माण होने लगता है। जब व्यक्ति लगातार राम नाम का जप करता रहता है तो रोम रोम में प्रभु श्री राम बस जाते हैं और उसके आस पास सुरक्षा का एक मंडल सा बन जाता है। प्रभु श्री राम के नाम का असर बहुत ही प्रभावशाली होता है। इस प्रकार से आपके सारे दुःख, विपदा, बाधा, चिन्ता को हरने वाला सिर्फ एकमात्र नाम है "हे राम" और जब अपने जीवन की नैया प्रभु के हवाले कर दी है। तो चिन्ता किस बात की क्योंकि गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने भजन के माध्यम से यही कहा है-"जब जानकी नाथ सहाय करें, तब कौन बिगाड़ करे नर तेरो।"

भारतीय जनमानस में भगवान श्री राम की अद्भुद छवि है वो लोक नायक के रूप में प्रसिद्ध हैं भगवान श्री राम अपने चरित्र के माध्यम से भारत ही नहीं अपितु पूरे विश्व में मर्यादा के संस्थापक व सम्वर्धक रहे हैं।

सहनशील व धैर्यवान व्यक्तित्व के रूप में भगवान श्री राम के बहुत से उदाहरण देखने को मिलते हैं। सहनशीलता व धैर्य भगवान राम का एक विशेष गुण है। राम का संयमी होना, माता कैकेयी की उस शर्त का अनुपालन था जिसमें उन्होंने राजा दशरथ से राम के 14 वर्ष के वनवास की माँग की और इस चौदह वर्ष के वनवास के पीछे भी बहुत से भक्तों का इन्तजार और उनका कल्याण हुआ। चाहे वह निषाद राज हों, गुरूड़ देव हों या फिर माता सबरी ही क्यों न रही हो।

प्रभु श्री राम ने धैर्य और संयम का परिचय देते हुए बहुत सी यातनाएँ भी सही जिनमें -

- सीता हरण के बाद संयम से काम लेना।
- समुद्र पर सेतु बनाने के लिए तपस्या करना।
- सीता को त्यागने के बाद राजा होते हुए भी सन्यासी की भाँति जीवन बिताना उनकी सहनशीलता की पराकाष्ठा है।

नीति कुशल व न्यायप्रिय नरेश के रूप में भी प्रभु श्री राम का व्यक्तित्व बड़ा ही प्रभावशाली रहा है। भगवान राम विषम परिस्थितियों में भी नीति सम्मत रहे। उन्होंने वेदों और मर्यादाओं का पालन करते हुए सुखी राज्य की स्थापना की। स्वयं की भावनाओं और सुखों से समझौता कर न्याय और सत्य का साथ दिया। फिर चाहे राज्य त्यागने की बात हो या बाली का वध करने की बात हो, रावण का संहार करने की बात हो, व सीता को वन भेजने की ही बात क्यों न हो।

भगवान श्रीराम दयालु व बेहतर स्वामी होने के साथ एक अच्छे मित्र एवं एक श्रेष्ठ प्रबंधक भी रहे। आपने दया कर सभी को अपनी छत्रछाया में लिया, उनकी सेना में पशु, मानव व दानव सभी थे और उन्होंने सभी को आगे बढ़ने का मौका दिया। सुग्रीव को राज्य, हनुमान को भक्ति, जामवन्त व नल-नील को भी उन्होंने समय-समय पर नेतृत्व करने का अधिकार दिया।

एक बेहतर मित्र होने के नाते उन्होंने केवट हो या सुग्रीव, निषाद राज हो या विभीषण हर जाति हर वर्ग के मित्रों के साथ करीबी रिश्ता निभाया।

इसके साथ ही उन्होंने एक बेहतर भाई होने का भी दायित्व निभाया। भगवान राम के तीन भाई लक्ष्मण, भरत व शत्रुधन सौतेली माँ के पुत्र थे, लेकिन उन्होंने सभी भाईयों के प्रति त्याग और समर्पण का भाव रखा और उन्हें स्नेह दिया। यही वजह थी कि भगवान राम के वनवास के समय लक्ष्मण उनके साथ गए और राम की अनुपस्थिति में राज्यपाठ मिलने के बावजूद भरत ने भगवान राम के मूल्यों को ध्यान में रखकर सिंहासन पर राम जी की चरण पादुका को रख अपने भाई होने का फर्ज निभाया।

वर्तमान संदर्भों में भी मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान श्री राम के आदर्शों का जनमानस पर गहरा प्रभाव है। त्रेतायुग में प्रभु श्री राम से श्रेष्ठ कोई देवता नहीं

उनसे उत्तम कोई व्रती नहीं कोई श्रेष्ठ योगी नहीं कोई उत्कृष्ठ अनुष्ठान नहीं। उनके महान चरित्र की उच्चवृत्तियां जनमानस को शांति और आनन्द उपलब्ध कराती हैं। सम्पूर्ण भारतीय समाज के जरिए एक समान आदर्श के रूप में भगवान श्री राम को उत्तर से लेकर दक्षिण तक सम्पूर्ण जनमानस ने स्वीकार किया है। उनका तेजस्वी एवं पराक्रमी स्वरूप भारत की एकता का प्रत्यक्ष चित्र प्रस्तुत करता है।

परिदृश्य अतीत का हो या वर्तमान का जनमानस ने प्रभु श्री राम के आदर्शों को खूब समझा व परखा है। उनका सम्पूर्ण जीवन आदर्शों एवं संघर्षों से भरा पड़ा है। राम सिर्फ एक आदर्श पुत्र ही नहीं एक आदर्श पति और भाई भी थे। 'जो व्यक्ति संयमित मर्यादित और संस्कारित जीवन जीता है। निःस्वार्थ भाव से उसी में मर्यादा पुरूषोत्तम राम के आदर्शों की झलक परिलक्षित हो सकती है। राम के आदर्श लक्ष्मण रेखा की उस मर्यादा के समान है जो लांघी तो अनर्थ ही अनर्थ और सीमा की मर्यादा में रहे तो खुशहाल और सुरक्षित जीवन।

इन्हीं बातों के साथ एक प्रख्यात लेखक की इन पक्तिंयो के माध्यम से मैं अपनी लेखनी को विराम देना चाँहूगी-

त्याग दी सब ख्वाहिशें निष्काम बनने के लिए,
राम ने खोया बहुत कुछ श्री राम बनने के लिए।

Shiva Shakti, the eternal story of love and sacrifice

Bhujun Radhashtami

Mauritius

The first line of Adi Shankara's renowned Shakta hymn from Soundaryalahari states: *"If shiva is united with Shakti, he is able to create, if he is not, he is incapable even of stirring,"*

Permanently in a perfect , indestructible union, spirit and nature come together to form tantra. Therefore, Shiva Shakti, one powerful entity, separated to form the masculine and the feminine.

While the Brahmanda Purana states that the ultimate energy, does not have a definite sex, that it, the supreme energy is neither Puling, Streeling nor Napunsak ling, it also states that Adi Parakshakti, the first and eternal Shakti, divides herself into masculine and feminine beings. A sacrifice performed for the creation of humanity and genders, in order to execute specific tasks. Shiva and Shakti can therefore be seen in each and every individual as well as animals.

Shakti in the form of Kali and Durga, is termed as the untamed horses of a human manifestation. Shakti is thus present in every being as the power which destroys the evil, while giving death to the dark forces such as EGO. Defining destruction as a liberation force, Shakti unites with Shiva to create consciousness.

Shiva Shakti is the definition of eternal love, separation and pain. Let us therefore allow words to analyse love, a feeling vibrated from the union of Shiva Shakti.

Shakti ke bina Shiva bhi shava ban jata hein; then why do human beings ignore the most beautiful love story which came along with several love lessons in the form of ShivaShakti? The era of today has turned into a daily affair of love stories, wherever one goes, couples are spotted everywhere, trying to define love in a new definition. Our minds, surroundings and era have rendered our hearts empty and thus, our energies and chakras refuse to be part of the divine play. While giving love separate definitions, human beings have forgotten the reason for which this feeling has been integrated in our bodies. While Radha and Krishna are a vivid example of love and consequences, Shiva Shakti is the consequence of love. The union of Shiva Shakti termed as the "tantric union" has been hence defined as an internal union having as a demonstration the Shiva Lingum. The pure Shiva Lingum defines

clearly the union of a male and a female, stating the reason behind the coming together of two individuals for the creation of one universe.

Love is an eternal feeling, just as is ShivShakti. However, one cannot relish love until one has drunk the bitter portion of separation and pain. This has been beautifully portrayed by ShivaShakti during their period of experiencing detachment. Shiva and Shakti take on this beautiful path by leaving their unity and walking towards the creation of the world. This is simply because unless one separates from the body, one will not be able to reach the soul.

Separation is seen in the world today as a disease; this is because it brings along tears, pain and the need for detachment. As human minds, our minds and emotion have been trained to be dependent and so, our minds are scared of facing some harsh realities which include the period of undergoing detachment from our dear ones. The mind and heart get scared of being left alone and end up taking wrong steps to keep those who were once dear to us. However, this is the first lesson of love that Shiva Shakti teaches us, the lesson of separation. Separation is the most crucial and beautiful path of any relationship. In order for another thing to start, there needs to be the ending of one thing. Shiva and Shakti are sent to be apart in order to create the world we are living in today and is not it the most beautiful outcome of a separation?

Separation has been an eternal concept in Hinduism. The most famous ones being the separation of: Radha and Krishna, Ram and Sita and the crucial of all, Shiva and Shakti. Separation is the energy of which brings out the best in two individuals, separation is that pain which makes one go beyond a decided limit and thus unites one with the self. A self who is free, detached and liberal.

Shiva Shakti were the first twin flames, the mirror image of each other , the indestructible force and complete soul which come together to create an entire cosmos. Shakti therefore takes birth again and again in order to unite with her beloved, Shakti undergoes several ordeal whereby even fire bows down to her when she burns herself for the sake of her husband, as Sati. The power of love is shown as being the strongest face of all, which forces these two eternal ones to come together for a better world several times.

"There is no Shiva without Shakti, or Shakti without Shiva. The two are in themselves one."

Male and female have been brought together on this Earth for the sole purpose Shiva Shakti were, that is creation. The desire to be one while feeling love, the desire of achieving the divine, the struggles, pain, fear and detachment. Once all these get answered and tackled, the soul becomes free and works for its designated purpose. Analysing Shiva Shakti in a universal perspective should certainly be much more than deciphering the several forms they are being prayed. Seeing Shiva Shakti in a universal perspective should also be about the eternal message and feeling of love they have left throughout the globe. It should be more about understanding the meaning of sacrifice and honoring the feelings we experience.

संगीत के जनकदाता : भगवान शिव

डा0 चित्रा चौरसिया

असिस्टेंट प्रोफेसर

आर्य कन्या डिग्री कालेज, इलाहाबाद

संगीत, प्रकृति के कण-कण में समाहित है, जो कि आत्मा आनन्द का माध्यम है। स्वर की व्याख्या 'स्वतः रज्जयति इति स्वरः' की गयी, स्वरों का प्रबल प्रभाव स्वाभाविक रूप से अलौकिक आनन्द प्राप्त करता है। भारतवर्ष में वैष्णव, शैव, शाक्त आदि परम्परायें रहीं हैं जहाँ संगीत का महत्व निरअपवाद माना गया है, यह भारतीय संगीत की आध्यात्मिक निष्ठा का परिणाम है, जिसे दार्शनिकों, योगियों, भक्तों आदि ने परमानन्द की प्राप्ति के लिए अपनाया।

संगीत अनादि है, इसका न आदि है न अन्त। जिस प्रकार जन्म-मरण की प्रक्रिया कब से प्रारम्भ हुई और कब तक चलती रहेगी, उसी प्रकार, संगीत का भी आरंभ और अन्त बताना सम्भव नहीं है। वेदों के अनुसार संगीत के क्षेत्र में दो आदि देव माने गये हैं - भगवान शिव तथा ब्रह्मा जी।

भगवान शिव, ब्रह्मा, सरस्वती, गन्धर्व और कि ार को भी हम अपनी संगीत कला के प्रेरक मानते हैं। संगीत कला देवीय प्रेरणा से ही प्रादुर्भत हुई है, हमारे ऋषियों और आचार्यों का यह विश्वास है कि शिव के डमरू से वर्ण और स्वर दोनों उत्पन्न हुए, भगवान शिव की शक्ति पार्वती, शिवा, दुर्गा भी संगीत की प्रेरक मानी जाती हैं।

यद्यपि ब्रह्मा जी ने वेदों द्वारा इस लेकर नाट्य वेद की सृष्टि की, और भरत ने नाट्य वेद की शिक्षा प्राप्त कर ब्रह्मा जी ने स्वाति एवं उनके शिष्यों को वाद्य तथा नारद और गन्धर्वों को भी संगीत का ज्ञान दिया। अमृत मन्थन की सफलता के पश्चात भगवान ने नाट्य प्रयोग शंकर जी को दिखाया और उनकी अनुमति प्राप्त कर ब्रह्मा की आज्ञा से महर्षि भरत ने 'त्रिपुरदाह' का प्रयोग किया। इस प्रयोग से भगवान शिव प्रसन्न हुए और प्रतिदिन संध्या काल नृत्य करते हुए नृत्य का आविर्भाव किया।

"भगवान शिव ने रेचकों, अंगहारों एवं पिण्डीबन्धों की सृष्टि करके तण्डु को सिखाया, उन्होंने गान-भाण्ड समन्वित जिस, नृत्य की सृष्टि की, वह ताण्डव कहलाया।

"रेचका अखहाराश्य पिण्डीबन्धास्तथैव च
सृष्टवा भगवता दत्तास्तण्डवे मुनये तदा।
तेनापि हि ततः सम्यग गान भाण्डसमन्वितः
नृत्त प्रयोगः सृष्टो यः स ताण्डव इति स्मृतः"[1]

तांडव नृत्य की उत्पत्ति भगवान शंकर द्वारा मानी जाती है, भगवान शिव किसी भी लीला प्रदर्शन के समय अथवा उपरान्त जो पुरूषोचित करणों तथा अंगहारों का प्रयोग करते हुए नृत्य करते थे, उसे तांडव की संज्ञा दी जाती है।

भगवान शिव तांडव के दो रूप हैं - पहला उनके क्रोध को दर्शाता है और दूसरा उल्लास का संदेश देता है। शिव का यह तांडव 'नटराज' रूप का प्रतीक है। नटराज शब्द दो शब्दों के सन्धि से बना है 'नट' और 'राज' अर्थात नट (कला) और राज (राजा) है। नटराज इस बात का सूचक है कि अज्ञानता को सिर्फ ज्ञान, संगीत और नृत्य से ही दूर किया जा सकता है।

तांडव नृत्य में वीर-रौद्र, वीभत्स आनन्द और करूणा जनित क्रोध का समावेश रहता है। इसी कारण इसमें अंगों को अत्यन्त विकृत रूप से तोड़ा मरोड़ा जाता है नृत्य के समय एसा प्रतीत होता है जैसे कोई क्रोधाग्नि भभकने लगी, धरती काँपती सी प्रतीत होती है। तांडव नृत्य में बजने वाले वाद्य अधिक गुंजायमान और नाद प्रधान होते हैं। जैसे घड़ियाल, झाँझ, डमरू, मृदंग, चंग आदि।

तांडव नृत्य के सात उपभेद हैं-

(1) त्रिपुर तांडव, (2) आनंद तांडव, (3) गौरी तांडव, (4) कालिका तांडव, (5) संध्या तांडव, (6) उमा तांडव, (7) संहार तांडव।

त्रिपुरासुर राक्षस के वध के उपरान्त भगवान शिव के क्रोध को शान्त करने हुत भगवती उमा ने जो सुकोमल शृंगारिक नृत्य किया उसे ''लास्य'' कहते हैं। इस नृत्य की शिक्षा भगवती उमा ने वाणासुर की पुत्री ऊषा को दी, जिसने इस नृत्य को अत्यधिक सुकोमल व शृंगारिक तरीके से प्रचलित किया। कथक, भरतनाट्यम, मणिपुरी, ओडिसी, मोहनी अट्टम व कुचिपुडी आदि नृत्य इन सबका जन्म 'लास्य' द्वारा ही हुआ।

''संगीत रत्नाकर' में उपलब्ध एक कथा के अनुसार एक बार भगवान शिव भिक्षाटन के उद्देश्य से निकले और उन्होंने षड्जादि जातियों का गान किया। इससे निरतिशय रस की अभिव्यक्ति हुई और शिव-मस्तक पर स्थित अर्द्ध-चन्द्र से अमृत का स्राव होने लगा, जिससे ब्रह्मा के आभूषण-रूपी कपाल (शिर) उससे सिक्त होकर प्राणवान् हो उठे और उस शिव-गान का अनुकरण करने लगे। अतः कपाल से उत्पन्न गीत होने के कारण उन्हें 'कपाल' कहा गया।

ब्रह्मा प्रोक्त कपालों की संख्या सात है जो सप्त जातियों से उत्पन्न है, इनके नाम क्रमशः जातियों के नाम पर ही है तथा-षाडजी कपाल, आर्शभी कपाल, गान्धारी कपाल, मध्यमा कपाल, पंचमी कपाल, धैवती कपाल तथा नैशादी कपाल।

इति सप्तकपालानि गायन्ब्रह्मोदितैः पदैः।
स्वरैश्च पार्वतीकान्तस्तुतौ कल्याणभाग्भवेत्।।
(संगीत रत्नाकर, स्वरगताध्याय गीत प्रकरण)

अर्थात जो शिव स्तुति के समय ब्रह्मा द्वारा गाए गये इन सात कपालों का पद तथा स्वर सहित गान करता है, उसका परम् कल्याण होता है।[2]

शिवपुराण के मतानुसार नारद जी के वर्षों की तपस्या व योग साधना से प्रसन्न होकर भगवान शिव ने उन्हें संगीत कला प्रदान की। शिव जी ने पार्वती जी की शयन मुद्रा देखकर 'वीणा' बनायी जिसका नाम 'अनालम्बी' है। शिवमत के अनुसार पाँच राग भैरव, हिण्डोल, मेघ, दीपक और श्री राग का प्रादुर्भाव भगवान शिव एवं राग कौशिक की उत्पत्ति पार्वती जी द्वारा हुई।

''शिव प्रदोष'' स्त्रोत के अनुसार त्रिजगत की जननी गौरी को स्वर्ण-सिंहासन पर बैठाकर प्रदोष के सामने शूलपानी शिव ने नृत्य करने की इच्छा प्रकट की। इस अवसर पर सभी देवताओं ने उनके चारों ओर खड़े होकर उनकी स्तुति गान किया, माँ सरस्वती ने वीणा, इंद्र तथा ब्रह्मा जी ने करताल बजाना आरम्भ किया, लक्ष्मी जी गाने लगी और विष्णु भगवान मृदंग बजाने लगे। इस नृत्यमय संगीतोत्सव को देखने के लिए गंधर्व, यक्ष, पतग, उरग, सिद्ध, साध्य, विद्याधर, देवता, अप्सारायें आदि सभी उपस्थित थे।

भारतीय संगीत में राग-रागनियों के जन्मदाता भगवान शिव ही हैं–

''रागाध्यान में-शिव शक्ति समायोगाद्रागाणां सम्भवो भवेत।
पंचास्थात् पंचरागाः स्यूः शठस्त गिरिजामुखम्''

बताकर रागों की उत्पत्ति का आधार भगवान शिव को माना गया है।[3]

भगवान शिव के चार हाथों में से दक्षिण प्रथम हस्त में डमरू है जो कि अखण्ड महाकाल में छन्द, ताल, लय को संरक्षित किया है, डमरू भारत का सर्वप्रथम मान्य (चर्मवाद्य) अवनद्य वाद्य है ''उड्डीशमहामन्त्रोंदयतन्त्र'' के सोलह अध्यायों में

सोलह प्रकार के वाद्यों के अन्तर्गत डमरू का विवरण दिया गया है, डमरू भगवान शिव का वाद्ययंत्र है शंकु आकार के बने इस ढोल के बीच हिस्से में एक रस्सी बंधी रहती है जिसके पहले और दूसरे सिरे में पत्थर या कांसे का एक टुकड़ा लगा होता है, और जब डमरू को पकड़कर हिलाया जाता है, तो कांसे में बंधी हुई रस्सी पहले एक मुख की खाल पर प्रहार करता है और फिर उलटकर दूसरे मुख पर, जिससे 'डुग-डुग' की आवाज उत्पन्न होती है।

''नन्दिकेश्वरकारिका के अनुसार नटराज शिव ने नृत्य अन्त में जो डमरू बजाया उसी से चौदह माहेश्वर सूत्र निकले-

नृतावसाने नटराजराजो ननाद डक्का नपपंचवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेद्धिमेर्श शिवसूत्रजालम्।।

इन्ही सूत्रों से स्वरवर्ण बने और 'रूद्रडमरूद्रभव' विवरण के अनुसार 'अ इ उ ण' इत्यादि सूत्रों से ही षडज, रिषभ, गान्धार आदि स्वर निष्पन्न हुए हैं।4

उपलब्ध प्राच्य संगीत ग्रन्थों पर स्पष्ट होता है कि हमारी संगीत कला के जनक सर्वप्रथम भगवान शिव रहे तत्पश्चात अन्य देवी-देवता। हिन्दु धार्मिक परम्परा के अनुसार संगीत का ज्ञान सर्वप्रथम ब्रह्मा जी के शिव द्वारा प्राप्त हुआ, ब्रह्मा जी ने बुद्धि एवं कला की अधिष्ठात्री सरस्वती को दिया, सरस्वती जी ने नारद को, नारद ने भरत, हनुमान आदि ऋषियों को तत्पश्चात संगीत का प्रचार भू-लोक में हुआ।

1. भरत नाट्यषास्त्र
2. संगीत पत्रिका तराना अंक (जनवरी 1968) पृ0 सं0 04
3. भारतीय तालों का षास्त्रीय विवेचन (डॉ0 अरुण कुमार सेन) पृ0 सं0 135
4. भारतीय संगीत का इतिहास (ठाकुर जयदेव सिंह) पृ0 सं0 262

संन्दर्भः-

1. भारतीय संगीत का इतिहास - ठाकुर जयदेव सिंह
2. संगीत पत्रिका (तराना अंक) जनवरी 1968
3. भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन
4. संगीत चिंतामणि (श्रीमती सुलोचना यजुर्वेदी)
5. भारतीय संगीत का इतिहास (राम अवतार वीर)
6. संगीत पत्रिका - अप्रैल- 2013
7. संगती पत्रिका - नवम्बर- 2014

Daivavyapashraya Chikitsa

Deepak S. Kulkarni*

Sanjeevani Ayurveda Pvt. Ltd., Bengaluru.

Ameya Niphadkar

Atreya Clinic, Pune.

ABSTRACT

Vedic sacred knowledge is a reservoir of the physical and spiritual secrets that enrich the human existence. This paper attempts to reveal and discuss the direct experiences of the viniyoga of the Vedic and the Saiva mantras in curing the diseases. The author has handled enormous data acquired while the practising the Mantrayoga, as per the prescriptions given by the sacred books. The usage of mantras, their direct impact and results are self-evident of the all-pervasive power of our intellectual heritage.

In this paper, the experiences of the patients and the adhyatmik chikitsak (practitioner) are explored, in the premise of what has been depicted and departed by the eternal tradition, alongside the discussion regarding the psychoanalytical changes and transformations observed.

1. Introduction

1.1 SHIVA- SHAKTI

Shiva is the "destroyer of evil and the transformer" within the Trimurti. In Shaivism tradition, Shiva is the Supreme Being who creates, protects and transforms the universe[12,13,14]. In the tradition of Hinduism called Shakti, the Goddess, or Devi, is described as supreme, yet Shiva is revered along with Vishnu and Brahma. A goddess is stated to be the energy and creative power (Shakti) of each, with Parvati (Sati) the equal complementary partner of Shiva.

According to the Shaivism, the highest form of Shiva is formless, limitless, transcendent and unchanging absolute Brahman, and the primal Atman(soul, self) of the universe.

Shakti is the concept or personification of divine feminine creative power, sometimes referred to as "The Great Divine Mother" in Hinduism. As a mother, she is known as "*Adi Shakti*" or "*Adi Parashakti*".

In Shaktism, Shakti is worshipped as the Supreme Being. Shakti embodies the active feminine energy of Shiva and is synonymously identified with *Tripura Sundari or Parvati.*

Shakti is exquisitely beautiful with a flowing and shape-shifting quality to her — embracing reality as a dance. She is

* Corresponding Author

fluid, flowing and powerfully flexible. Shakti- energy can be wildly sensual, raw and expressive. Shakti- energy can be seen in everything that lives as the manifest, while Shiva energy is formless. Things that have already come into being are made of Shakti- energy. These two divinely sacred energies are equal and opposite forces. We can't have one without the other.

1.2 VEDAS

The Vedas are a large body of knowledge texts originating in the ancient Indian subcontinent. Composed in Vedic Sanskrit, the texts constitute the oldest layer of Sanskrit literature and the oldest scriptures of Hinduism. Hindus consider the Vedas to be *apaurusheya*, which means "not of a man, superhuman" and "impersonal, authorless"

Vedas are also called *œruti* ("what is heard") literature, distinguishing them from other religious texts, which are called *smruti* ("what is remembered"). The Veda, for orthodox Indian theologians, is considered revelations seen by ancient sages after intense meditation, and texts that have been more carefully preserved since ancient times.

There are four Vedas: *Rigveda*, *Yajurveda*, *Samaveda* and *Atharvaveda*. Each Veda has been sub-classified into four major text types – the Samhitas (mantras and benedictions), the *Aranyakas* (text on rituals, ceremonies, sacrifices and symbolic-sacrifices), the *Brahmanas* (commentaries on rituals, ceremonies and sacrifices), and the *Upanishads* (texts discussing meditation, philosophy and spiritual knowledge).

The Atharva Veda (Atharvaveda from atharvâs and veda, meaning "knowledge") is the "knowledge storehouse of atharvâs, the procedures for everyday life". The text is the fourth Veda, but has been a late addition to the Vedic scriptures of Hinduism. The Atharvaveda is composed in Vedic Sanskrit, and it is a collection of 730 'sarga' with about 6,000 mantras, divided into 20 books. About a sixth of the Atharvaveda text adapts verses from the Rigveda, and except for Books 15 and 16, the text is in poem form deploying a diversity of Vedic matters. Two different recensions of the text— the Paippalāda and the Úaunakīya have survived into modern times.

The Atharvaveda is sometimes called the "Veda of magical formulas".

The Atharvaveda was likely compiled as a Veda contemporaneously with Samaveda and Yajurveda, or about 1200 BC - 1000 BC. Along with the Samhita layer of text, the Atharvaveda includes a Brahmana text, and a final layer of the text that covers philosophical speculations. The latter layer of Atharvaveda text includes three primary Upanishads, influential to various schools of Hindu philosophy. These include the Mundaka Upanishad, the Mandukya Upanishad and the Prashna Upanishad.

1.3 AYURVEDA :

Ayurveda is an ancient system of life (ayur) knowledge (veda) arising in India 5 thousands of years ago. Ayurveda theory evolved from recollected memories of lord Brahman. The great rishis or seers of ancient India came to understand creation through deep meditation and other spiritual practices. The rishis sought

to reveal the deepest truths of human physiology and health. They observed the fundamentals of life, organized them into an elaborate system, and compiled India's philosophical and spiritual texts, called Ayurveda, the Veda of knowledge.

Ayurveda was first recorded in the Veda, the world's oldest existing literature. The three most important Veda texts containing the original and complete knowledge of Ayurveda, believed to be over 5000 years old, is still in use today. These Ayurvedic teachings were customarily passed on orally from teacher to student for over 5000 years. The wisdom of Ayurveda is recorded in Sanskrit, the ancient language of India that reflects the philosophy behind Ayurveda and the depth within it

The philosophy of Ayurveda teaches a series of conceptual systems characterized by balance and disorder, health and disease. Disease/health results from the interconnectedness between the self, personality, and everything that occurs in the mental, emotional, and spiritual being. To be healthy, harmony must exist between the purpose for healing, thoughts, feelings and physical action.

Ideal treatment or Shuddha Chikitsa is the one, which cures the disease without causing any adverse effect. The three classical therapeutic modes advocated by Ayurveda are (1) Therapies with divine supremacy (Daiva Vyapashraya chikitsa), (2) Rational treatment with medicines and remedial procedures (Yukti Vyapasraya Chikitsa) and (3) Precautionary and self-controlling measures (Satwavajaya chikitsa).

2. Daiva Vyapashraya Chikitsa- Devine therapy

Ayurveda has always been giving magnitude to Karma theory where all happenings in our life such as wealth, health, dismay, diseases, distress, contentment, personal life, marital life and each and every thing is a result of Prarabdha Karma or the instigated effects. It is not advisable to overcome Karma or postpone the effects by some special methods. However one can prey divinity to give strength and ability to sustain with any undesirable Karmic effects.

In this connection in case of a diseases are seem to occur without hetu, reason, in that case, Ayurveda suggests divine therapy which includes procedures like wearing precious gems, chanting of specific Mantras, consuming divine potion which is fortified with adoration, a tour to holy places, performing Poojas, Yajnas, offerings etc along with proper medical treatment.

Considering these aspects Ayurveda indicates to perform Pujas/Yajnas done on their behalf in order to alleviate the suffering in their lives caused by malefic Karmic influences and to achieve specific benefits like good health, prosperity, pleasant conjugal relationship etc.

2.1 PARA / MERCURY

Ayurvedic materia medica is dominated by substances of plant, animal and mineral origin. Metals and minerals used include mercury, gold, silver, copper, iron, tin, zinc etc. An extensive range of chemical and physical processing of these metals and their compounds has been elaborated in texts like Rasaratnasamucchay, Rasendrasar

sangraha, Rasendrachudamani, Rasendrachintamani

Mercury is one of the metals which not only attracted wide attention of ayurvedic chemists and physicians but also physicians and scientists from other fields of sciences[8]. Indeed the documentation of chemical and physical processes involving mercury is truly enormous in ancient texts of which classics by Ras Vagabhatta and Nagarjuna are noteworthy. Among the various procedures which utilize mercury, we became interested in the one that involves mercury and sulphur. The process is divided in three distinct steps, namely (i) pre-treatment of mercury and sulphur with herbal and milk products, (ii) mixing of mercury and sulphur along with other herbal ingredients resulting in the formation of black sulphide of mercury, (iii) thermal treatment of black sulphide of mercury at 600–650 °C [9]. The sublimed red sulphide of mercury is termed as rasasindur (alias rasasindura, rasasindoor, rasasinduram, sindur, or sindoor) in Rasashastra and is used extensively in various ailments and diseases [10].

Rasa Shastra

"There is no better medicine than mercury, no greater god than Mahadeva, no better friend than the exclusive Vaidya, and no better deed than a gift." –B. Mukherji

The Science of mercury is known as Rasa Vidya or Rasa Shastra in Ayurveda. Rasa is a word that has many meanings; in this present context it is used to mean the element mercury. Shastra means science. Rasa Shastra literally means the "science of mercury" but generally refers to the science of making minerals assimilable for the body so they can be used as medicines. Ayurveda believes that nothing is good for everybody and everything is good for somebody. Various minerals, some like mercury considered toxic, can by proper procedures be made into medicines. This essay explains the general basics of Rasa Shastra and gives a closer look at the magical rasa itself.

In the Vedas, gold and silver had a ritualistic use, the uses of bhasma (prepared minerals) came after the vedic period. Rasa Shastra is believed to have come about in the 6th and 7th century[2]. The Buddhist sage, Nagarjuna, is considered the first to use mercury[3] and to have done much in the propagation of rasa shastra.

Rasa Shastra is divided into two main categories: Lohavad- turning mercury into gold, and Dehavad- rejuvenation of the mind-body-spirit. It is said in the rasa texts that metallurgy is a science which was taught by Shiva (God) Himself. It is also stated that mercurial operations are successful by the grace of God. Rasa Shastra is a very spiritual science with many facets to see and understand.

1. Patient Name-Abc
   Patient age-6 yrs, Sex-Female
   Diagnosed disease-Eye Carcinoma
   Adhyatmik Chikitsa –Patient was assured that she may not die due to the diagnosed disease. Her one eye sight would be prevented and she may survive happily. Following Chikitsa has been given to her.

i. Maharudra swahakar **(Ref-Rugved –Rugvidhanam):** Shiva being a

destroyer having whole right of survival since one who survives he may destroy, his worship grants life.

2. Patient Name-Abc
   Patient age-45 yrs, Sex-Female
   Diagnosed disease - Secondary infertility

Adhyatmik Chikitsa-Patient was assured that she would have pregnancy without any other materialistic medicines. Following Chikitsa has been given to her.

i. **Maharudra swahakar (Ref-Rugved–Rugvidhanam)** : Shiva being a destroyer having whole right of survival since one who survives he may destroy, his worship grants life.

3. Patient Name-Abc
   Patient age-28 yrs, Sex-Male

Self Diagnosed disease – Swapnadosh (Patient has come with the complaints of Chanchalya, Smrutinash). He was diagnosed with the help of his eyes –as in Ayurved Kashyap Samhita quotes –यथा दृष्टि तथा मनः, also Charak samhita added the refrence of importance of eyes in Shukrasarata- diagnosis was done as Swapnadosh Adhyatmik Chikitsa- Following Chikitsa has been given to him-

i. **Parad Mani Dharan (Ref-Parad Samhita):** According to Ayurveda Parad is considered as Shukra of Bhagvan Shiva,Parad Mani was given to cure his Shukra dosh.

4. Patient Name-Abc
   Patient age-58yrs, Sex-Male
   Diagnosed disease-Hrudrog
   Patient has come with the diagnosis of Hrudrog

Adhyatmik Chikitsa- Following Chikitsa has been given to him-

i. Rudraksha Dharan
ii. **Rudraksha siddha Jal (Ref-Rudrayamal tantra):** Rudraksha is known as Ashru of Bhagvan Shiva.

5. Patient Name-Abc
   Patient age-Approx 62 yrs, Sex-Male
   Diagnosed disease -Yakshma
   Adhyatmik Chikitsa- Following Chikitsa has been given to him-

i. Rudra mantrabhimantrit Kajjali (1 mudga praman) with milk

REFRENCES-

1. Rugved samhita, swadhyay mandalam, 6th edition, 1997.
2. Krishna Yajurvediya Taitariya-samhita Shree Satavalekar Yudhishthir Mimansak, Sonipat, 1 st edition sanvat-2036.
3. Samved Prakrutiganam(uttarardham) , Ma.print, Bengaluru, 2nd edition 2014.
4. Atharvaveda, Nag prakashak, 1st edition1994.
5. Shree Vagbhatacharya Rasaratnasamuchhaya by Ambikadatta Shastri Chaukhambha Prakashan Varanasi 2004.
6. Parad Samhita, Shree Niranajanprasad, Khemaraj Shreekrushnadas, Shree Vyankateshwar press, Mumbai 1st edition 1997.

"वैदिक वाङ्मय में शिव की अवधारणा : एक अध्ययन"

दिनेश कुमार मौर्य (शोधच्छात्र)

संस्कृत विभाग

दी0द0उ0गो0वि0वि0 गोरखपुर

विश्वव्यापी शाश्वत नियमों को 'ऋत' कहते है। 'ऋततत्त्व' ही संसार का संचालन और नियन्त्रण करते हैं। सूर्य, चन्द्र, ब्रह्माण्ड सहित समस्त संसार ऋततत्व के नियन्त्रण में हैं। इस ऋत तत्व के दो रूप हैं। 1.पालक 2. संहारक। प्राकृतिक नियमों के अनुकूलन चलने पर वे उसके पोाक एवं रक्षक होते है। इसके विपरीत चलने पर वे उसके नाशक और संहाकर हैं। इसी को आधार मानकर पालक या रक्षक तत्त्व को शिव या शंकर कहते हैं। संहारक तत्त्व को 'रूद्र' कहते है। ये एक ही शक्ति के दो विभिन्न रूप हैं।

'शिव' शब्द की दो प्रकार से व्युत्पत्ति हुई हैं। अदादिगण के 'शी' धातु से जिसका अर्थ होता है 'शयन करना' जिसमें सब कुछ 'शयन' करता है वह शिव है।

दिवादिगण 'शो' धातु से (शयति पापम्-शोवन्) जिसका अर्थ होता है 'दुर्बल कर देना' जो सब दुःखो और पापों को दुर्बल कर देता है। वह शिव है। ये दोनो 'अर्थ' 'शिव' शब्द में निहित है। शिव सब दृष्टि का अधिष्ठान है और वह परम कल्याणकारी भी है जो अपने अनुग्रह से सब जीवों का उद्धार करता है वह तात्त्विक और आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से सबका मूल है। भोग भी उसी से होता है। मोक्ष भी उसी से होता है।[1]

वैदिक युग से लेकर आज तक हमें शिव शब्द के अनेक पर्यायवाची शब्द मिले है। रूद्र शब्द भी शिव का पर्यायवाची है। शिव-तत्त्व के प्रचारक 'रूद्र' का शाब्दिक अर्थ उसकी विकास परम्परा एवं विश्लेाण का ज्ञान हमें वेदों से ही प्राप्त होते है। अतः हमे वैदिक संहिताओं में शिव के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसके पर्यायवाची शब्द 'रूद्र' के विाय में जानकारी प्राप्त होती है।

वैदिक व्याख्याकारों के अनुसार 'रूद्र रोदने' (क्रन्दन करना) से व्युत्पत्ति हुई है और रूद्र का अर्थ है क्रन्दन करने वाला।[2]

'रूद्र' सम्भवतः प्राचीनकाल में झंझावत के भीषण रव का व्यंजक था, किन्तु अग्नि का रव भी इसी के समान होता है, अतः झंझावत और अग्नि दोनों के संयोग से क्रोध और विनाश का यह देवता रूद्र बना। आचार्य सायण ने रूद्र देव की स्वरूपाख्या दो रूपों में प्रस्तुत की है -

1. रोदयति सर्वम् अन्तकाल इति रूद्र :।
2. यद्वा रूद्र : दुःख हेतुर्वा तस्य द्रावको देवो रूद्र परमेश्वरः।

रूद्र को सामान्यतः झंझावत का देवता माना जाता है; किन्तु इनका अस्त्र दुर्भावनापूर्ण से प्रयक्त होता है, जबकि इन्द्र का अस्त्र उनके स्तोताओं के शत्रुओं पर ही लक्षित होता है अतः सम्भवतः रूद्र विद्युत रूप में झंझावत के नही वरन् विद्युत के माध्यम से उनके हानिकारक पक्ष का ही प्रतिनिधित्व करते थे। क्रोध निवारण स्तुतियों ने ही रूद्र के लिये कल्याणकारी (शिव) उपाधि को जन्म दिया, जो वैदिकोत्तर मिथक में 'रूद्र' का ऐतिहासिक उत्तराधिकारी का नियमित नाम बन गया।[3]

वेदों में रूद्र के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है। जैसे-रूद्र, शिव, भव, शर्व, शंकर, पशुपति,

प्रथम भिाक् आदि। ये नाम विभिन्न गुणों के आधार पर या रूलाने के आधार पर रूद्र (रूलाने वाला) नाम है। संसार के कर्ता होने के आधार पर 'भव' (स्रटा, उत्पादक) नाम पड़ा। दंड देना दुःख देना, संहार करना आदि अर्थो के आधार पर 'शर्व' नाम पड़ा। जीव-जगत् या पशु-जगत् के पालन के आधार पर 'पशुपति', सृटि के प्रथम वैद्य होने के आधार पर 'प्रथम भिाक्' नाम पड़ा।

शिवतत्त्व के प्रचारक 'रूद्र' का शाब्दिक अर्थ उसकी विकास परम्परा एवं स्वरूप विश्लेाण गुण-कथन उपासनादि का ज्ञान हमें वेदों से ही होता है। वैदिक साहित्य के प्राथमिक ग्रन्थ ऋग्वेद में शिव के स्वरूप की गवेाणा बड़े ही अनुबन्धित ढंग से की गयी है। शिवरूप की अर्थात्मक एवं अवसरात्मक विवेचना का यह प्रथम आधार है। ऋग्वेद में प्राप्त स्तुतियों के आधार पर रूद्र के दो रूप का विवरण प्राप्त होता है। एक रूप में इन्हें भयंकर तथा द्वितीय में मंगलकारी माना गया है।

मंगलमयी भावनाओं का प्रसार अमंगलकारी तत्वों के विनटीकरण बिना संभव नही है। सम्भवतः इसी भाव सत्यता में रूद्र के विध्वसंक एवं मंगलमय रूपों की कल्पना की गयी है। रूद्र का संगमन नाम उसकी वेश-भूाा और वर्ण सामान्यतः उनके क्रूर भयंकर स्वरूप आदि के आधार पर विद्वत वर्ग ने उन्हें झंझावत का प्रतीक माना है। मैक्डानल ने- 'विशुद्ध' झंझावत की अपेक्षा झंझावत के विध्वसंक-विनाशकारी विद्युताग्नि का, भण्डारकर ने 'प्रकृति की विनाशकारी शक्तियों का; विल्सन ने 'अग्नि तथा इन्द्र का कीथ ने मैक्डालन के विचार का समर्थन करते हुए विध्वंसक रूप का प्रतीक तथा ओल्डर ने 'पवन के साथ विचरती हुई मृत आत्माओ का सरदार माना हैं।''[4]

इस रूप में इनका एक नाम वज्रधारी तथा इनके वज्रों का नाम 'गोध्न' 'क्षयद्वीर' बताया गया है।

इमा रूद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहेमतीः। यथा शमसद् द्विपदे चतुपदे विश्वं पुटं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्।।[5]

आरे तें गोधनमुत पुरुाधं क्षयद्वीर सुम्नमस्ते ते अस्तु। मृळा च नो अधि च ब्रूहि देवाधां च नः शर्म यच्छ द्विवर्हाः।।[6]

रूद्र के विध्वंसक रूप के विश्लेाण से इनका जो प्राकृतिक रूप परिलक्षित होता है वह घनघोर घटाटोप, गर्जन-तर्जनमयी वार्ा मे मेघ गर्जन का है ऋग्वेद में रूद्र का वर्ण वभ्रुश्वेत एवं सुनहला वर्णित है मेधों में लपलपाती हुई विद्युत के भी ये सब रंग है। रूद्र के हाथ तथा बाहू है।

अर्हन्विभर्षि सायंकानि धन्वार्हन्निकं यजत विश्वरूपम्।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रूद्रत्वदस्ति।।[7]

इनका शरीर अत्यन्त बलिठ है। उनके ओठ अत्यन्त सुन्दर है। उनके मस्तक पर बालों का एक जटाजूट है, जिसके कारण वे कर्दी कहलाते है। रूद्र विभिन्न रूप धारण करने वाले है। तथा उनके स्थिर अंग चमकने वाले सोने के रूद्र सूक्त में उनके स्वरूप का विस्तृत वर्णन किया गया है। रूद्र के मुख, चक्षु, त्वक्, अङ्ग, उदर, जिह्वा, तथा दाँतों का उल्लेख किया गया है।

हे पशुपालक, भवदेव, आपके मुख, आँखों त्वचा और नील-पीत आदि वर्ण के लिए प्रणाम है। आपकी समतायुक्त दृष्टि और पृष्ठ भाग के लिए नमस्कार।

मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूषि ते भव।
त्वचे रूपाय संदृशे प्रतवीचीनाय ते नमः।।[8]

नील केशधारी, सहस्त्र नेत्र्यक्त, तीव्रगति वाले, अर्द्धसेना के विनाशक रूद्रदेव से हम कभी पीड़ित न हो।

अस्त्र नीलशिखण्डेन सहस्त्रक्षेण वाजिना।
रूद्रेणार्धकधातिनी तेन मा समरामहि।।[9]

उनके सहस्त्र नेत्र है उनकी गर्दन का रंग नीला परन्तु उनक कण्ठ उज्ज्वल रंग का हैं।

नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्य वो नमो भवाय च
रूद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो
नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च।[10]

उनके माथे पर जटाजूट के वर्णन के साथ ही साथ कभी-कभी मुण्डित केश भी कहे गये है। सहस्त्र चक्षुरूप तथा शत धनुर्धारी समस्त प्राणियों में व्याप्त विणुरूप, तृप्ति प्रदान करने वाला मेघरूप बाण धारण करने वाले रूद्ररूप कहा गया है।

नमः कपर्दिन च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने
च नमो गिरिशाय च शिपिविटाय च नमो मीढुटमाय चेषुमते च।[11]

ऋग्वेद के उत्तर भाग के एक सूक्त में रूद्र को 'केशी' के साथ विषपान करते हुए बताया गया है सायणाचार्य ने लक्षणा के आधार पर इसका तात्पर्य 'केशों य किरणों वाला कहा है। 'केशी' का अर्थ सूर्य भी है केशी केश रश्मयः ।12

इन्हें भीम, 'कवि और प्रभूत जगत का ईशान भी कहा गया है
स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशेहिरण्यैः।
ईषानादस्य भुवनस्य भूरेर्न वा उ योद्रुद्रादसूर्यम्।।13

इन शब्दों में रूद्र का सोम्य रूप प्रतिविम्बत है, जो शिवतत्त्व का द्योतक है। रूद्र शक्तिशाली, जलप्रदायक है अतः गुणानुकूल नाम सार्थक है।

क्वास्य ते रूद्र ळयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेजो जलाः।
अपभर्ता रपसो दैव्यस्याभी नु मा वृाभ चक्षमीथाः।।14

जहाँ रूद्र का उग्र रूप जीवन संहर्ता बन जाता है वही इनका सौम्य रूप जीवन-दायक, जीवन-संरक्षक रूप भी लक्षित है। इसीलि रूद्र को ईश्वर का प्रतीक मानकर आराधना की गयी है। रूद्र का महाभिाक उपाधि सम्भवतः इस अर्थ का द्योतक है कि वार्काल में रूद्र का स्वरूप शक्तिशाली होने से औाधियों की अत्याधिक उपज होती है। वायुमण्डल स्वच्छ हो जाता है और समस्त जड़-चेतन में नव-जीवन का संचार होता है। शिव शब्द का तात्पर्य 'सत्' 'मंगल' 'कल्याणप्रद' और 'भद्र' है यह शिव की बीज रूप में जगत् के सभी रूपों में वर्तमान रहता है। इसी रूप में रूद्र को जगत् जनक स्वीकार किया जाता है।

रूद्र के शुभ उपचारों से स्तोता शत्शीत ऋतुओं तक जीवित रहने की आशा करते है इस सम्बन्ध में रूद्र को दो उपाधियों से विभूाित किया जाता है यथा 'जलाा' उपचार करने वाला तथा 'जलाा भेाज' उपशामक।

गाथपतिं मेधपतिं रूद्रं जलााभेाजम्।
तच्छयो : सुम्नमीमहे रूद्रं जलााभेाजम्।।15
रूद्र जलााभेाज नीलशिखण्ड कर्मकृत।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान्कृवोधे।।16

यजुर्वेद में रूद्र के नामों का शिवत्त्व की दिशा में काफी कुछ विकास हुआ है। यहाँ अनेकत्व में एकत्त्व का प्रतिबिम्ब दिखायी देता है। इस वेद में रूद्र के आतंककारी रूपों का परिवर्तन हुआ है यहाँ हमें रूद्र का क्रोधी रूप दिखायी देता है और इस क्रोधी रूप का वन्दन उनके बाणो का वन्दन व बरहुओं को नमस्कार ऐसा भी मितला है।

नमस्ते रूद्र मन्यव उतो त इावे नमः।
वा हुभ्यामुत ते नम :।।17

पिनाकी, ष्यम्बक आदि नाम रूद्र के मूल रूप के परिचायक है इसके अतिरिक्त हमें रूद्र के प्रशंसासूचक विशेाण स्वास्थप्रद, भेाजप्रदाता, देवचिकित्सक, पशुपति आदि है। रूद्र देव के समान स्वभाव वाले वैद्य अश्विनी कुमारो और देवी सरस्वती ने पृथ्वी के ऊपर सोम को स्थापित करते हुए इन्द्रदेव के विराट शरीर की रचना को परिपूर्ण किया। वह रचना, हाड़, मज्जा और परिपक्व औाधि रसों से निर्मित उत्तम शिल्पी के तुल्य निर्माण का परिचय देता है।

तदश्विना भिाजा रूद्रवर्तनी सरस्वती वयति पेशो अन्तरम्।
अस्थि मज्जानं मासरैः कारोतेरण दधतो गवां त्वचि।।18

कृण यजुर्वेद एवं शुक्ल यजुर्वेद के ष्यम्बक एवं शतरूद्रिय सूक्तों में सबसे विशिट बात रूद्र के नये

रूप के दर्शन की है यहाँ अम्बिका नाम की स्त्री देवता के साथ इनका भगिनी सम्पर्क दिखाय गया है। मूाक नाम के विशिट वाहन का संकेत है। कृत्तिवास नाम से रूद्र को चर्म वस्त्रधारी सिद्ध किया गया है। यजुर्वेद के शत-रूद्रीय सूक्त में विस्तार पूर्वक शिव नाम से उस परमात्मा की स्तुति की गयी है।

नमः शंभवाय च मयोभवाय च।
नमः शंकराय च मयस्कराय च।
नमः शिवाय च शिवतराय च।[19]

इस वेद में रूद्र की सबसे बड़ी विशेाता यह है कि यहाँ वर्णित रूद्र वैदिक देव समूह के श्रेठ देवता न रहकर जन-सामान्य के आस्था के आधार बन गये। यहाँ प्राणिवर्ग के साथ रूद्र का अप्रत्यक्ष सम्बन्ध दर्शाया गया है। भूत पिशाच आदि से रक्षार्थ विविध मंत्र बताये गये है तथा औाधियों की प्राप्ति हेतु प्रार्थना की गयी है।

रूद्र की मुक्तिदाता के रूप में प्रार्थना की गयी है। सुगन्ध यक्त तथा अन्नादि की पुटि को बढ़ाने वाले त्रिनेत्रशिव का हम भजन करते है। हे त्रयम्बक! पके हुए खरबूजे के समान हम मृत्यु बन्धन से छूट जाये। परन्तु अमृत से नहीं।

ष्यम्बकं यजामहे सुगन्धितं पुटिवर्धनम्।
उर्वारूकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।
त्रयम्बक यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्।
उर्वारूकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः।[20]

ऋग्वेदीय रूद्र का गुण आत्मशक्ति एवं प्राकृतिक शक्तियों के उन्मेा से जीवन को जीतना था, किन्तु यहाँ आकर रूद्र का विशेा गुण आतंककारी रूप के प्रभाव से मधुर सौम्य आर्काक रूप की महिमा व्यक्त करना है, तथा जनसामान्य से मिलकर एक नये आदर्श की सृटि करना है।

ऋग्वेद, यजुर्वेद की भाँति ही अथर्ववेद में भी रूद्र के नाना रूप प्राप्ति होते है। यहाँ भी पहले जैसा ही मन्त्रदाता, सहस्राक्ष, व्युतिकेश आदि के द्वारा विभिन्न रूपों में रूद्र की पूजा हुई है। अथर्ववेद में रूद्र का पुरूा विधरूप अधिक विस्तृत हुआ है। यहाँ रूद्र वैदिक देवता समूह के श्रेठ देव न रहकर जन सामान्य के आस्था के श्रेठ देव बन गये हैं। इस वेद में प्राणिमात्र के साथ उनका अप्रत्यक्ष सम्बन्ध दिखाया गया है। अर्थववेद में वर्णित शिव का स्वरूप भूत-प्रेत आदि से रक्षार्थ विविध मन्त्रों में आया है। तथा उनकी औाधियों के उपलब्ध हेतु प्रार्थना की गयी है। प्रभु से उपदिट वेदज्ञान को क्रिया में अनूदित करने पर हम मक्त हो जाते है। भवरोग का औाध यह वेदज्ञान ही है।

इदमिद्धा उ भेाजमिंद रूद्रस्य भेाजम्।
येनेामेकतेजनां शतशल्यामब्रवत्।[21]

अथर्ववेद में रूद्र के विध्वसंक रूप पर अधिक प्रकाश डाला गया है और कहा गया है कि रूद्र का 'शर' विाधर होता है, उससे व्याधियाँ फैलती है और प्राणिमात्र उससे भयभीत होते है। अथर्ववेद में शिव के पौराणिक रूप का आधार मिलता है। इस वेद में 'भव' एवं 'शर्व' रूद्र के नाम है। जो हमे इस बात की सूचना देते है कि प्रवाह में रूद्र के साथ छोटे-छोटे देवताओं का तादत्म्य हो जाता है। युद्ध मे अस्त्र शस्त्रों में घायल शरीर को स्वस्थ करने के लिए शरीर में रह गये बाण आदि को निकाल फेंकने की व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक है।

यां ते रूद्र इुमास्यदङ्गेभ्यों हृदयाय च।
इदं तामद्य त्वद्वयं विूचीं वि वृहामसि।[22]

रूद्र का अथर्ववेद में पर्याप्त विकास हुआ है। यहाँ सौम्य और भयंकर, लास्य तथा ताण्डव दोनो ही रूपों में रूद्र आर्काक तथा प्रकम्पित कर देने वाले सिद्ध हुए है, वेदों में उल्लिखित रूद्र अथवा शिव के विविध नामों, विशेाणो तथा रूपों के साथ उनके गुण भी बताये गये है कहीं-कहीं इन्हे दिन के अभिमानी, मित्रदेवता, रात्रि के अभिमानी वरुण देवता, परम ऐश्वर्य सम्पन्न स्वर्ग के अधिपति देवराज इन्द्र ये सब मुझको अनुग्रह करने योग्य समझे, विश्व का पोाण करने वाले ये मित्र (सूर्य आदि) देवता मुझ तेज चाहने वाले को अभिलाति तेज से संयुक्त करे। स्नेह, निर्द्वेाता, जितेन्द्रियता व नीरोगता की

भावनाएँ मुझे सबल बनाएँ। सूर्यादि देवों के सम्पर्क में मेरा जीवन तेजस्वी बनें।

मित्रस्व वरूणश्चेन्द्रो रूद्रश्व चेततुः।
देवासो विश्वधायसस्ते माथ्श्रजन्तु र्क्वसा।।[23]

अथर्ववेद में रूद्र का प्रधान गुण प्राकृतिक प्रकीणों (आपदाओं) को शान्त कर एक अप्रतिम शक्ति के रूप में सभी व्यक्तियों को आत्म-सात् कर लेना है। अब रूद्रोपासना देवाधिपत्य महादेव के रूप में की जाती है। रूद्र को अधिठाता के रूप में भी देखा जाता हैं।

शंकर का ही नाम विशेा अवस्था में रूद्र के रूप में ग्रहण किया जाता है। वैदिक संहिताओं में रूद्र देव की आराधना दोनों ही रूपों में की गयी है। सर्वप्रथम सृटा के रूप में तदन्तर संहारक के रूप में।

हें रूद्रत्वं संहतिसमये विश्वसंहरवार्थ धनुः विभर्ि।[24]

'शिव' उपाधि अथर्ववेद तक किसी अन्य देवता की विशिटता नही बन सकी है।

अतः उग्र रूप के हेतु से जो देव 'रूद्र' है; वे ही जगत् के मंगल साधन करने के कारण 'शिव' है। जो रूद्र है, वही शिव है, श्वेताश्वतरोपनिाद में रूद्र का नाम शिव बताया है, उन्हें ही सृटा ब्रह्म, परमात्मा के रूप में उपास्य माना गया है।

एको हि रूद्रों न द्वितीयाय तस्थु-
र्य इमाँल्लोकानीश्त ईशनीभिः।
प्रत्यङ्‌ जनांस्तिठति संचुकोचान्तकाले
*संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपा :।*25

वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मणग्रन्थों और उपनिाद में रूद्र के विकास की स्वरूप का जो परम्परा हमे मिलती है वह एक समान ही है। कहीं-कहीं इनके रूप और नाम-भेदों में थोड़ा अन्तर हो गया है, किन्तु सबका लक्ष्य एक ही है

सन्दर्भ -ग्रन्थ सूची

1. प्रत्याभिज्ञाहृदयम्—जयदेव सिंह
2. तैत्तिरीय संहिता - 1.5.1.1
   शतपथ ब्राह्मण - 6.1.3.10
3. वैदिक मैथोलाजी - मैक्डानल पृ0 - 145
4. शैवमत - डॉ0 यदुवंशी - पृ0 1-2
5. ऋग्वेद - 1.114.1
6. " - 1.114.10
7. " - 2.33.10
8. अथर्ववेद - 11.2.5
9. " - 11.2.7
10. शुक्ल यजुर्वेद - 16.28
11. " "- 16.29
12. निरूक्त -12.25
13. ऋग्वेद - 2.33.9
14. " - 2.33.7
15. " - 1.43.4
16. अथर्ववेद - 2.27.6
17. शुक्ल यजुर्वेद - 16.1
18. " - 19.82
19. " - 16.41
20. " - 3.60
21. अथर्ववेद - 6.51.1
22. " - 6.90.1
23. " - 3.22.2
24. सायण्यभाय ऋग्वेद - 11.2.12
25. श्वेताश्वतरोपनिाद् - 3.2

विश्व के प्रमुख शिव मंदिर

डा0 रंजीता

(संगीत विभागाध्य)

राजकीय महिला महाविद्यालय, गुलज़ारबाग, पटना-7

किंवदन्तियों के अनुसार इस संसार की रचना करोड़ों वर्ष पहले शिव ने ही की थी। पुराणों के अनुसार भगवान शिव जहाँ-जहाँ प्रकट हुए वहाँ ज्योर्तिलिंगों की स्थापना हुई है। संपूर्ण भारत में सदाशिव बारह स्थानों पर प्रकट हुए। अतः इन बारह स्थानों पर ज्योर्तिलिंगों की स्थापना हुई। जो व्यक्ति इन ज्योर्तिलिंगों का दर्शन कर लेता है। उसकी सारी बाधाएँ समाप्त हो जाती है। मृत्यु के उपरांत उसे धरती पर आवागमन से मुक्ति मिल जाती है अर्थात वह मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है। कहा जाता है कि देव तागण भी इनके दर्शन के लिए धरती पर आते हैं। पूरे भारत के बारह ज्योर्तिलिंगों की चर्चा निम्नांकित श्लोक में की गई है।

सौराष्ट्रे सोमनाथं च, श्रीशैले मल्लिकार्जुनम।
उज्जयिन्याम महाकाले, ओंकारंमलेश्वरम।।
प्रज्जवल्यां वैद्यनाथं च, ढाकिन्याम भीमशंकरम्।
सेतुबंधेतु रामेश्वरम, नागेश्वरम दारूकावने।।
वाराणास्यामतु विश्वेश्वरम, त्र्यम्बकम गौतमी तट।
हिमालयेतु केदारम, घृणेश्वरम च शिवालये।।
एतानि ज्योर्तिलिंगानी, सांयम प्रातः पठेन्नरः।
सप्त जन्मकृतम पापम स्मरणेन विनश्यति।।

अर्थात सौराष्ट्र के सोमनाथ, श्रीसेल्लम के मल्लिकार्जुन, उज्जैन के महाकाल, मध्यप्रदेश के ओंकारेश्वर, देव घर के वैद्यनाथ, ढाका अर्थात महाराष्ट्रा के भीमशंकर, तमिलनाडु के रामेश्वरम, गुजरात के नागेश्वरम वाराणसी के विश्वेश्वरम, महाराष्ट्र के गौतमी तट पर स्थित त्र्यम्बकेश्वरम, हिमालय पर स्थित केदारनाथ, महाराष्ट्र के घृणेश्वरम ये बारहों ज्योर्तिलिंगों के प्रातः एवं सांयकाल के स्मरण एवं दर्शन से सातों जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं। भक्त उनकी कृपा से मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है। धरती पर उसकी सारी मनोकामना पूर्ण हो जाती है।

1. सोमनाथ मंदिर (गुजरात) - गुजरात के सौराष्ट्र में राष्ट्र का पहला ज्योर्तिलिंग सोमनाथ मंदिर प्रभासनगर से 40 कि0मी0 की दूरी पर स्थापित हैं। शिवपुराण के अनुसार चंद्रमा को प्रजापति दक्ष ने श्राप दिया था। देवताओं एवं चन्द्रमा के प्रार्थना करने पर लोक हित में निस्तेज चन्द्रमा को भगवान शिव ने शुक्लपक्ष से पूर्णिमा तक अमृतवर्षा करने का वरदान दिया था। चंद्रदेव के द्वारा इस

शिव मंदिर अर्थात ज्योर्तिलिंग की स्थापना की गई थी। भक्तगण इसे स्पर्ष नहीं कर सकते। विदेशी आक्रमण के कारण इसका स्वरूप लगातार बदलता रहा है। इसके नजदीक ही प्रभासपट्टन मंदिर है। इंदौर की महारानी अहिल्यावाई के बाद सरदार बल्लभभाई पटेल ने आज़ादी के बाद करोड़ों रुपये खर्च कर इसका पुर्ननिर्माण कराया था। इस ज्योर्तिलिंग के दर्शन मात्र से मनुष्य के करोड़ों पाप कट जाते हैं।

2. मल्मिल्मिल्मिल्लिकार्जुन अर्थात श्रीसेल्लम (आंध्र)– यह स्थान आंध्रप्रदेश के कर्नूल जिले में अवस्थित हैं। यहाँ ज्योर्तिलिंग के साथ भ्रामराम्बा देवी का शक्तिपीठ भी है। ब्रह्मगिरी, विष्णुगिरी एवं रूद्रगिरी इन तीनों पहाड़ों से घिरे स्थान पर पातालगंगा के रूप में उत्तर दिशा की ओर कृष्णावेणी नदी इस

स्थान की मनोरमता एवं पवित्रता बढ़ा ती हैं। कृष्णा नदी के तट पर ऊँचाई में जाकर श्रीसेलम पर्वत पर ये मंदिर स्थित हैं। यहाँ भक्तजन स्वयं भगवान शिव का महाभिषेक कर सकते है। इसका महत्त्व कैलाश पर्वत के समान है। कैलाश के बाद श्रेसेल्लम शिव का प्रिय स्थान है, जहाँ शिव निवास करते हैं। इनके दर्शनमात्र से मनुष्य मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है।

3. महाकालेश्वर (मध्य प्रदेश) - यह मंदिर मध यप्रदेश के धार्मिक नगरी उज्जैन में अवस्थित है। यह एकमात्र दक्षिणमुखी ज्योर्तिलिंग है। इसके पास ही शिप्रा नदी बहती है। महाकालेश्वर मंदिर के ऊपर बारह राशियों के चक्र निर्मित हैं। कृष्ण के गुरू संदीपनी मुनि का आश्रम यहीं था। यहाँ राजा जयसिंह का बनवाया नक्षत्र ग्रह वेदशाला भी है। इस ज्योर्तिलिंग की भस्मआरती पूरे विश्व में प्रसिद्ध है। कहा जाता है, कि इनके दर्शन से व्यक्ति की अकालमृत्यु नहीं होती है।

4. ओंकारेश्वर (मध्यप्रदेश) - ओंकारेश्वर मंदिर मध्यप्रदेश के इन्दौर शहर में स्थित हैं। इसे अमलेश्वर नाम से भी जाना जाता है। नर्मदा नदी यहाँ कावेरी बनकर दो भागों में प्रवाहित हैं। इसके बीच के प्रान्त को शिवपुरी तथा मधान्तपुरी के नाम से भी जाना जाता है। मंदिर जाने के रास्ते में विष्णुपुरी एवं ब्रह्मपुरी नामक दो पहाड़ हैं। इन दोनों के बीच में "कपिलधारा" नाम की एक नदी नर्मदा में मिलती है। यहाँ के पहाड़ों के बीच में नर्मदा नदी से ओम का आकार बनता है। अतः इस ज्योर्तिलिंग को ओंकारेश्वर कहा जाता है।

लोककल्याणार्थ शिव यहाँ प्रणवाकार में ओंकारेश्वर और पार्थिवाकार में परमेश्वर बनकर स्थापित हैं।

5. केदारनाथ (उत्तराखंड) - यह उत्तराखंड के रूद्रप्रयाग जिले में है। हिमालय के केदार शिखर पर यह ज्योर्तिलिंग विराजमान है। इसके पश्चिम में मंदाकिनी नदी के किनारे 'केदारनाथस्वामी', पूर ब में अलकनन्दा नदी के किनारे 'बद्रीनारायण स्वामी' विराजमान है। ये नदियाँ रूद्रप्रयाग से मिलकर कुछ दूर प्रवाहित होकर देव प्रयाग के पास भगीरथी नदी में मिल जाती है। इस मंदिर का वर्णण शिवपुराण एवं स्कंदपुराण में भी मिलता है। यह तीर्थ स्थल बद्रीनाथधाम के मार्ग में पड़ता है। लोककथाओं के अनुसार भगवान शिव को यह स्थान बहुत ही प्रिय है। यहाँ लाखों की संख्या में दर्शनार्थी भक्तों की भीड़ रहती है।

6. भीमाशंकर (महाराष्ट्र) - यह ज्योर्तिलिंग महाराष्ट्र के पुणे जिले में सह्याद्रि नामक पर्वत पर स्थित है। भगवान शिव ने यहाँ भीम नाम राक्षस को भस्म किया था। यहीं पास में एक नदी बहती है, जिसे भीमा नदी के नाम से जाना जाता है। यह नदी शिवलिंग के पास से प्रवाहित होती है। भगवान शिव यहाँ सभी भक्तों पर कृपा बरसाते है। किंव दन्तियों के अनुसार प्रातः सूर्योदय के बाद इस ज्योर्तिलिंग के दर्शन करने वाले भक्तों के सातों जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं।

7. काशी विश्वनाथ (वाराणसी) - उत्तरप्रदेश के काशी में यह ज्योर्तिलिंग स्थापित हैं। ये संसार के नाथ (पिता) के रूप में यहाँ पूजे जाते हैं। कहा जाता है कि प्रलय आने पर भी यह स्थान नष्ट नहीं होगा। यह नगर शिवशंकर के त्रिशूल पर बसा है। इसकी रक्षा स्वयं शिव करते है। हिन्दु ओं का यह एक बड़ा तीर्थस्थल है। प्राचीन काल से बार-बार आक्रमण होते रहने के बाद भी आज तक शिव ज्योर्तिलिंग स्वर्णदिवालय के रूप में विराजित हो समस्त संसार की रक्षा करते हैं। इस क्षेत्र के पालक आदि भैरव माने जाते हैं।

8. त्र्यम्बकेश्वर (महाराष्ट्र) - यह मंदिर महाराष्ट्र के नासिक जिले में गोदावरी नदी के पास स्थित है। शिवजी का एक नाम त्र्यंम्बकेश्वर भी है। उन्ही के नाम पर इस ज्योर्तिलिंग का नाम त्र्यंम्बकेश्वर पड़ा है। यही पास में ब्रह्मगिरी पर्वत है, यही गोदावरी का उदगम स्थल है। शिवजी ने यहीं गौतम ऋषि को

दर्शन दिया था। जिस प्रकार भगीरथ के तप से गंगा पृथ्वी पर आ बसी। उसी प्रकार गौत म ऋषि के तप से गोदावरी का आगमन अकाल के निवारण के लिए हुआ। ये गौतमी नाम से भी जानी

जाती है। इसी क्षेत्र में पंचवटी भी हैं। जहाँ लक्ष्मणजी ने शूर्पनखा की नाक काटी थी। रावणासुर ने सीता का हरण इसी प्रांत में किया था। गोदावरी नदी और गौतम ऋषि के प्रार्थना पर शिव यहाँ ज्योर्तिलिंग के रूप में स्थापित हुए।

9. वैद्यनाथ (देव घर) - यह मंदिर झारखंड के देवघर जिले के संथालपरगना, दुमका क्षेत्र में स्थित है। धर्मग्रंथों के अनुसार इस ज्योर्तिलिंग की स्थापना लंकापति रावण ने की थी। इस स्थल को देव ताओं का घर माना जाता है। इसे देव घर के नाम से भी जाना जाता है। इसे कामनालिंग भी कहा जाता है। इनके दर्शनार्थी प्रत्येक वर्ष सावन महीने में कॉवर ले सुल्तानगंज से जल ले कर उन पर अर्पित कर मनोवांछित वर पाते हैं।

10. नागेश्वरम् (गुजरात) - यह मंदिर गुजरात में द्वारकापुरी से 17 कि0मी0 पर स्थित है। यह स्थान गोमती नदी एवं अरेबिया सागर के संगम स्थान पर है। इस ज्योर्तिलिंग के श्रद्धापूर्वक दर्शन से सारी मनोकामनाएँ पूरी होती है। शिव का एक नाम नागेश्वर भी हैं। वे गले में नागों की माला पहनते हैं इसी कारण इस ज्योर्तिलिंग का नाम 'नागेश्वरम' अर्थात नागों के ईश्वर पड़ा है। भगवान श्री कृष्ण का द्वारिकानगर इसी दारूका वन में था। यह मंदिर बारह ज्योर्तिलिंगों में सबसे छोटी है। इनके दर्शन से मनुष्य के सभी रोग-शोक मिट जाते हैं।

11. रामेश्वरम (तमिलनाडु) - यह दक्षिण में सागर किनारे तमिलनाडु के रामनाथपुरम जिले में स्थित है। जब श्रीराम लंका पर चढ़ा ई कर सीता को रावण से मुक्त कराने जा रहे थे। तब उन्होने भगवान शिव को अपने हाथों से प्रतिष्ठित कर उनकी पूजा-अर्चना की थी। यहाँ से श्रीलंका तक जाने के लिए वानरों ने पुल बनाया था। श्रीराम भगवान शिव को अपना इष्टदेव मानते थे। अतः वे राम के ईश्वर थे। इसलिए इस ज्योर्तिलिंग का नाम रामेश्वरम पड़ा। भक्तगण गुजारात के सोमनाथ ज्योर्तिलिंग के समान इन्हे भी स्पर्श नहीं कर सकते। इनके दर्शन मात्र से भक्तों की मारी मनोकामनाएँ पूर्ण होता है।

12. घृणेश्वर (महाराष्ट्र) - महाराष्ट्र के संभाजी नगर में दौलताबाद के पास यह मंदिर अवस्थित है। यह बौद्ध भिक्षुओं द्वारा निर्मित है। यह 'विशाल' देश के नाम से प्रसिद्ध 'मोक्ष' का केन्द्र है। यहाँ संतान चाहने वाले इस ज्योर्तिलिंग का दर्शन कर मनोवांछित फल पाते हैं। एलोरा की प्रसिद्ध गुफाएँ इसी स्थान के पास है।

भारतवर्ष में स्थापित इन बारहों ज्योर्तिलिंगों में समानता देखने को मिलती है, कि ये सभी ज्योर्तिलिंग 79 डिग्री की विषुवत रेखा पर समान ऊँचाई पर स्थित है। यह एक मुखद आश्चर्य ही है।

जैसा कि विदित है, भगवान शिव ने ही इस संसार की सृष्टि की है। उनके मंदिर पूरे विश्व में हैं। इन सभी स्थानों पर उनकी पूर्जा अर्चना बड़े ही श्रद्धा से की जाती है। जिनमें से कुछ मंदिरों की चर्चा की जा रही है।

1. शिवा हिन्दू मंदिर जुइदोस्त (एम्सटर्डम) - यह मंदिर आम जनों के लिए 2011 में खुला। ये एम्सटर्डम में 4000 वर्गमीटर क्षेत्र में फैला हुआ है। यहाँ गणेश, दुर्गा, हनुमान की मूर्ति भी हैं। भगवान शिव यहाँ पंचमुखी शिवलिंग रूप में विराजमान है।

2. अरूल्मिगु श्रीराजा कलिअम्मन मंदिर (मलेशिया) - जोहरबरू के सुल्तान द्वारा इस शिव मंदिर का निर्माण हुआ था। पहले ये मंदिर बहुत छोटा था। 1922 ई0 में इसका विस्तार कर आम जनों के लिए इसे खोल दिया गया है। इसमें तीन लाख मोती लगा कर इसकी सजावट की गई है। यहाँ के लोगों को इस मंदिर के प्रति अगाध श्रद्धा एवं प्रेम है।

3. मुन्नेश्वरम् मंदिर (श्रीलंका) - लंका पर चढ़ा ई कर रावण के वद्य के बाद लंका को जीतने के उपरान्त यहाँ सीता के साथ लौटने के दौरान इस मंदिर का निर्माण हुआ। यहाँ कुल पाँच मंदिर हैं। इसमें शिवमंदिर सबसे बड़ा है। आज भी यहाँ शिव एवं शक्ति से जुड़े पर्व-त्योहार यहाँ धूम-धाम से

मनाया जाता है। क्योंकि लंकापति रावण स्वयं एक महान शिवभक्त थे।

4. शिवा टैंम्पल (स्वीटजरलैंड) - इस मंदिर के गर्भगृह में भगवान शिव के नटराज रूप की मूर्ति स्थापित है। यहाँ देवी पार्वती की शक्तिरूपी मूर्ति भी है। शिव से जुड़े त्योहार यहाँ धूमधाम से मनाये जाते हैं।

5. कटसराज मंदिर पाकिस्तान - पाकिस्तान के चगुआल गाँव से 40 कि0मी0 दूर कटस की पहाड़ी पर ये मंदिर स्थापित हैं। यहाँ से महाभारत काल के पांडवों की कई कथाएँ जुड़ी है। सती की मृत्यु के बाद शिव के रोने से उनके आँसूओं से बना एक कुंड भी यहाँ मिलता है। यह त्रेतायुग में भी था। जिसे 'कटास कुंड' के नाम से जाना जाता है।

6. शिवा विष्णु मंदिर (आस्ट्रेलिया) मेलबर्न - इस मंदिर को 1987 ई0 में भगवान शिव और विष्णु को समर्पित किया गया है। इसका उदघाटन कांचीपुरम एवं श्रीलंका के दस पुजारियों ने किया था। इस मंदिर की वास्तुकला हिन्दू और आस्ट्रेलिया परंपरा का अच्छा उदाहरण है। यहाँ अन्य हिन्दू देवी-देव ताओं की भी पूजा-अर्चना होती है।

7. शिवा मंदिर ऑकलैंड (न्यूजीलैंड) - इस मंदिर की स्थापना का मुख्य उद्धेश्य लोगों के बीच हिन्दू धर्म में आस्था जागृत करना था। इसे 2004 में भक्तों के लिए खोला गया। इसका निर्माण आचार्य महामंडलेश्वर स्वामी शिवेन्द्र एवं यज्ञबाबा के मार्गदर्शन में हिन्दू शास्त्रों के अनुसार किया गया था। यहाँ शिव नंदेश्वर शिवलिंग के रूप में स्थापित है।

8. शिवा विष्णु मंदिर लिवेरमोरे (कैलिफोर्निया) - यह मंदिर कैलिफोर्निया में स्थापित इस क्षेत्र का सबसे बड़ा हिन्दू मंदिर है। यह उत्तर और दक्षिण के वास्तुकला का मिश्रित उत्कृष्ट नमूना है। यहाँ शिव, लक्ष्मी, अ य्यप्पा, गणेश, दुर्गा की मूर्तियाँ स्थापित है। 1985 ई0 में ये मूर्तियाँ तमिलनाडु सरकार द्वारा दान में दी गई थी।

9. पशुपतिनाथ मंदिर काठमांडू (नेपाल) - इस मंदिर में संसार के समस्त जीवों के भगवान अर्थात पशुपतिनाथ के रूप में शिव की पूजा की जाती है। इसका निर्माण 11वीं सदी में किया गया था। पुनः 17वीं सदी में इसका पुर्ननिर्माण हुआ। यहाँ शिवजी की पाँच मुख वाली मूर्ति है। उन तक पहुँचने के लिए चाँदी के चार दरवाजे भी है। यह मंदिर नेपाली और हिन्दू वास्तुकला का वेजोड़ नमूना है।

10. प्रम्बानन् मंदिर मंदिर मंदिर मंदिर जावा (इंडोनेशिया) - यह प्राचीन खुबसूर त मंदिर 10वीं शताब्दि में बना है। यह शहर से 17 कि0मी0 की दूरी पर स्थापित है। यह मंदिर हिन्दू संस् कृति एवं हिन्दू देवी देवताओं को समर्पित है।

11. कैलाश महादेव मंदिर (नेपाल) - यह मंदिर नेपाल के चित्तपोल में स्थापित है। यहाँ शिव की मूर्ति 143 फीट ऊँची है। यह दुनियाँ की सबसे ऊँची मूर्ति मानी जाती है। इस मूर्ति के निर्माण में 11 करोड़ का खर्च आया था।

12. मंगल महादेव मंदिर (मॉरीशश) - इस मंदिर के प्रांगण को मॉरीशश का सबसे पवित्र जगह माना जाता है। यह एक झील के किनारे निर्मित है। इसकी ऊँचाई 108 फीट है। यहाँ के लोग इस मंदिर के प्रति अगाध श्रद्धा रखते हैं।

इस प्रकार हम पाते हैं कि शिव पूरे विश्व में गुरू के रूप में व्याप्त हैं और पूजे जाते हैं। उन्हें ही समस्त ब्रह्माण्ड का रचयिता और संहारक भी माना जाता है।

Gurbani Sangeet and Society

Jasmeet Kaur

*(***Asstt. Professor Music Vocal***)*

Govt. College for Women, Parade, Jammu

ABSTRACT

Every move of Indian music has progressed with every step of spirituality, together with movements or say that one has remained with another. The basic premise of various cultures settled in India and the different cultures developed in them is spirituality. In the medieval period the voice created by Sikh Gurus came forward, which is known as Gurbani. In philosophical terms, this entire literature is the compositions written by intellectuals, by which all the circumstances of the past are squeezed, according to the prevailing conditions of that time, and pathway to the successful life was shown. Gurbani, tried to eliminate evils and darkness prevailing in the society through music. Music, which can easily reach to many people at the same time. Through it, itself the precious words of Gurus and devotees have been transported to the general public.

Keywords:

(i) Gurbani (ii) Compositions (iii) Pathway (iv) Squeezed (v) Premise

GURBANI

गुर जहाज़ खेवट गुरु, गुर बिन तरिया न कोए।
गुर प्रसादि प्रभु पाईए, गुर बिन मुक्ति न होया।

The word Gurbani is made by adding two words Guru and Bani. Guru or Gur means one who gives instructions or shows the right path. Bani means words spoken by the gurus, in the form of prose or verse, which can lead or guide the world on the right path. Such written or spoken words are known as Gurbani.

MUSIC

Music essentially is a combination of ***Gayan, Vadan and Nritya*** . It is made by rhythm and ***Swar***, which are both the wheels of musical chariot.

It is well known to all that Indian Music was born in the age of Vedas or ***Vedic Yuga***. Our saints started the first development of ***SAAMGAAN*** which lead to the development of Indian Music.

According to **Vasudev Sharan Aggarwal** " If ***Vedic Saamgaan*** is considered to be the first age of the development of Indian Music then ***Gandharva Upveda*** must be the considered as the second age or ***yuga*** of the development of music" [(2)].

1. Guru Granth Sahib – Guru Ramdas Ji - Page : 1409
2. NIbhandh Sangeet- Lekh- Bhartiya Sangeet Ki Pracheen Parampara Page: 163 : By Aggarwal V.S.

In every era of development and on every step Indian Music and spirituality are bound together. The dedication and unshakable feeling to God is devotion. The basic premise of different cultures settled in India and the different cultures developed in them is spirituality.

India's soil is the land of a ***Dharama***. Its ideology has been ideal for others and people's welfare. Every particle here has the soul of ***Rama, Krishna, Buddha, Mahavira, Nanak and the list goes on***. Nearly all the states in North India were well off. It is also a truth that most of the attacks by foreign invaders were in this part of India, which had a lot of impact on the life here than in any other part of India.

HISTORY OF GURBANI

In the medieval period, there was a period of oppression and ignorance. Humanity came down to the movements of animals, trapped in the maze of darkness, sin and crime. In the kingdom and society, misdeeds and oppressions were happening on humanity. When goodness and religion were being attacked and evil was spreading, public condition reached a miserable state.

The era of Mughals (1521 A.D. to 1707 A.D.) is very significant in the Punjabi Literature, that is why it is also known as the golden era of Punjabi Literature. The literature of this era is known for its greatness, completeness and is for all. The unique compositions of great saints like of Sikhs ***Guru Nanak Dev Ji, Guru Arjun Dev Ji, Guru Ramdas Ji, Guru Amardas Ji, Guru Gobind Singh Ji, Bhai Gurudas Ji,*** were the ideological. On the basis of metaphorical maturity and Jagruti aspect of their work, we separate this period from the rest of the period. The custom of ***kirtan*** and ***satsang*** brought the spiritual literature to the social field.

The best form of composition in this period is the composition by Sikh Gurus.

In this period, the voice created by the Sikh Gurus came out in the form of Guru Granth Sahib. In philosophical terms, all the literature is a precious word made by intellectuals, by which all the circumstances of the past were squeezed and according to the new circumstances of that time, a pathway, to the successful life was shown. The contribution of the *gurus* in literary works is priceless and respectable. Gurus had gathered social and spiritual powers and people raised their voice against the atrocities of the then rulers. Gurus enlightened the spirits of people by Gurbani music and social gathering for two centuries.

ABOUT GURBANI

Dharam Granth of the Sikh Community is **"Sh. Guru Granth Sahib"**. Believing in the glory of the gurus, and accepting the words and speech they have created as the only means of salvation, is the religion of the Sikh. *Karam Kand* is not given much importance in Sikh Dharam, but only the words written in the Guru Granth Sahib are valued. This ideology of Guru Nanak Dev ji and the other ten gurus has been called as Gurbani.

Guru Granth Sahib is known to be the first written text of the Sikhs, that is why it is also known as their ***Aadi Granth***. In the beginning of the

seventeenth century, the fifth Guru Arjun Dev Ji started composing the work on Granth Sahib. Guru Arjun Dev Ji kept composing his words and also gathered the sermons of the previous Gurus. In the end, in 1601 AD, after seeing the beautiful secluded place of Ramsar in Amritsar, he started writing "Sh. Guru Granth Sahib" by the hands of famous scholar Bhai Gurdas Ji of that time. And in 1604 A.D., when the Granth sahib was completed, it was established in Harmandir Sahib (Amritsar).

Guru Arjun Dev Ji compiled the Gurbani in a very good manner in Granth Sahib. Keeping in mind the religious and social goals, it is the first great text to be edited with special literary make-up.

In the medieval times the condition of Punjab was so bad that people had to endure all kinds of injustice. Looking at the call of time and the prevalwnt darkness, at that time there was a need of a great man who could remove the darkness by its light as, Moon does to ***Amavasya*** and who can eradicate the darkness of ignorance through his teachings. In such a situation, Guru Nanak Dev Ji brought a new way in the form of 'Gurbani' by contemplating all the religions.

While we see the presentation of the Gurbani, Guru Ji presented themselves in a feminine form and presented "***Khasam Ki Vaani***" in his form as "***Khasam ki Taad"i*** and see himself as a shayar, who have to present "Khasam ki Baani" as "Taadi".

The entire Gurbani is based on Ragas. There are a total of 31 ragas, and these ragas also have more sub-ragas in them. The Gurus believed that ragas concentrates the mind and thus making a deep impact on the mind of a person. As the thoughts from the language are expressed by someone, in the same way, the use of raga is used to express the inner feelings of the mind. They believed that ignorance only made the music as an ode of enjoyment for the people, whereas Raagas can evict malice in one's mind and by continuous practice, the mind becomes pure and mixes itself with the divine, by which a good society can be created.

The Japuji Sahib written in Gurbani is known as the key of Gurbani. The literary affinity of Guru Ji can be seen from it that he preached respect and equality for all religions.

The third guru, Guru Amar Das Ji's literature is replete with graciousness, virtuousness and serenity. He developed the "*Manjhi System*" for the promotion and development of Gurbani music. The person who lives a spiritual & pious life, was used to be appointed to carry the message of the Gurus to the society is known as "***Manjhi***".

Gurbani music by the gurus denounced the evils prevailing in the society and made people aware of these. They also opposed the outer appearance and show off. Gurus taught the householders to remain untouched from evils, while living in the society having evils like casteism, untouchabilty etc. By giving many such examples they gave the society message of humanity, equality and brotherhood by showing them mirror of truth, through Gurbaani.

The Gurus also denied the custom of Sati (*Sati Pratha*) and said that both men and women are equal.

Gurbani music is compiled by the sermons of saints from different religions all over.

The condition of the caste of *Shudras* (low caste) in society was very deplorable. They used to hang a bell in their neck in the darkness, so that people of higher castes could not have their shadow on them and keep away from these Shudras. They were not allowed to go to the temples. The rituals imposed in the middle class society were also very bad and the middle class was very fed up with these rituals. They had to perform about 40 kinds of rites. From birth to death, the poor middle/ low class people were lying in the midst of these customs.

The condition of women in society was also not good and she was treated like the Shudras. Looking at this condition of the woman, Guru Nanak Ji said that only a woman can give birth to Kings and great personalities, she is the one who helps in carrying the human race. Men and women are two wheels of a cart (household); both the wheels are equally necessary to carry the cart forward. He gave equal status to men and women of his times and therefore wished to stop hatred towards the women folk.

At that time, two religions were popular in the country i.e. Islam and Hinduism. Islam was the religion of the rulers of that time and therefore it was the dominant religion. Government officials and *Dharama* Contractors like Maulvis or Mullahs used to popularise Islaam by all means even by hook or crook. Casteism prevalent in the Hindu religion also gave a push to the spread of Islam.

The Gurus through Gurbani taught in a simple language and manner the art of living a life of simplicity, dedication and hardwork; sharing and caring irrespective of cast, creed, sex and religion.

ON WOMEN FOLK

In Gurbani, Guru Nanak Dev Ji has compeered these lines in ***Raag Assa*** keeping the women folk in his mind.

भंड जम्मिए, भंड नीम्मिये, भंड मंगन विहाहु।
भंडो होवै दोस्ती, भंडो चलै राहु।।
भंड मुआ भंड भालिये, भंड होवे बंदाण।
सो किउ मंदा अखिये जिस जम्मे राजान।।

(वार आसा पहला, 20 पृष्ठ - 437)

MEANING

Guru Ji glorifies the status of a woman by comparing her to a creator (***God***); as she gives birth to a child, nurtures the child like mother nature. She performs all roles in a man's life like that of a mother, sister, wife, and daughter. The process of creation would be incomplete without her. Guru Ji further says that how a man can be having a prejudiced notion about women.

SHAGUN - APSHAGUN

सगुन अपसगुन तिस कउ लागहि जिस चीति न आवे॥

(आसा-5, पदा-18, पृष्ठ-401)

On the omen and ostracism, Guru Sahib said that, it is for those people, who do not remember the ultimate Father of all to whom we know as the God.

SHRADDH

जीवत पीतर न मानै कोऊ मुएँ सिराद कराही।
पीतर भी बपुर कहु किउ पावहि कउआ कूकर खाही॥
(गउड़ी बैरागन, कबीर, पदा - 45, पृष्ठ - 332)

While taking a look at Shraddha, this time Kabirji says that the parents are not looked after well for the life throughout and after their death, Shradh kriya is done. The crow is given food in Shraddha. If you have to do it, just take care of your parents, while they are alive, so that they can bless you.

SOOTAK

जेकर सूतक मनअये सबको सूतक होये।
गोहै अतै लकड़ी अंदर कीड़ा होये।।
(वार आसा, 1(18), पृष्ठ - 473)

Guru ji says very well about the *sutak*. Sutak is a type of illusion. According to this, if a child is born in a house or someone has died or mourned in the house, then it is considered a *yarn* for a few days. In this way, even people refrain from eating food in those households where *sutak* has happened.

Guruji says that if death or life, all this is a *sutak*, then people shall stop the use of wood and cow dung, which is burnt in the stove for making meals or also used in *pooja*. Because wood and cow dung are full of insects, then they should not be burnt.

CONCLUSION

Gurbani is completely musical. Being based on Raaga, it has the ability to concentrate one's mind in it, the gurus brought the spiritual and social awakening in the society by the Gurbani. Our society in those medieval times was prone to evil, and in this process society was deteriorating instead of making progress. Gurus through Gurbani made the masses aware about the follies of the society and thus brought social and spiritual changes in the society. Gurbani, after so many decades, still have such microscopic elements in it, that will guide society in the many decades to come. Gurbani music composed by Gurus is enriched with quality music and literature to bring together all religions, to end class distinction. Based on different ragas and due to its distinct and original characteristics, the compositions of Gurbani have their own distinct and special place in the society and will continue to be so.

REFERENCE BOOKS

1. Guru Granth Sahib –Guru Ramdas Ji– **Page : 1409 (Singh C. , Singh J. , Bazaar Mai Sewa, Amritsar)**
2. Nibhandh Sangeet - Lekh – Bhartiya Sangeet Ki Pracheen Parampara **(Aggarwal S. V., Sangeet Karyalaya- Haathras) Page : 163**
3. Punjabi Sahitya Di Utpatti Te Vikas **Page : 71 (Dr. Laamba. S. G., Kasel. S. K., Singh. P., Singh. B. T., Lahore Book Shop, Lajpat Rai Market Society, Ludhiana)**
4. Gurmati Sangeet Ank – Prabandh Te Prasaar **Page : 41** (January - February1997 , Garg M., Sangeet Karyalaya- Haathras)
5. Bhartiya Sangeet Ki Utpatti Te Vikas– **Page : 32** (Babra S. J., A . B . S. Publications, Modern Market, Jalandhar)
6. Punjabi sahitya Ki Utpatti Te Vikas **Page : 80, 81 ((Dr. Laamba. S. G., Kasel. S. K., Singh. P., Singh. B. T., Lahore Book Shop, Lajpat Rai Market Society, Ludhiana)**
7. Guru Granth Sahib **Page : 473, 401** (Singh C. , Singh J. , Bazaar Mai Sewa, Amritsar)

भारतीय संगीत और शिव शक्तिः एक विश्लेष्णात्मक अध्ययन

डॉ. हर्षित वैयर

सहायक आचार्य, संगीत विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

भारतीय संस्कृति में आदि शक्ति के रूप में नारी की उपासना की गई। जब हम बात करते है शिव शक्ति की तो हमारे मस्तिष्क में अर्द्धनारी नटेश्वर का का ध्यान आता है, अर्थात शिव पार्वती। नारीत्व में देवत्व के दर्शन करने की महान परम्परा केवल भारत में ही नही अपितु सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है। शिव पुराण के अनुसार शिवक्त शक्ति का संयोग ही परमात्मा है शिव की जो पराशक्ति है उससे चित्त शक्ति प्रकट होती है चित्त शक्ति से आनन्द शक्ति का प्रादुर्भाव होता है, आनन्द शक्ति से इच्छा शक्ति का उद्भव हुआ इच्छा शक्ति से ज्ञान शक्ति और ज्ञान शक्ति से पांचवी क्रिया शक्ति प्रकट हुई उन्हीं से निर्वृति आदि कलाएं उत्पन्न हुई है1। जब हम संगीत शिव शक्ति की बात करते है तो हम पहले यह जान ले कि, संगीत क्या है?

शिव शक्ति क्या है?

सर्वसमष्टि का जो आत्म है, उसी का नाम विराट है और पृथ्वी तल से लेकर क्रमशः शिव तत्व तक जो तत्वों का समुदाय है वही ब्रह्मण्ड है। वहीं क्रमशः तत्व समूह है लीन होता हुआ अंततोगत्वा सबके जीवन भूत चेतन्यमय परमेश्वर में ही लय को प्राप्त होता है और सृष्टि काल में फिर शक्ति द्वारा शिव से निकल कर स्थूल प्रपंच के रूप में प्रलय काल पर्यन्त सुखपूर्वक स्थित रहता है। शिव से ईशान उत्पन्न हुए है, ईशान से तत्पुरूष का प्रादुर्भाव हुआ है। तत्पुरूष से अघोर का, अघोर से वामदेव का और वामदेव से सघोजात का प्राकट्य हुआ है। इस आदि अक्षर प्रणव से मूलभूत 5 स्वर और 33 व्यंजन के रूप में 38 अक्षरों का प्रादुर्भाव हुआ है।

'गीतं वाद्यं तथा नृत्य त्रयं संगीत मुच्यते'

अर्थात गायन वादन तथा नृत्य तीनों विधा मिलकर संगीत कहलाता है। संगीत शब्द में व्यक्तिगत तथा समूहगत दोनों विधाओं की अभिव्यजंना स्पष्ट है। इसी कारण व्यक्तिगत गीत वादन एवं नर्तन के साथ समूह गान, समूह वादन तथा समूह नर्तन का समावेश इसके अन्तर्गत होता है। इसी परिभाषा का अनुसरण प्राचीन से लेकर आधुनिक तक बराबर पाया जाता है।[2]

संगीत की उत्पत्ति कब व कैसे हुई इस सन्दर्भ में विभिन्न मत और किंवदतिया प्रचलित है। संगीत की उत्पत्ति आरम्भ में वेदो के निर्माता ब्रह्मजी द्वारा हुई। ब्रह्मजी ने यह कला शिवजी को दी और शिवजी के द्वारा देवी सरस्वती को प्राप्त हुई। सरस्वती को इसलिए ही 'वीणा पुस्तक धारणी' कहकर संगीत एवं साहित्य की अधिष्ठात्री माना है। सरस्वती जी से नारदजी ने यह कला स्वर्ग गंधर्व किन्नर और अप्सराओं को यह शिक्षा दी। वहा से भरत नारद हनुमान आदि ऋषि संगीत कलाओं में

पारंगत होकर पृथ्वी यानी भू लोक में संगीत कला के प्रचारार्थ अवत्तीर्ण हुए3।

पुराविधो के अनुसार संगीत कला तथा शास्त्र का उद्भव स्वयं भू परमेश्वर से हुआ। भारतीय परम्परा के अनुसार नटराज शिव नृत्य कला के आदि स्त्रोत है तथा भगवती सरस्वती गीत तथा वाद्य कला की प्रवृतिका है। नाट्य शास्त्र के अनुसार गधर्व के तत्वों को समाहित करने वाला नाट्य वेध स्वयं ब्रह्म की रचना है। नृत्य कला का ताण्डव तथा लास्य रूप भगवान शिव तथा पार्वती की देन माना जाता है।

शिव प्रदोष स्त्रोत में लिखा है कि, जगत की जननी गौरी को स्वर्ण सिंहासन पर बैठा कर प्रदोष के समय शूलपाणि शिव ने नृत्य करने की इच्छा प्रकट की इस अवसर पर सब देवता उनको घेर कर खडे हो गये और उनका स्तुती गान करने लगे। सरस्वती ने वीणा, इन्द्र ने वेणु, तथाा ब्रह्म ने करताल, बजाना आरम्भ किया। लक्ष्मी जी गाने लगी और स्वयं विष्णु भगवान मृदंग बजाने लगे। इस नृत्यमय संगीतोत्सव को देखने के लिये गंधर्व, यक्ष, पतंग, उरग, सिद्ध, साध्य, विधाधर देवता अप्सराए आदि सभी उपस्थित थे4।

शिव विश्वास है तो शक्ति श्रद्धा। तांत्रिक सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि का निर्माण शिव और शक्ति के संयोग का परिणाम है। दोनों का संयोग ही नाद का मूल कारण बताया गया है5। रागध्यान परम्परा में

शिव शक्ति समायोगद्रागाणां सम्भवो भवेत्...

कहकर रागों की उत्पत्ति का आधार माना गया है। हमारे राग माला चित्रों में कई रागों के चित्र का ध्यान भगवान शिव और शक्ति तथा इनके प्रतीक चिन्हों के रूप में आधारित है। जैसे - भैरव, शंकरा, आसावरी इत्यादि।

एक किवंदती के अनुसार पार्वती जी की शयन मुद्रा को देखकर शिवजी ने उनके अंग प्रत्यगों के आधार पर रूद्रवीणा बनाई और अपने पांच मुख (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण तथा आकाशन्मुख) से पांच रागों की कमशः भैरव, हन्डोल, मेघ, दीपक और श्रीराग प्रकट हुये तथा छठा राग पार्वती के मुख से कौशिक राग उत्पन्न हुआ।

चित्त शक्ति से नाद और आनन्द शक्ति से बिन्दु का प्राकट्य बताया गया है ईच्छा शक्ति से 'म' कार प्रकट हुआ है। ज्ञानशक्ति से पांचवा स्वर 'उ' कार उत्पन्न हुआ और क्रिया शक्ति से 'ऊ' कार की उत्पन्नी हुई। इस प्रकार प्रणर्व ऊ की उत्पत्ति हुई। कहा जाता है कि प्रजापति ने सृष्टि की कामना की। सृष्टि को उत्पन्न करने के लिये उसने तप और श्रम किया। उस ज्ञम और तप से तीनों लोकों की उत्पत्ति हुई। इन तीन लोकों को उसने तपाया तो उनसे तीन तेज अग्नि, वायु और आदित्य उत्पन्न हुए। पुनः इन तीनों को तपाने से तीन वेद ऋग, यर्जु और शाम। फिर तीन व्याह्मतिया उत्पन्न हुई। भूः भुवः और स्वः। इन तीन व्याह्मतियों से जो रस उत्पन्न हुआ वही ओउम था। ओउम को शब्द ब्रह्म, नादब्रह्म या संगीत के आदि तत्व के रूप में माना जाता है6।

नाद साधना में 'ओउम' स्वयं शिव शक्ति का प्रतीक है। शिव का प्रिय आयुद्य वाद्य डमरू जो कि संगीत के चर्म वाद्य श्रेणी के अन्तर्गत आता है। उसे संगीत का प्रथम ताल मापक यंत्र कह सकते है। उसी को काटकर नक्कारा बनाया गया। उसे बड़ा बनाने से ही नौबत व नगाड़ा बना7।

इस प्रकार हम देखते है कि सृष्टि के रचयिता अर्द्धनारी नटेश्वर अर्थात शिव शक्ति संगीत के गायन वादन तथा नृत्य के गायन वादन तथा नृत्य के प्रवृतक रहे है।

तंत्र तथा आगम साहित्य में संगीत और शिव शक्ति

डॉ. अंजलिका शर्मा

सह-आचार्य, संगीत विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

"सत्यम शिवम सुन्दरम"

सत्य नेकी और संदुरता के अन्तःस्थित आदर्शो की उपलब्धि के लिये मानव सदा से प्रयत्नशील रहा है। सत्य की खोज में ही मानव ने धर्म विज्ञान और इतिहास को प्राप्त किया। धर्म शब्द संस्कृत के धृ धातु से बना है जिसका अर्थ है धारण करना अर्थात जो धारण करता है वहीं धर्म है। धारणा धर्य मित्याः धर्म धारयते प्रजाः जो प्रजा (समाज) को बांधता है, जो जोडता है वही धर्म है। परमपरागत रूप से और शाब्दिक उत्पत्ति के दृष्टिकोण से भी धर्म का यही स्वरूप समझा जाता है। का वास्तविक अर्थ ही धारण करना है1।

भारतीय संस्कृति के दीर्घ कालीन इतिहास में धर्म की दो धाराओ का प्रचलन प्राचीन काल से रहा है। 1-वैदिक तथा 2-तान्त्रिक। वैदिक के लिये निगम तथा तान्त्रिक के लिये आगम की संज्ञा प्रादान की गई है। प्रथम धारा का प्रमुख आधार ऋषि मुनियो के चिन्तन पर आधारित वैध तथा उपनिषद आदि ग्रन्थ माने जाते है। द्वितीय धारा की आधारशिला लौकिक मान्यताओ के आधार पर शिव सुत्र, शक्ति सुत्र तथा तान्त्रिक पुराण आदि ग्रन्थ है।

शैवमत या शैव धर्म भारत का प्राणधर्म कहलाता है, यह ईश्वर की प्राप्ति का धर्म है। संगीत के प्रागेतिहासिक कालीन अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि शिव तथा शक्ति की परम्परा का उद्‌गम भारत की प्राचीन सिंधु सभ्यता से सम्बन्ध बताया जाता है। शिव विश्वास है, तो शक्ति श्रद्धा है। वायु पुराण के अन्तर्गत जिस पशुपत योग का वर्णन है, वह इसी परम्परा का अभिन्न अंग है। मार्कण्डेय पुराण में उपलब्ध देवी भागवत इसी आगम सम्प्रदाय का वाहक माना जाता है।

तान्त्रिक सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि का निर्माण शिव तथा शक्तिकी संयोग का ही परिणाम है। और दोनो का संयोग ही नाद का मूल कारण बताया गया है। साधना के अनेक पंथ है। संगीत द्वारा आराध्य की उपासना तंत्रागमों की साधना का अंग है। देवता आराधना में प्रयुक्त संगीत परमार्थ का साधक बताया गया है। जगदगुरू शंकराचार्य के प्रादुर्भाव से पहले भारत में तंत्रयुग प्रवर्तित था। तंत्रों में 'यामल' बहुत पुराना माना जाता है। तान्त्रिक संगीत से देवी की आराधना करते थे। उपासनों के अंत में बली दी जाती थी। बलि के समय विभिन्न वाद्यय यंत्र बजाये जाते थे2।

योग एवं आगम ग्रन्थो में नाद तथा लय दोनों का सर्वाधिक महत्व है। योग ग्रन्थ में लय का वही स्थान है जो हठ योग, राज योग, मन्त्र योग का है। शैवागम में नाद की तीन अवस्था बताई गई है। 1-नाद, 2-आहत नाद, 3-अनाहत नाद3

नाद अर्थात महानाद का उद्‌भव शक्ति से माना गया है। इसी नाद से बिन्दु नाद का आर्विभाव होता है। जो कि समस्त ब्रह्मण्ड में अनाहत नाद के रूप में व्याप्त रहता है। इसी नाद का गद्यपद्यादि वाड.मय आदि में व्यक्त वर्णमूलक रूप आहत कहलाता है। नादानुसंधान लयसिद्धि के लिये परम साधक माना जाता है। लय का अर्थ ध्येय वस्तु से

सम्पूर्ण एकतानता, जो नाद के माध्यम से सहज साध्य मानी जाती है।

नाट्य शास्त्र के अनुसार स्नान, जप, तप आदि साधनो के उपेक्षा संगीत परमार्थ प्रप्ति के लिये अत्यन्त सहायक है। आगमों की यही परम्परा शिव तथा शक्ति की उपासना में प्रस्फुटित हो उठी। भगवान शिव स्वयं संगीताचार्य नटराज है। वे भारतीय नृत्यकला के कला के प्रतिमान है। उनका अर्द्धनारी नटेश्वर का रूप प्राचीन भारतीय कला तथा साहित्य में बहुतायत दिखलाई पडता है। भगवान शिव द्वारा प्रवर्तित ताण्डव एवं लास्य उभय नृत्य प्रकार की जगवर्णित है।

नाट्य के अन्तर्गत नृत्य का प्रयोग शैव परम्परा की देन है। नाट्य शास्त्र में भरत द्वारा एक कथा वर्णित है कि देवताओं ब्रह्मा जी के निर्देशन पर त्रिपुरदाय नामक डिम प्रयोग का निर्माण किया और उसका अभिनय महादेव के समक्ष प्रस्तुत किया। देवताओं के अभिनय कौशल को देखते हुए महादेव जी ने उसमे नाट्य जोडने का सुझाव दिया। ताण्डव नृत्य के प्रर्वतक भगवान स्वयं शिव है और इस तत्व के प्रथम प्रयोक्ता तण्डु है4।

नंदीकेश्वर के अनुसार वाड.मयीन वर्णों की अभिव्यक्ति संगीत मूलक है। उनकी सम्मति में साहित्य तथा संगीत दोनो का स्त्रोत भगवान शिव है। ताण्डव नृत्य के अन्त में नटराज शिव ने अपना डमरू 14 बार निनादित किया। जिससे 14 महेश्वर सूत्रो की उत्पत्ति हुई। नन्दीकेश्वर की अन्यकृति ''रूद्र डमरू भवविवरण'' में इसी कल्पना का विकास पाया जाता है।

पाणिनीय शिक्षा में वर्णो के सम्बन्ध में शम्भुमत का निर्देशन हुआ जो साहित्य में शैवपरम्परा का सकेत करता हैं। मंतगकृत राग बृहदेशी पर शैवागम का प्रभाव स्पष्टतः परिलिक्षित होता है। इनके अनुसार धवनि से वर्ण तथा पद का संयोग होने पर कमशः गान्धर्व का उद्भव होता है और इसका उद्भव मंतग महादेव के मुख से बताते है5।

शिव पुराण, स्कन्द पुराण तथा पदम पुराण में शैवागम का बहुनायव विवरण प्राप्त होता है तथा शैव परम्परा के अन्तर्गत संगीत के महत्वपूर्ण स्थान का विवेचन पाया जाता है। यामलाष्टक तंत्र में संगीत शास्त्र लिखा गया है उसमें 'उड्डीश महामंत्रोदय' में ताल विधान प्रकरण दिया गया है उसमें शंकर की स्तुति है6।

शिव उपासना में संगीत तत्व के गौरव से महाकवि कालीदास भी परिचित है। शिव के प्रबोधन काल पर किन्नर के द्वारा गाये जाने वाले कौशिकराग का उल्लेख कुमार सम्भव में पाया जाता है। मेघदूत में महाकालेश्वर की उपासना के समय संगीत अराधना का उल्लेख भी कालीदास करते है। उपासना के समय देवदासिया नियुक्त की जाती थी। मेघदूत में इस तरह का वर्णित किया गया है7।

शैव वाड़गूमय के रूप में शिव तथा शक्ति को कमशः ताण्डव तथा लास्य का प्रर्वतक माना गया है। दक्षिण की चिदम्बर मंदिर मं शिव तथा शक्ति के युगल नृत्य का चित्र उपलब्ध है। परम्परा के अनुसार यह युगल नृत्य, परस्पर, स्पर्धा कें रूप में किया गया था तथा इसी स्पर्धा के आवेश में अभिभूत होकर नटराज ने ऊर्ध्वताण्डव नामक अभिनव करण का आर्विभाव किया है। प्राचीन तामिल साहित्य में नृत्य कला के प्रर्वतक के रूप में नटराज शिव का गौरवगान हुआ है8।

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते है कि तंत्र तथा आगम साहित्य में संगीत की विभिन्न धाराओं में शिव शक्ति किसी न किसी रूप में सर्वविद्यमान रही है चाहे वह गायन हो, वादन हो शिव और शक्ति संगीत के हर पहलू में निहित है।

देवपुत्र बाल पत्रिका में शिव और शक्ति का चित्रण

शोधार्थी -ज्योति नाहर

हिन्दी विभाग, शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उज्जैन

निर्देशक डॉ. उमा वाजपेयी

हिन्दी विभागाध्यक्ष

शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उज्जैन म.प्र.

देवपुत्र बालपत्रिका में शिव और शक्ति का चित्रण -

हिन्दी बाल साहित्य अपने चरमों उत्कृष्ट पर है बाल साहित्य की रचनाएँ साहित्य की अधिकांश विधाओं में हो रही है परन्तु मेरा मानना है कि बाल पत्रकारिता का क्षेत्र अधिक विकसित एवं समृद्ध है। बाल पत्रिकाएँ रंग-बिरंगी एवं विचित्र सामग्रीयों का समायोजन करते हुए बालक को आकर्षित करने की क्षमता से युक्त है बाल पत्रिकाएँ बालक को केन्द्र में रखकर उसके अनुसार पत्रिका का कलेवर तैयार किया जाता है एवं माता पिता के लिए भी उन्हें उपलब्ध करने में अधिक खर्च नहीं करना पड़ता है।

बाल पत्रिकाएँ भारतेन्दु युग से आज तक निरन्तर प्रकाशित हो रही है इन्हीं पत्रिकाओं में हमारे मध्यप्रदेश की इन्दौर के संवाद नगर से प्रकाशित देवपुत्र बाल पत्रिका का एक विशेष स्थान है, ''यहाँ पत्रिका का प्रारंभ ग्वालियर से सन् 1979 में हुआ इसके प्रथम सम्पादक विश्वनाथ मित्तल कुछ वर्षो के बाद देवपुत्र का प्रकाशन इन्दौर से प्रारंभ हुआ और उसके प्रधान सम्पादक कृष्ण कुमार अष्ठाना एवं उनके मण्डल के द्वारा प्रारम्भ हुआ।'' और देवपुत्र का स्वर्ण युग प्रारम्भ हो गया आज 39 वर्ष पूर्ण होने पर भी यहाँपत्रिका बालकों के मध्य अपना स्थान बनाये रखा है यह उसकी एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है ।

देव पुत्र बाल पत्रिका का सरस्वती शिक्षा परिषद मध्यप्रदेश द्वारा संचालित एवं विद्या भारती से संबंध है इसी कारण हिन्दु धर्म एवं भारतीय संस्कृति का समर्थन हमें पत्रिका में लक्षित होता है। संस्कारो के स्वरुप को भारतीय धर्म एवं संस्कृति को नये-नये दृष्टिकोणों से प्रस्तुत कर यह पत्रिका बालक को अपनी संस्कृति से जोड़े रखती का कार्य करती है हमारी परम्परा संस्कृति एवं सभ्यता के प्रारम्भ में सृष्टिके रचयिता ने एक आदर्श परिवार को स्पष्ट करने के लिये ही शायद शिव पार्वती एवं उनके पुत्र-कार्तिकेय एवं गणेश की रचना की।

शिव और शक्ति ही हमारे सम्मुख लिंग भेद को नकारते हुए समान महत्व का एक विशिष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते है। शिव-शक्ति का समन्वय ही सृष्टि का विकास है। दोनों का समान महत्व है

बालक को अपने संस्कारी एवं उचित मार्गदर्शन के लिए हम शिव-शक्ति को एक आदर्श पिता-माता तो कार्तिकेय एवं गणेश जी को आज्ञापालक संतान के रुप में इस तरह प्रस्तुत करे की बालक उनके जैसा व्यवहार करने लगे इसीलिए देवपुत्र, बाल पत्रिका में अनेक कहानियाँ, कविताओं एवं लेखों के माध्यम से बालक को उचित ज्ञान प्रदान किया जाता है। शिव के अनेक मंदिरों एवं उनके महत्व

पर देव पुत्र में आलेख चित्र सहित वर्णित किये गये ताकि शिव की महत्ता को बालक समझ सके।

''तमिलनाडु के मंदिरों की कलात्मकता' नामक आलेख में 'मीनाक्षी मंदिर', 'रामेश्वरम् मंदिर, 'तंजौर का वृहदीश्वर मंदिर,' 'चिदम्बरम् नटराज मंदिर', 'तिरुच्चिापल्ली का श्री रंगम् मंदिर', 'एकाम्बरनाथ मंदिर, आदि का सचित्र एवं बालक की समझ के अनुसार प्रकाशित हुआ साथ ही दक्षिण भारत की वास्तुकला का जो अनूठा स्वरुप वहाँ के मंदिरों में दिखाई देता है।'' बालको को उसके देखने एवं उसमें अंकित शिव एवं शक्ति की विभिन्न मुद्राएँ उनके स्वरुप को समझने में सहायक सिद्ध हुई।

देवपुत्र में इसी प्रकार से शिव एवं शक्ति के अनेक स्वरूपों जैसे दुर्गा, सती, पार्वती आदि का भी वर्णन प्राप्त होता है। देवपुत्र में कथासत्र नामक स्तम्भ में दादाजी अपने पोते एवं पोती को कथा के माध्यम से धार्मिक प्रसंगों का ज्ञान प्रदान करते है। उसी में शिव एवं शक्ति के बारे में भी वर्णन मिलता है। कथासत्र स्तम्भ में डॉ. देवेनचन्द्र दास 'सुदामा' द्वारा रचना की जाती है। अक्टुबर 2017 के अंक में सती के रूप में शक्ति का वर्णन मिलता है। बालक स्वभाव एवं रुचि के अनुसार सती के जन्म से लेकर उसके अग्नि से भस्म होने तथा शिव के क्रोध का वर्णन भी किया एवं अगले अंक में शिव के वैराग्य का वर्णन एवं शिव को पार्वती के रूप में सती की प्राप्ति का वर्णन भी रोचकता के साथ वर्णित किया है। कथा का कुछ अंश प्रस्तुत है - "सृष्टि के प्रारम्भ के समय के बाद दक्ष नाम का एक प्रजापति अर्थात् राजा ने राज किया था। उनकी सौ बेटियाँ थी। सबसे छोटी बेटी सती का विवाह शिव जी से हुआ था। सती राजा दक्ष की अत्यन्त लाड़ली कन्या थी और दामाद शिवजी को वे कुछ अच्छा पसंद नहीं करते थे। एक बार राजा दक्ष ने एक बड़ा यज्ञ का आयोजन किया। सभी देवताओं को आमंत्रित किया गया परन्तु बेटी सती और दामाद शिव को निमंत्रण नहीं दिया। धूमधाम से यज्ञ का प्रारम्भ हुआ। अपने-अपने विमानों से देवियों के साथ देवतागण जाने लगे। उधर नारद जी आकर देवी सती को पिता के यज्ञ के बारे में सूचना दी। स्त्री पिता के घर जाने के लिए हमेशा उत्साहित होती रहती है। उसमें भी यदि कोई उत्सव हो तो बात ही क्या। सती पिता के घर जाने के लिए आतुर हो गई और पति से अनुमति माँगी। शिवजी ने कहा कि निमंत्रण के बिना वहाँ जाना मंगलदायक नहीं होगा परन्तु सती कुछ भी परवाह न कर चली गई। शिवजी चिन्तित होकर कैलाश में बैठे रहे। सती के साथ नन्दी - भृंगी सहित गण भी चल पड़े। सती पिता के यज्ञ स्थल पर पहुँच गई परन्तु किसी ने उनको आदर सहित स्वागत नहीं किया। केवल इतना ही नहीं पिता दक्ष ने जब देखा तो आग बबूला होकर देवाधिदेव महादेव शिव की निंदा करने लगे और निमंत्रण के बिना यज्ञ स्थल पर पहुँच जाने के कारण सती को भी तिरस्कार करने लगे। पिता ने जब शिवजी का अपमान किया तब सतीजी सह नही पाई और यज्ञ स्थल पर ही योग के द्वारा प्राण त्याग कर दिया। यज्ञ स्थल में हाहाकार मच गया। उस समय शिवजी कैलाश में ध्यान मग्न होकर बैठे थे इतने में नारद जी जाकर सती के प्राण त्याग का समाचार दिया। पत्नी सती की मृत्यु का समाचार सुनकर वे अत्यन्त क्रोधित होकर अपने सिर से एक जट तोड़कर जमीन पर पटक दिया और उससे वीरभद्र नाम का एक गण की उत्पत्ति हुई। वह तुरन्त दक्ष के यज्ञ स्थल पहुँच गया और यज्ञ का विध्वंस कर देता और साथ दक्ष के सिर को तोड़कर यज्ञ कुण्ड में डालकर नष्ट कर देता है और यज्ञ सम्पूर्ण न होने के कारण से संसार का अमंगल होगा, यह विचार कर ब्रह्माजी एवं विष्णु जी ने आकर शिवजी को प्रसन्न किया और यज्ञ सम्पूर्ण कराने का प्रयत्न किया, परन्तु उस यज्ञ का यजमान दक्ष मुण्डविहीन होकर पड़ा था उसके बिना यज्ञ सम्पूर्ण कौन करेगा। ब्रह्मा ने देवताओं के वैध अश्विनी को बुलाया और एक बकरे का सिर संयोजत कर जीवित करने का आदेश दिया। अश्विनी कुमार ने बकरा का सिर संयोजित कर दक्ष को पुनःजीर्वित कर दिया। यज्ञ समाप्त हुआ शिवजी

यज्ञ-स्थल पर पहुँचे और सती के शव के अवशेष को उठा कर शोकोन्मत हो कैलाश आ गये।

मनोरमा - दादाजी! यह बहुत असंभव कथा है कि मरे हुए एक मनुष्य को बकरे का सिर लगाकर जीवित किया।

दादाजी - आजकल चिकित्सा विज्ञान में शरीर का विभिन्न अंग-प्रत्यंग हटाकर पुनः प्रत्यारोपित करते है कि नहीं ?

तीनों हाँ करते है।

दादाजी - तो ? उस अंग में भी शल्य चिकित्सा तथा प्रत्यारोपित करने की व्यवस्था थी।3

इस प्रकार हमें शिव और शक्ति का गाथा को सरल एवं सहज गमय शब्दावली में व्यक्त कर बालक को जगत पिता एवं जगत जननी के महत्व को प्रतिपादित कर सकते है।

शिव एवं शक्ति क्रमशः पुरुष एवं नारी का प्रतिनिधित्व करते हुए इस जगत के मूल तथ्यों को स्पष्ट करते हुए दिखाई देते है। माता-पिता के आदर्श के रूप में बाल साहित्य ने शिव और शक्ति को अंगीकार किया है। क्योंकि सारे अभावों (शिवजी के पास न भवन, न वस्त्र न कोई काम) के साथ जीवनयापन करना श्रेष्ठ व्यक्तित्व को प्राप्त करने की सीख दी। इसी पर देवपुत्र के अगस्त 2017 के अंक में 'बुद्धि बल ही सर्वश्रेष्ठ' कहानी में गणेश जी का माता-पिता की प्रदक्षिणा कर पृथ्वी की प्रदक्षिणा करना सिद्ध कर देता है। बुद्धि बल अधिक महत्वपूर्ण है। कहानी के अंत का अंश - जब सब देवतागण एकत्र हो गए तो ब्रह्मा जी ने निर्णय दिया - "श्रेष्ठता न शरीर बल को दी जा सकती है, न वाहन बल को, श्रद्धा समन्वित बुद्धि बल ही सर्वश्रेष्ठ है। गणेश जी अपने आपको अग्रसर सिद्ध कर चुके है।"4

इस कहानी से बालक में संस्कार आते है कि जब भगवान गणपति बप्पा भी अपने माता-पिता को ही श्रेष्ठ मानते है तो हमें भी अपने माता-पिता का आदर एवं सेवा करना चाहिए। वे हमारी जीवन के आधार बिन्दु है एवं उनकी शुभ कामनाएँ हमारे शुभ-लाभ का कारण है।

देवपुत्र पत्रिका बालक को अपनी भारतीय संस्कृति के अनुसार संस्कारित करने का सफल प्रयत्न करता आ रहा है। तभी यह पत्र एक आज भी बालकों के लिए विचित्र सामग्रियों को प्रस्तुत करता है। शिव और शक्ति के स्वरूप में अनेक बातें है जो बालकों को थोड़ी रहस्यमय लगती परन्तु बालकों की समझ के अनुसार उनका वर्णन बाल साहित्यकार करता है एवं देवपुत्र बाल पत्रिका के सम्पादक मण्डल के द्वारा यह कार्य निपुणता के साथ किया जाता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. हिन्दी बाल पत्रकारिता : उद्‌भव और विकास, डॉ. सुरेन्द्र विक्रम, पृ. 146.
2. देवपुत्र बालपत्रिका 2017 मई अंक पृ. 32-35 तक
3. देवपुत्र बालपत्रिका 2017 अक्टुबर अंक पृ. 35.
4. देवपुत्र बालपत्रिका 2017 अगस्त अंक पृ. 21.

संगीत में शिव शक्ति

मिली वर्मा

शोधार्थी

कथक नृत्य विभाग, इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (छ.ग.)

संगीत शब्द प्राचीन काल से ही प्राप्त होता है। यह सृष्टि प्राचीन है, अथवा जितना प्राचीन मानव संस्कृति का इतिहास है, उतना ही संगीत भी पुराना है। जब भाषा का अस्तित्व नहीं था, तब मानव अपनी आंगिक चेष्टाओं, भंगिमाओं और ध्वनि के उतार-चढ़ाव द्वारा अपने हर्ष, शोक आदि भावों को व्यक्त करता था। इसलिये जितना पुराना भाव है उतना ही पुराना संगीत भी। संगीत शब्द की व्युत्पत्ति- सम्गै+क्त लगाकर संगीत शब्द बना है जिसके अनेक अर्थ प्राप्त होते हैं -

1. सामूहिक गान - बहुत से कण्ठों से मिलकर गाया जाने वाला गान।

2. मधुर गान - विशेषतः वह गायन जो नृत्य और वाद्य यंत्रों के साथ गाया जाये।

3. नृत्य भाव के साथ गाने की कला।

गायन, वादन और नृत्य ये तीनों ही संगीत है। जब स्वर और लय व्यवस्थित रूप धारण करते हैं, तब एक कला का प्रादुर्भाव होता है और इस कला को संगीत कहते हैं। गीत और वाद्य के बिना नृत्य संभव नहीं है।

नृत्य का संगीत के साथ ऐसा घनिष्ट संबंध है कि संगीत अर्थात् गायन, वादन के बिना नृत्य करने की कल्पना भी नहीं की जा सकती, क्योंकि नृत्य में भावों का प्रदर्शन किया जाता है। भाव शब्दों के अर्थ को स्पष्ट करने के लिये बनाये जाते हैं। तथा शब्दों से गीत की रचना होती है। इसलिये कहा भी गया है -

'गीतं वाद्यं तथा नृत्तं त्रयं संङ्गीतमुचयते'।।

नृत्य की उत्पत्ति भगवान शिव द्वारा मानी जाती है। भगवान शिव ने रेचक, अंगहार एवं पिण्डीबन्धों का सृजन कर अपने शिष्य तण्डु मुनि को नृत्य प्रदान किया और गीतकों के साथ सम्बद्ध कर इसके प्रयोग का निर्देश दिया। तण्डु मुनि ने गान और भाण्ड वाद्यों से समन्वित कर इस नृत्त प्रयोग की रचना की, इस कारण वह 'तांडव' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। तथा भगवान शिव को रेचक अंगहारो से युक्त नृत्य करते देख देवी पार्वती ने 'सुकुमार' नृत्य का प्रयोग किया। जिसमें मृदंग, भेरी, वटह, भाण्ड, डिण्डिम, गोमुख, वणव तथा दुर्दर वाद्यों से संगीत की गई और अपने लास्य नृत्य को भरतमुनि को प्रदान किया और बाण की पुत्री ऊषा से यह नृत्य ब्रज तथा सौराष्ट्र तक पहुँचा। इस प्रकार देवी पार्वती ने अभिनय की सृष्टि करते समय लोक में विलासपूर्ण सुकुमार नृत्त का सृजन किया और वह आगे चलकर लास्य के नाम से जाना जाने लगा और भगवान शिव और शक्ति द्वारा तांडव लास्य नृत्य उत्पन्न हुआ।

इस प्रकार शिव-शक्ति को नृत्य का अधिष्ठाता कहा जा सकता है। शिव ने ही नृत्य-नाट्यकला का प्रर्वतन किया है। ऐसी पारंपरिक धारणा है कि शिव आदि नट हैं और उनकी नाट्यमहिमा के प्रति श्रद्धा रखने के लिये उन्हें नटराज कहा जाता है। वैसे देखा जाये तो संपूर्ण ब्रह्मंड ही नटराज की नृत्यशाला है। जब शिव का नृत्य प्रारंभ होता है, तब उनके नृत्य की मधुर झंकार से सारा संसार गतिशील हो जाता है। शास्त्रीय ग्रंथों में नटराज शिव के चार रूप बताये गये हैं उनके नाम हैं - संहार मूर्ति (ध्वंसात्मक

रूप), दक्षिणमूर्ति (शुभरूप), अनुग्रह मूर्ति (वरदायक रूप) और नृत्य मूर्ति (संगीतात्मक रूप) तथा शिव के नृत्य मूर्ति रूप में 108 मुद्राएँ बताई गई हैं। शिव पुराण में उल्लेख है कि महानर्तक शिव नृत्यकला के प्रवर्तक थे- सुरताल के महान ज्ञाता थे। शिव को कहीं-कहीं 'महाभिषेक' भी कहा जाता है। दक्षिण भारत के चिदंबरम मंदिर में जगद्धिदित नटराज की मूर्ति प्रतिष्ठित है जिनका नृत्य पवित्र माना जाता है। ऐसा माना जाता है कि नटराज शिव ने प्रथम बार पृथ्वी पर चिदंबरम मंदिर में ही संध्या समय तांडव नृत्य प्रस्तुत किया था। तांडव नृत्य के सात प्रकार बताये हैं -

1. आनंद तांडव या ललिता तांडव
2. संध्या तांडव
3. त्रिपुर तांडव
4. गौरी तांडव
5. संहार तांडव
6. उमा तांडव
7. कालिका तांडव

नटराज का तांडव नृत्य केवल प्रलय या संहार का नृत्य नहीं है बल्कि सृष्टि और संहार के संतुलन के निमित निरंतर चलने वाला महानृत्य है। उनके डमरू के स्वर से जीव में आत्मा का प्रवेश होता है और पैरों की थाप से धरती अन्न, जल, और फूल-फल देती है। नटराज भगवान शिव का एक विशिष्ट रूप है। भगवान शंकर के नृत्त के बारे में प्राप्त मूर्तियों से यह पता चलता है कि वह अभिनय कला के ज्ञाता थे तथा नृत्त मूर्तियों में सबसे ज्यादा नादान्त मूर्ति का महत्व माना जाता है।

दक्षिण भारत में शिव की नृत्तमूर्तियों की बहुलता देखने को मिलती है। दक्षिण में नटराज की मूर्ति की गणना शिव की नृत्त मूर्तियों में की गई। दक्षिण भारत में शिव की प्रत्येक मुद्रा को अलग तरीके से प्रतिष्ठित किया गया है। शिव को केवल आदि देव ही नहीं कहा गया बल्कि उन्हें महादेव की संज्ञा भी दी गई। पुराणों के अनुसार शिव संहार के देवता है किंतु दक्षिण भारत में उन्हें आनंद का देवता माना गया है। उनके आनंद रूप को साकार करने के ध्येय से दक्षिण में नटराज शिव की केवल अवतारण ही नहीं की गई बल्कि उन्हें नृत्य का आदि प्रवर्तक भी घोषित किया गया है।

शक्ति को देवी कहा गया है और देवी की प्रतिमाओं के भिन्न-भिन्न रूप निर्धारित किये है। देवी प्रतिमाओं में शिव-पत्नी भगवती पार्वती का ही सर्वाधिक विस्तृत रूप देखने को मिलता है। त्रिदेव के रूप में ब्रम्हा, विष्णु और शिव की तीन शक्तियों या देवियों के अनुरूप सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती, दुर्गा या काली के ही 3 प्रधान देवियाँ है।

पुराणों में शिव के बाद शक्ति को आराधना के क्षेत्र में बहुत महत्व दिया गया है। जैसे शिव की अनंत शक्तियाँ उद्घटित करने के लिये शिवपुराण लिखा गया, उसी प्रकार शक्ति की महत्ता को उजागर करने के लिये देवी भागवत पुराण लिखा गया। साथ ही स्कन्ध पुराण में भी देवी के अनेक रूपों का वर्णन किया गया है। देश में शिव के 12 ज्योर्लिंग है और शक्ति के चौबीस पीठ प्रसिद्ध है।

शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप की बात करें तो यह शिव का एक ऐसा रूप है जो शैव और शाक्त धर्म में एकता स्थापित करता है। विष्णु पुराण में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है कि जब ब्रम्हा की टेढ़ी भृकुटी और क्रोध संतप्त ललाट से रूद्र की उत्पत्ति हुई तो उसका आधा शरीर पुरूष का और आधा स्त्री की भाँति था। श्रीमद्भागवत में शिव के लिये कहा गया है उन्होंने प्रीतिवश अपना आधा शरीर पार्वती को समर्पित कर दिया।

शिव की नटराज मूर्ति भारतीय कला का प्रमुख रूप है। तांडव और लास्य बड़ा ही रोचक नृत्य है। तांडव पुरूष प्रधान नृत्य और लास्य स्त्री प्रधान नृत्य है। तांडव नृत्य की बात करें तो यह नृत्य भरतनाट्यम नृत्य में ज्यादा देखने को मिलता है और लास्य कथक नृत्य और ओडिसी नृत्य में ज्यादा देखने को मिलता है।

इस प्रकार शिव और शक्ति अपने आप में ही परिपूर्ण हैं। शिव के बिना शक्ति नहीं और शक्ति के बिना शिव नहीं। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं तथा इन्हीं के द्वारा संगीत की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार यह कहना उचित है कि संगीत में शिव-शक्ति है।

साहित्य में शिव शक्ति

चित्रा

शक्ति शिव की अविभाज्य अंग है। शिव नर के द्योतक है। तो शक्ति नारी की। वे एक दूसरे के पूरक है। शिव के बिना शिव का कोई अस्तित्व ही नहीं है। शिव अकर्ता है। वो संकल्प मात्र करते है, शक्ति संकल्प सिद्धी करती है। शिव सागर के जल के समान है तथा शक्ति लहरों के समान है। लहर है जल का वेग। जल के बिना लहर का क्या अस्तित्व है? और वेग बिना सागर अथवा उसके जल की? यही हैं शिव एवं उनकी शक्ति का सम्बन्ध। और यही शिव शक्ति साहित्य के रूप में भी देखने को मिलती है कई जगह साहित्य में शिव शक्ति का वर्णन किया गया है।

शिव पुराण का सम्बन्ध शैव मत से है। इस पुराण में प्रमुख रूप से शिवभक्ति और शिव महिला का प्रचार-प्रसार किया गया है। प्रायः सभी पुराणों में शिव को त्याग, तपस्या, वात्सल्य तथा करूणा की मूर्ति बताया गया है। कहा गया हैं कि शिव सहज ही प्रसन्न हो जाने वाले एवं मनोवांछित फल देने वाले है। किन्तु, शिव पुराण में शिव के जीवन चरित्र पर प्रकाश डालते हुए उनके रहन-सहन, विवाह और उनके पुत्रों की उत्पत्ति के विषय में विशेष रूप से बताया गया है। 'शक्ति' शब्द संस्कृत व्याकरण के अनुसार 'शक' धातु में 'क्तिन' प्रत्यय जोडने से निष्पन्न होता है, यह शब्द बल, योग्यता, धारिता, सामर्थ्य, ऊर्जा व पराक्रम के अर्थ को अभिद्योपित करता है। शैवमत का संबंध शिव से है ओर शिव वैदिक रूद्र के पार्वती रूप है। कुछ लोग तो इन्हें परमेश्वर भी कहने लगे, पौराणिक शिव के स्वरूप और उपासना से सम्बद्ध बहुत से प्रमुख अंश वैदिक रूद्र के स्वरूप से लिए गये है। वैदिक शैव धर्म का दूसरा बड़ा पक्ष शक्ति पूजा है। पुराणों में वेदोत्तर कालीन शैव धर्म का पूरा विकास हो चुका था। इस साहित्य में शैव धर्म के दार्शनिक और लोक प्रचलित रूप का विकास मिलता है- जिसका चित्र इस प्रकार है।

दार्शनिक

अद्वयवादी (शिव विष्णु का ऐक्य)

आपेक्षिक उत्कर्षवाद

लोक प्रचलित रूप

भयावह कापालिक धर्म

सौम्य

शिव या महादेव हिन्दू धर्म में सबसे महत्त्वपूर्ण देवताओं में से एक है। यह त्रिदेवों में एक देव है। इन्हें देवों के देव भी कहां जाता है। इन्हें भोलेनाथ, शकर, महेश, रूद्र, नीलकठ, गंगाधर के नाम से भी जाना जाता है। तन्त्र साधना में इन्हें भैरव के नाम से भी जाना जाता है। वेदों में इनका नाम रूद्र है। इनकी अर्धांगिनी (शक्ति) का नाम पार्वती है। यह शैवमत के आधार है। इस मत में शिव के साथ शक्ति सर्व रूप में पूजित है। इनके विशय में यह कहा गया है-

सोहति, उतंग, उत्तमंग, ससि संग गंग,
गौरि अरंधग, जो अंनग प्रतिकूल है।
देवन कौ मूल, सेनापति अनुकूल, काँटे
चाम़ सारदूल को, सदा कर त्रिसूल है।।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में अपभ्रंश और लोक-भाशा में शैव काव्य का प्रचुर प्रणयन हुआ। जैन कवि पुश्पदत्त ने अपने 'णयकुमार चरित्र) में शिव द्वारा मदनदहन तथा ब्रह्म के शिरोच्छेद की कथा का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त 'प्राकृत पैंगलम' में ऐसे अनेक स्थल है जहाँ शिव के विराट् स्वरूप का स्वतंत्र रूप से विलक्षण वर्णन उपलब्ध होता है। सिद्ध कवि गुंडरीया और सरहपा आदि ने भी शैव मत से प्रभावित होकर अनेक पद रचे। नाथ पंथ शैवों का ही एक सम्प्रदाय था अतः गोरख की बानियों में सर्वत्र ही शिव शक्ति के सामरस्य एवं असंख्य कलायुक्त शिव को सहस्त्रार में ही देखने का संदेश दिया है। चौदहवीं शताब्दी में मिथिला के महाकवि 'विद्यापति' ने शताधिक शैव गीतों का सृजन किया। भक्तिकाल में मिथिला के कृश्णदास, गोविन्द ठाकुर तथा हरिदास आदि ने स्वतन्त्र रूप से शिव महिमा एवं उनके ऐश्वर्यप्रतिपादक पदों का निर्माण किया। सूफी कवि जायसी ने शैव मत से प्रभावित होकर पद्मावत में अनेक शैव तत्त्वों का प्रतिपादन किया। उन्होनें शिवशक्ति के सभी उपकरणों को मुक्त भाव से स्वीकार किया।

सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की समरसता की बात निश्चय ही भारत के लिए नवीन है। वस्तुतः भारतीय साहित्य की मर्यादा शिवमयता ही है। स्वयं साहित्य शब्द का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ भी यही इंगित करता है कि हित के साथ होने की भावना की साहित्य है। कालिदास प्राचीन और नवीन भारत के कवियों में जो अपना मूर्धन्य स्थान रखते है, उसका कारण कालिदास की वह समग्र शिव शक्ति ही है। शिवशक्ति और शिवमयता में कोई अन्तर नहीं है। दूसरे शब्दों में कहें तो न शिव केवल आध्यात्मिक है, न केवल भौतिक। शिव है, इसका अनुभव प्रत्येक क्षण और सृश्टि के प्रत्येक अणु को हो रहा है और सृश्टि का प्रत्येक अवयव चाहे वह जड़ हो या चेतन निरन्तर उसी शिव-स्थिति को प्राप्त करने के लिए सचेश्ट है। यह चेश्टा ही कालिदास के साहित्य का विशय है। इनकी कृतियाँ मेघदूत, रघुवंश कुमार सम्भव और अभिज्ञान शाकुन्तल आदि में इन्होंनें शिवशक्ति के महत्व को प्रतिपादित किया है।

शिव या रूद्र की उपासना वैदिक काल से ही इस भारत भूमि में प्रचलित है। यजुर्वेद में शतरूद्रीय अध्याय की पर्याप्त प्रसिद्धि है। महाभारत में शैवमतों का वर्णन है। वामन पुराण में शैवों के चार विभिन्न सम्प्रदाय बतलाये गये है- शैव, या शुपत, कालदमन, तथा कापालिक।

शक्ति का अर्थ होता है- परम शिव, ब्रह्म में अपृथक सिद्ध होकर रहने वाला विशेशण। शक्ति विशिश्टाद्वैत मत में जो शक्ति है, उसके सूक्ष्म चिद्चिह शिष्ट शक्ति और स्थूल चिद्चिद्विशिष्ट शक्ति नामक ये दो भेद है। इनमें पहली शक्ति से 'पर शिव का ग्रहण होता है। तथा दूसरी से जीव का। परमात्मा से भिन्न शक्ति और शक्ति से भिन्न परमात्मा नहीं है। अग्नि और तछगत दाहजनक शक्ति की भांति परमात्मा और शक्ति का सर्वधा अभेद है।

शक्ति परशिव ब्रह्म में अत्यन्त गुप्त रीति से रहती है। वीर शैव सिद्धान्त में शिव और शक्ति में अविनाभाव सम्बन्ध (समवाय सम्बन्ध) कहा गया है। जो सम्बन्ध पृथक नहीं किया जा सकता, उसे समवाय- सम्बन्ध कहते है।

शिव की दो शक्तियाँ होती है। - समवायिनी और परिग्रहरूपा। 1. समवायिनी शक्ति चिद्रपा, निर्विकारा और परिणामिनी है, जिसे शक्ति तत्व कहते है। यह परम शिव में नित्य समवेत भाव से रहती है। शिव शक्ति का संबंध तादात्म्य सम्बन्ध है। शक्ति शिव की स्वरूप शक्ति है। 2. परिग्रह शक्ति अचेतन तथा परिणाम शालिनी है। यही बिन्दु कहलाती है जिसके शुद्ध तथा अशुद्ध भेद से

दो रूप होते है। शुद्ध बिन्दु का नाम महामाया और अशुद्ध का नाम माया है। दोनों में अन्तर यही है। कि महामाया सात्विक जगत का उपादान कारण है और माया प्राकृत जगत का उपादान है।

भारतीय धार्मिक जगत में यह परम्परा चलती आयी है कि लोग प्रत्येक तत्व कह जड़ या बीज़ की खोज वेदों में जरूर करते है। उनके अनुसार वेदों में परमेश्वर के वचन संगृहीत है और वे कदापि गलत नहीं स्थापित हो सकते। वेदों में प्रतिपादित ज्ञान, कर्म एवं उपासना के तत्व भक्ति साधना के अन्तर्गत, स्तुति, प्रार्थना और उपासना के पोशक थे। देवताओं की स्ततुतियों में ऐसे गुण कीर्तन होते थे जो उनका स्वरूप समझने में सहायक सिद्ध हुए। भारतीय हिन्दू धर्म वेदों की अपेक्षा आगामों पर ज्यादा अवलम्बित है। भक्ति आन्दोलन के लिए आवश्यक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि तैयार करने में आगम साहित्य की जो देन है वह सचमुच अनन्य है। अति प्राचीन काल से लेकर शिव की उपासना चलती है। उनकों भारत के प्राचीनतम देवता मानना गलत नहीं है। विभिन्न देवता तथा आराध्यों की उनसे एकता स्थापित हो चुकी है परिणाम स्वरूप शिव के अनेक रूपों तथा उनके परिवार का विकास हुआ और अनेक उपासना प्रणाणियों को शैवोपासना में स्थान मिला। विभिन्न संस्कृतियों तथा विचार धाराओं का संगम शैवधर्म में हुआ है। शैव सम्प्रदाय ने यता, गोरखपंथी, शिव-रूद्र, पाशुपत, अकुलीश, पाशुपत, काश्मीरी, शैव, लिंगायत, कापालिक, भैरव, कालमुख, रामेश्वर, देवी पूजा, गाणपत्य, कातिकेय आदि अनेक उप सम्प्रदायों को जन्म दिया। विभिन्न सम्प्रदायों का विकास होने पर शैव दर्शन का उदय एवं प्रतिष्ठा हुई। शैव सम्प्रदाय से अनुप्राणित साहित्य की श्रृखंला वेदों से शुरू होती है। भक्ति आन्दोलन के विकास में शैवों के सम्प्रदाय, दर्शन एवं साहित्य का असाधारण योग है। शैव सम्प्रदाय से गोरख पंथ का अटूट संबंध है गोरख को शिव का रूपान्तर मानना, मीन नाथ के मत्स्य से उत्पन्न होने की कथा हठयोग, शिव तथा उनके भैरव रूप की पूजा, नरबलि आदि इसके प्रमाण है। पंजाव, हिमाचल प्रदेश, पश्चिम, मध्य एवं पूर्वी भारत में गोरखपंथ का खूब प्रचार था। धर्मवीर भारती ने गोरखपंथ को सारे भारत में व्याप्त माना है। गोरखनाथा अनेक सम्प्रदायों तथा उपासना प्रणालियों का समन्वय कराना चाहते थे। ब्रह्म, शिव, रूद्र वुद्ध, देवी, सिद्ध, नाथ, प्रेत आदि की उपासना इसका प्रमाण है। वास्तविक चिन्ह को वे शिव का प्रतीक मानते है। यह लिंग-योनि सम्प्रदाय को मान्यता देने की प्रवृत्ति का परिचायक है। नाथों ने शिव शक्ति और भैरव के मन्दिरों में पूजारी रहकर भक्तिपरक साधना में शैव भक्तों को विशेष ने तृत्व प्रदान किया। वैदिक, अवैदिक और जंगली संस्कृतियों का संगम आधुनिक शैव सम्प्रदाय में हुआ है। इतना ही नहीं शिव-रूद्र मत में ब्रह्म, शाक्त, वैष्णव, नाग आदि सम्प्रदायो का सम्यक् समावेश है। अति प्राचीन काल से लेकर आज तक शिव-रूद्र की पूजा होती रही। वे ही भारत के प्राचीनतम देवता है। शिव-रूद्र सम्प्रदाय का भक्ति के समस्त सम्प्रदायों से आदान-प्रदान हुआ। इसके फलस्वरूप शिव परिवार विकसित हो गया तथा शि-रूद्र के विभिन्न रूपों के आविष्कार भी होने लगे। इस परिस्थिति ने शैव-दर्शन तथा साहित्य के विकास के लिए आवश्यक प्रेरणा दी। शिव अवैदिक भक्तों के आराध्य महादेव या शिव और वैदिक काल के रूद्र में सामंजस्य का परिणाम है। त्रिमूति, योगी, नटराज, हिमालय वासी, लदुरैवासी, पाशुपति, उर्वरता का देवता, मत्स्य अर्ध-नारीश्वर आदि रूप पुराण में ही पूर्ण विकसित हो गये। ये विभिन्न रूप शैव भक्ति साहित्य एवं दर्शन के विकास के परिणाम थे। सर्व शक्तिमान तथा समस्त संसार के देवता अर्थ में शिव शब्द का प्रयोग महाभारत तथा पुराणों में हुआ है।

शिव का अर्ध-नारीश्वर रूप सैधंव सभ्यता के युग में भी लोकप्रिय रहता था। यह शिव तथा शक्ति की जो उपासनाएं प्रचलित रहती थी। उनकों मिलाने तथा शिव-शक्ति युक्त परम पुरूष की आराधना की ओर आकर्षित कराने के लिए रचा

गया होगा। पुराणों ने इसकी व्याख्या करने के लिए कई कहानियां प्रस्तुत की। वे शिव के नर और नारी रूपों में अपने को विभाजित करने और फिर एक को दूसरे से अभिन्न करके मिला देने तथा पार्वती के प्रेमवश शिव रूप से तादात्म्य प्राप्त करने के उल्लेख करती है।

शैवमत तथा शक्त सम्प्रदायों का निकटतम संबंध है। शैवमत में शिव का जो स्थान है वही शाक्त सम्प्रदायों में शक्ति का है। शक्ति शैव सम्प्रदायों में शिव के आदेशों का पालन करती है। परन्तु शाक्त सम्प्रदायों में शिव शक्ति के सामने निस्सहाय बतलाये जाते है। शाक्त सम्प्रदाय इतना प्रभावशाली था कि अन्य सम्प्रदायों को भी विवश होकर शक्ति-कल्पना अपनानी पड़ी। शिव और शक्ति में कोई भेद नहीं क्योंकि वे यथाक्रम परम तत्व के पुरूष और स्त्री के प्रतिनिधि है। इनमें से एक का दूसरे के बिना कोई अस्तित्व नही है।

साहित्य में शिवशक्ति का विशेष महत्व है। कवियों ने अपनी रचनाओं में शिवशक्ति को विशेष महत्व दिया है। प्रबन्ध काव्यों में पं0 गौरीनाथ शर्मा का दोहा, चौपाई छनद में रचित 'शिवपुराण' महाकाव्य अत्यन्त उत्कृष्ट है। जयशंकर प्रसाद कृत कामायनी में शैवों के प्रत्यभिज्ञा दर्शन का प्रचुर प्रभाव है। तथा इसमें शिव के नटराज रूप के अतिरिक्त उनके सृष्टिरक्षक, सृष्टि सहांरह, सृष्टि की मूल शक्ति एवं महायोगी रूप का भी भव्य और उदात्त वर्णन हैं। गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'इ कृत 'तारकवध' एक विशाल शैव महाकाव्य है। राजस्थान के कवि रामानन्द तिवारी का पार्वती महाकाव्य शैव काव्यों में एक उत्कृष्ट उपलब्धि है। इसकी कथा पर यद्यपि कुमार संभव का प्रभाव है। तथापि इसमें शिव समाज, शिवदर्शन, शिव संस्कृति आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है। महिनाथ ठाकुर, लाल झा एवं हिमकर ने स्वतन्त्र से शिव संबंधी पद रचे। इनके अतिरिक्त प्रणीत शैव काव्या ग्रन्थों में दीन दयाल गिरि का 'विश्वनाथ नवरत्न' दलेलसिंट का शिव सागर तथा बनारसी कवि की शिव पच्चीसी आदि महत्वपूर्ण है।

संगीत में शिव शक्ति (कथक के संदर्भ में)

नरेन्द्र कुमार ध्रुव

(नेट/जे.आर.एफ.), कथक नृत्य विभाग
नृत्य संकाय, इं.क.सं.वि.वि. खैरागढ़ (छ.ग.)

ऋषियों ने अनुभव किया है, कि इस ब्रह्माण्ड में एक दिव्य नाद बराबर गुंजरित हो रहा है, उस नाद में सभी स्वर एवं भाव समाये हुये है। नाद में, संगीत में, प्राणियों कें अदर भाव-संवेदना जगाने की क्षमता है। जीवन की संवेदनायें जाग जाये तो मनुष्य और भगवान के बीच एक दिव्य आदान-प्रदान शुरू हो जाता है। अभी जो संगीत लिखने के दौरान मन में बज रहा है उसे अपने भीतर तरंगित होने दिया। यह भगवान कृष्ण की बांसुरी, शिव का डमरू का स्वर है ये स्वर ही संगीत की लहरों के साथ दिव्य संवेदनाएँ संचारित कर रही है। इनके साथ शरीर का कण-कण, मन, अन्तःकरण थिरक रहें है। पुलकित हो रहे है अन्दर के विकार शान्त हो रहे हे। आनन्द भरी पुलकन उभर रही है। इस साधना के प्रभाव को कुछ शान्त रह कर आत्मसात् करने पर भगवान का शिव-शक्ति का अर्धनारेश्वर रूप में दृश्य हो गया।

अर्धनारेश्वर कवित्त -

अर्ध शीश पे शशि उजियारा
अर्ध शीश गंगा की धारा
अर्ध भाल चंदन लिपटाये
अर्ध भाल सिन्दूर सोहाय
अर्ध कंठ लय विषहरी धारा
अर्ध कंठ अमृत की धारा
अर्ध ग्रीव लपटाय कराला
अर्ध ग्रीव सोहे वनमाला
अर्ध भुजाकर डमरू बाजे
अर्ध भुजाकर कंगन साजे
अर्ध अंग पे भस्म लगाये
अर्ध अंग श्रृंगार सजाये
अर्ध कटी बाघाम्बर सोहे
अर्ध कटी श्वेताम्बर सोहे
अर्ध अंग है ताण्डव रूपा
अर्ध अंग है लास्य स्वरूपा

जय अर्धांग पति, जय जय अर्धांगपति, जय जय अर्धांगपति।

शिव पार्वती के इस अर्धागं रूप का सनातन संस्कृति में महत्वूपर्ण स्थान है। भारतीय संस्कृति में हर वह पक्ष जो मानव जीवन से जुड़ा या न जुड़ा हो उसका मार्ग धर्म से ही होकर जाता है। धर्म में नृत्य की बात करें तो जिस प्रकार ''योग में योगी और नृत्य में नर्तक (कलाकार) के मध्य अन्तर केवल इतना है, कि योगी की समाधि अकेले ही अलौकिक आनन्द लेता है, वहीं कला कि समाधि में आनन्द का स्वरूप सार्वजनिक हो जाता है। कला का आनन्द कलाकार तथा दर्शक़ दोनों को समान रूप से मिलता है।'' नृत्य संगीत का यही दर्शन भारतीय संस्कृति में मान्य हुआ। इसे भगवान की आराधना का पावन अनुष्ठान माना गया। यही कारण है कि ईसा के पूर्व से लेकर आज नृत्य संगीत भारतीय धर्म का अभिन्न अंग बना हुआ है। इस प्रकार यह कहना उचित है कि ''धर्म और नृत्य विलग नहीं है ये आत्मानंद के अलग-अलग साधन हैं।'' अतः धार्मिक प्रक्रिया ऐसी प्रक्रिया है कि जिसके बिना भारतीय नृत्य कला अपूर्ण मानी जाती है। वैदिक काल में जब यज्ञ किया जाता था तब यज्ञशाला के

चारों ओर ब्राह्मणों, यज्ञकर्त्ताओं की सहधर्मिणीयाँ पिण्डीबंध रचना कर यज्ञशाला के चारो ओर नृत्य किया करती थी। जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय यज्ञ के साथ नृत्य करना भी यज्ञीय प्रक्रिया थी जो धर्म का नृत्य से संबंध को प्रमाणित करता है।

यह धर्म ही आगे विभिन्न सम्प्रदायों जैसे शैव सम्प्रदाय, वैष्णव सम्प्रदाय, शाक्त सम्प्रदाय आदि में बटकर अपना स्वरूप खोता जा रहा है। और यही रूप कथक नृत्य के विभिन्न घरानों में भी देखने को मिलता है। घरानों को छोड़कर बात करे तो, कथक नृत्य जगत में मुख्य दो शास्त्र को प्रायोगिक रूप से अनुसरण करते देखा गया है जिसमें मुख्य तो नाट्यशास्त्र और दूसरा अभिनय-दर्पण है जिसमें ग्रंथकार ने भी भगवान शिव व पार्वती के संबंध में विशेष रूप से शिव-शक्ति के महत्त्व को स्पष्ट किया है। और नृत्य के विषय में शिव-शक्ति को मूल आधार बताया है।

महामुनि भरत ने नाट्य शास्त्र के सृजन में भगवान शिव को ही मूलाधार रूप में स्थित किया है। जिनका एक दिव्य रूप 'नटराज' का है। भगवान शिव का नटराज रूप 'आनन्द-ताण्डव' में ही मुख्यतः दृष्टिगत् होता है। अर्थात् भगवान शिव का नृत्यरत रूप 'आनन्द-ताण्डव' में ही स्पष्ट दिखाई देता है। जहाँ 'नटराज' का शाब्दिक अर्थ है 'नृत्य-सम्राट'।

डिमक डिमक डिम डमरू बाजे,
शिश गंग अर्धगृविराजे
उमा-रमा सब सुर पति साजे,
कर त्रिशूल डमरू लिये नाचे
शिव छम छम छम, शिव छम छम छम,
शिव छम छम छम।

शिव के नृत्य का रूप कैसा भी हो, वह नृत्य में धीरे-धीरे विराट रूप को क्रियात्मक पक्ष से शास्त्र पक्ष में जोड़ता है। या यूं कहें कि कला, धर्म और साहित्य के रूप में उनका विराट रूप नृत्य के माध्यम से दिखता है। जहाँ नाट्य शास्त्र के चतुर्थ अध्याय ताण्डव लक्षण नामक अध्याय में वर्णित 108 करणों को नृत्याभिनयात्मक बनाये गये है। ''नटराज की नृत्त-मूर्तियों के निर्माण में चोल राजाओं का शासन काल स्वर्ण युग के नाम से कहा जाता है। इस युग में निर्मित चिदम्बरम् के मन्दिर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हे। इस विशाल एवं भव्य मन्दिर में नटराज के 108 नृत्यों का अंकन किया गया है।''

भगवान नटराज का नर्तन ही नृत्त है। ''नृत्य में गति है गति ही नृत्य है।'' और ''नृत्य जितना तेज होता है, उतना ही स्वयं अनुशासन में बंध जाता है।'' नृत्य की गति बढ़ने पर नर्तक को अंग न बिखरे इसका ध्यान रखना ही अनुशासन में बंध जाने से है। नृत्य गुरूओं का कहना है कि - नृत्य अनुशासन मांगता है, अर्थात् नृत्य अनुशासन प्रिय है। और अनुशासन में किया गया नृत्य कल्याणकारी होता है। भारतीय कला का संबंध अध्यात्म और विज्ञान दोनों से है जिनके विश्लेषण से भारतीय कलाओं का महत्त्व स्पष्ट होता है। इस ''परम्परा में नृत्य शब्द की निष्पत्ति 'नृत्त' धातु से मानी गयी हैं। ''आचार्य धनंजय के अनुसार -

''अन्यद्भावाश्रयं नृत्यम्'' -

अर्थात् ''भावाश्रित नृत्यम्' जो भाव से आश्रित होता है, वही नृत्य है।'' किसी भी पदार्थ को अभिव्यक्त करना हो, तो उसके आन्तरिक भावों को प्रस्तुत करना ही नृत्य है। नृत्य में रस, भाव आदि का समावेश होता है और यही उसकी महत्ता है, जो नायक-नायिकाओं द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। कहने का तात्पर्य है। जब कोई पात्र द्वारा किसी का चरित्र अभिनीत किया जाता है तो वह उसके सम्पूर्ण पक्षों को ध्यान रख उसके भावों और अंग संचालनों का प्रदर्शन करता है। यही नृत्य है। जिसमें नृत्त का संयोग भी होता है।

भगवान शंकर एक ऐसे नायक हैं जो स्वयं ही नृत्यरत है। इस संदर्भ में अभिनय दर्पण का निम्न श्लोक उद्धृत है।

आंङ्गिकं भुवनं यस्य वाचिकं सर्ववाङ्मयम्।
आहार्य चन्द्रतारादि तं नुमः सात्त्विकं शिवम्।।

उक्त श्लोक को कथक नृत्य में शिव-वंदना के संबंध में प्रस्तुत किया जाता है। जिसमें भगवान शिव को नृत्यमय बताया है जो चर-अचर रूप में सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है। इस विषय को और भी स्पष्ट नाट्य शास्त्र में भरतमुनि ने बताया है कि भगवान शंकर ने स्वयं ही नृत्य की उत्पत्ति को कहा है :-

"मयापीदं स्मृतं नृत्तं सन्ध्याकालेषु नृत्यता।।"

अर्थात् - संध्या के समय नृत्त करते हुए जब मैंने नृत्य का निर्माण किया। उक्त श्लोक से नृत्य की उत्पत्ति का संकेत नृत्त से प्रमाणित मिलता है। अतः स्पष्ट हो जाता है कि नृत्य की उत्पत्ति का कारण भगवान शिव का नृत्य है और नृत्य के मूल में नृत्त है। नृत्त की उत्पत्ति के संबंध में आचार्य भरत ने कहा दक्ष प्रजापति के यज्ञ को नष्ट करने के बाद शिव ने ताल-लय से बद्ध अंगहारों से युक्त पहली बार उद्धत नृत्य किया। इस प्रकार नृत्त की सृष्टि हुई। इस नृत्य को भगवान शिव ने तण्डु को दिया जिन्होंने इसमें गीत एवं वाद्य प्रयोग कर संसार में स्थापित किया। इन्ही के नाम से ताण्डव नाम रखा गया। तब इस (भगवान शिव के नृत्त) नृत्य को देखकर पार्वती जी ने भी श्रृंगार रस युक्त सुकुमार नृत्त का सृजन किया वहीं लास्य नृत्य के नाम से जाना गया। जहाँ नृत्य भावाभिनय में सहयोग प्रदान करता है। वहीं नृत्त सौन्दर्य की सृष्टि कर सहयोग देता है। नाट्यशास्त्र के अतिरिक्त वेदों में, पुराणों में भी भगवान शिव को नर्तक के रूप में अभिव्यक्त किया गया है।

यः परान्ते परानन्दं पीत्वा देव्यैकसाक्षिकम्।।
नृत्यत्यनन्तमहिमा तस्मैरूद्रात्मने नमः।

"कूर्म पुराण में उक्त श्लोक का उल्लेख है कि महाप्रलय के समय दिव्य, अद्वितीय उत्कृष्ट साक्षी वाले भगवान शंकर आनंद का आस्वादन कर नृत्य कर रहे थे।"

"प्रजज्वालाय तपसा मुनिमडांकणकस्तदा।
ननर्त हर्षवेगेन ज्ञात्वा रूद्रं समागतम्।।"

अर्थात "कूर्म पुराण में मुनि मडंकणक द्वारा वेगवश नृत्य किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। तथा अपने हर्ष एवं वेग युक्त नृत्य के माध्यम से भगवान शिव (रूद्र) में समा गये।

वामन पुराण के अनुसार -

"गन्धर्वास्तुम्बरूमुखा गायन्तो मधुरस्वरम्।
अभुजग्मुर्ममहादेव वादयन्तश्च किन्नराः।।
नृत्यन्त्यप्सरसश्चेव स्तुवन्तो मुनयश्च तम।
गन्धर्वायान्ति देवेश त्रिनेत्रं शूलपाणिनम्।।

"वामन पुराण में भगवान शिव के विवाह प्रसंग का वर्णन है कि शंकर के बारात प्रस्थान के समय गंधर्व, किन्नर वाद्यों का वादन करते हुये एवं अप्सरायें नृत्य करती हूई महादेव जी के पीछे-पीछे जा रहे थे।" राजा चक्रधर सिंह ने नवरस भावगीत की रचना करके आचार्य भरत तथा उनके परवर्ती आचार्यो द्वारा वर्णित नव रसों को एक साथ बांधने का सफल प्रयास किया है। इस ठुमरी में नृत्य के जनक भगवान नटराज शिव और पार्वती के शुभ विवाह प्रसंग का चित्रण किया है। भगवान शिव के विचित्र रूप को देखकर पार्वती की माँ मैना रानी डर जाती है और पार्वती से कहती है -

गोरी सलोने तोरे नैना, नवल मदभेद हंसत है।
श्रृंगार हास्य
तान-तान के तीर चलावे, हिय डर पावे मैना।
वीर भयानक
रोय मरत है तोरे सनेही, अजब गजब के है सैना।
करूण अदभुत
रौद्र रुप बिरहा की चोटन, नरक भयो है ऐना।
रौद्र विभत्स
चक्रपिया अब प्रेमी तिहारो, बकत बैरागी बैना।
शान्त

जिस प्रकार कोई नर्तक या नर्तकी अपने नृत्य प्रस्तुतीकरण में रस और भाव का समावेश स्वतः ही कर लेता है वैसे ही इस शिव-पार्वती विवाह प्रसंग

का वर्णन इस उक्त ठुमरी में स्वतः ही स्पष्ट होता है। किन्तु रचनाकार ने इसकी रचना 'नवरस' नाम से किया हे जिसके पंक्तियों में शब्दों का संयोजन उनके (रसों के) क्रम से किया है। जो रचनाकार क चिन्तन व प्रस्तुतीकरण को व्यक्त करता है। तथा किसी भी विषय के नियम का उल्लंघन न करते हुए रचना की है क्योंकि अनुशासन तो भगवान शिव-पार्वती में ही है।

उपरोक्त कहा गया है कि शिव ने ताल-लय बद्ध नृत्य किया तो उसका भौतिक एवं साहित्यिक पक्ष देखें तो सम्पूर्ण संसार को स्पन्दन करने वाली शक्ति है 'शिव-पार्वती' जो वास्तविक अर्थ है ताल शब्द के -

"तकार शड्.करः प्रोक्तो लकारः पार्वती स्मृता।
शिव शक्ति समायोगात् ताल इत्यमिधीयते।।"

शिव जी ने 'त' (ताण्डव) कहा और पार्वती ने ल (लास्य) का स्मरण किया। इस प्रकार शिव और शक्ति के समायोग रूप ही ताल शब्द जाना जाता है।

ता से तांडव थेई लास्य है।
तत् मिल कर तत्कार बने।
शंकर गौरी हिलमिल नाऽचेऽ।
तिग्दादिगदिग थेईत्राम आन मिलेऽ।
नगमा सरगम साऽथ चले तत्।
धेऽत् धेऽत मृदंग बजेऽ।
गुणिजन ताऽलल गाऽवेऽ परखेऽ।
आड़कुऽ ऽआऽड़ बि आड़करे।
ठाठब नेंठुम कैसे सुंऽदर।
प्रथमठा ऽठउ ठान करे।
नमस्का रआ मदअरू कविता।
अंगहा ऽ रऽगत भाऽवऽ चले।
पदाऽघा ऽतहैऽ परम तऽपस्थऽ।
नुऽपुर झनझन काऽरऽ करे।
तालयुऽ क्ततो ड़ेडअरू परनेंऽ।
अद्भुत चक्कर पाँव चले।
तकतक तकतत् कारचऽ लेऽतब।
थिरकथि रकगत भाऽवच नेऽतब।
गुणिजन हर्षऽत तनमन सरसत।
माऽंगल्य नृत्यकऽ ल्याऽऽण करे।।

शिव-शक्ति के ताण्डव और लास्य तो नृत्य के दो भेद हैं और नृत्य में ताल एवं लय का संयोग एवं उत्पत्ति इनसे ही है जो स्वयं में पूर्ण है अर्थात् "ऊँपूर्णमदः पूर्णमिदम् पूर्णात् पूर्ण मुद्च्यते, पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते"।

भारतीय नृत्य और संगीत का भव्य भवन ताल की (शिव-शक्ति) ही सुदृढ़ आधार भूमि पर ही प्रतिष्ठित है। गायन, वादन के बिना नृत्य की कल्पना नहीं कर सकते। "नृत्त तो केवल वादन के द्वारा अभिव्यक्त हो सकता है। किन्तु नृत्य के लिए गायन और वादन दोनों ही आवश्यक है।" नृत्य के विषय में चर्चा हो रही है तो कथक नृत्य सं संबंध को स्पष्ट करते है जहाँ एक तिहाई भाग इस नृत्य में पूरा ताल प्रधान होता है। क्योंकि इस नृत्य शैली में ताल पर विभिन्न लयों को दिखाया जाता है। जो अन्य नृत्य शैलियों से भिन्न है। जहाँ ताल-लय की बात है तो कथक नृत्य में ऐसे कई उदाहरण है जहाँ ताल व लय बद्ध कवित्त, छन्द, परन गतभाव आदि में भगवान शिव पर रचनायें नृत्याचार्यों ने की है जिससे स्पष्ट होता है कि कथक नृत्य में भी भगवान शिव का विभिन्न रूप विद्यमान है।

उदाहरण - कवित्त

जटाऽज्	ऽटमध	गंऽगछ	लक्कत
शीऽषचं	ऽद्रलिल्	लाऽटम	लक्कत
मुंऽडमा	ऽलगले	शेऽषध	रणिधर
पाऽरख	तीऽपति	शिवहर	हरहर।

कवित्त -

धगत	धिकतक	दिन्त	दिगतक
जयति	जय	दुर्गे	भवानी

माँ जगत जननी सकल भव शोक हरनी

धिगत	धिगत	गंक	धग	दिंगति
हाथ-	खंड्	त्रिशूल		धारिणी

धधकी धक धक दिगत दिग दिग

सिंहवाहिनी	दुष्ट	दलनि

रूद्र की अर्धांगनी परमेश्वरी

सुर नर मुनि नित ध्यात तुमको धाकिट धननन

(धानधाकिट धानधाकिट धान धा ता धा क्रधाता, धा क्रधा ता धा) - ३ बार

उपरोक्त तथ्यों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि 'नृत्य' में किसी विषय विशेष पर अभिनय किया जाता है जो अंगों के संचालन से पूर्ण होता है, नृत्य स्वभाव स्परूप होता है। यह स्वभाव स्वरूप, रूप भगवान शिव का नट रूप है तभी वे नटराज नाम से नृत्य-नाट्य कला के प्रवर्तक है। और उनका प्रयोग वे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड रूप नृत्यशाला में कर रहें हैं।

नृत्य की यह अवधारण शैव दर्शन में समाहित है। वही भगवान शिव के नृत्य का उद्देश्य अहंकार का नाश तथा पापों से मुक्ति है। जो संसार को, नृत्य बंधनों से मुक्त कराता है। संसार को नृत्य के बंधन में बांधने वाले शिव ही आदि नट हैं तभी वे 'नटराज' नाम से जाने एवं पूजे जाते है। भगवान शिव का ''नृत्य अनेक रूपों में नटन रूप विज्ञान, कला एवं दर्शन को अपने में समाविष्ट करता है।'' उनका नृत्य शैव सिद्धांत की अवधारणा का संक्षिप्तीकरण है। आदिदेव शिव ही ''नृत्य-नाट्य कला को प्रवर्तनकर्त्ता है।'' एक कथानक के अनुसार जब भरतमुनि अपने पुत्रों आदि के साथ ब्रह्मा के निर्देशन में 'अमृत-मंथन' तथा 'त्रिपुर-दाह' नामक रूपकों को भगवान शिव के समक्ष प्रस्तुत किये तब उस रूपक को देखकर भगवान शिव आल्हादित हुए। और तब ब्रह्मा से कहा कि इन दोनों रूपकों में नृत्य का सन्निवेश नहीं होने के कारण इनकी रोचकता अपेक्षाकृत कम है। अतः भगवान शिव द्वारा बताये सुझाव से नृत्य का नाट्य में प्रयोग किया गया। ''केवल नाट्य ही ऐसी कला है। जिसमें संगीत, नृत्य, शिल्प और वाङ्मय सब सन्निहित है।''

इस प्रकार शिव कथक नृत्य में दृष्यव्य है वे सनातन काल से वर्तमान काल तक नृत्य के माध्यम से संसार के सृजनकर्त्ता एवं संहारकर्त्ता भी है। कथक नृत्य में वहीं वंदना के स्वर एवं भाव में भी शिव है। ताल-लय में आमद, परन, कवित्त आदि में शिव है। तो ठुमरी (राजा चक्रधर के - गोरी सलोनी तोरे नैन) में भी शिव-पार्वती है। मोहिनी भस्मासुर गत्भाव में भी शिव है, अतः कथक नृत्य के प्रस्तुतीकरण में भी शिव है। जैसे भारत वर्ष में शिव-भक्त एवं मंदिर है वैसे ही भारत वर्ष में कथक नृत्य है जिसमें शिव-शक्ति व्याप्त है। चाहे वे आराध्य के रूप हो, वंदना, आमद, परन, कवित्त आदि में ही क्यों न प्रस्तुत हो, है तो नृत्य के संरक्षक एवं जनक। कारण यह है कि नृत्य का सामान्य जीवनचर्या में घुलमिल कर मनोरंजन का साधन बनना। और सामाजिक जीवन में नृत्य ने प्रवेश कर सामाजिक उपयोगिता को प्रमाणित कर दिया है। सामाज में ही वह सम्प्रदाय है जो शिव-शक्ति को मानता है कहने का तात्पर्य है कि कथन को जानने वाले विद्वानों ने नृत्य और साहित्य के साथ भगवान शिव और पार्वती जी को इतनी सुन्दरतम एवं लौकिक, मोहक रूप से वर्णित कर दिया जो नृत्य में प्रस्तुत्य है और दृष्टव्य भी है।

कोई भी वस्तु, कला या समय अपने आप को देशकाल, वातावरण में परिवर्तित कर लेता है वैसे ही वैदिक काल और पौराणिक काल में दिव्य पुरूषों का भी नृत्य मृत्युलोक में आते-आते वर्तमान समय में अपना स्वरूप परिवर्तित कर लिया है। हालांकि नृत्य में आज भी वैदिक, पौराणिक समय के महत्वपूर्ण अंश हैं जिसके कारण ही आज नृत्य को हम इन कालों से संबंधित एवं प्रभावित मानते हैं। उपरोक्त जो तथ्य हैं उनका मार्जन यह है कि मानव क्रियाशीलता एवं वैचारिक प्रक्रियाओं के सूत्र में बंधा रहता है। वह व्यवहारिक विधियों से अत्यधिक बंधा होने के कारण ही नृत्य मानवीय सीमाओं के अन्दर ही किया जा सकता है मानव का प्रयास है कि नृत्य के तत्व को कैसे आगे बढ़ाना है और पनपने देना है जिससे पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही परम्परा का मूल विकास और विस्तार होता रहे, कथक नृत्य को आगे बढ़ाना ही आज नृत्य जगत के लिए सबसे बड़ी उपलब्धि होगी।

रचनाकारों ने भगवान शिव एवं पार्वती पर

अधिकांशतः जो पद रचना की है उसे अति सुन्दर ढंग से वर्णित किया है जिनके नृत्यांकन से भक्त व नर्तक स्वयं ही आत्मविभोर हो जाता है अतः प्राचीन काल में नृत्य, संगीतादि को ईश्वरोपासना का सबल, सशक्त साधन माना जाता था। और आज भी नृत्य के द्वारा नर्तक ईश्वर उपासना करता है। साहित्य भी नृत्य कला को धर्म के पास लाने का प्रबल माध्यम रहा है। इस साहित्य रूपी महासागर में नर्तक जब डुबकी लगाता है तो उसे नृत्य के कई सीपि मिलते हैं जिसके अध्ययन से, साधना से, सुसंस्कारित हो नर्तक मोक्ष को प्राप्त करता है ऐसी हमारी आध्यात्मिक और धार्मिक साहित्य का पक्ष है, जो नृत्य शास्त्र में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप को संगीत के माध्यम से प्रकट करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. नाट्यशास्त्र - पं. बाबूलाल शुक्ल शास्त्री
2. अभिनय दर्पण - वाचस्पति गैरोला
3. दशरूपकम् - डॉ. भोलाशंकर व्यास
4. संगीत रत्नाकर - सुभद्रा चौधरी
5. कर्मकाण्ड - पं. श्रीराम शर्मा आचार्य - देवदक्षिणा पूर्णाहुति मंत्र
6. कथक नृत्य शिक्षा-भाग 2 - डॉ. पुरू दाधीच
7. कत्थक परम्परा - मांडवी सिंह
8. कत्थक ज्ञानेश्वरी - पं. तीरथ राम आजाद
9. भारतीय ललित कला एवं नृत्य कला - सुभाविनी कपूर
10. नटराज, ब्रह्माण्ड का दिव्य नर्तन - डॉ. कमल किशोर मिश्र,
11. कथक नृत्य में कवित्त छंद - डॉ. मंजरी श्रीरामदेव

Shiv Shakti in the historical perspective

Nidhi

Assistant Professor at Guru Nanak Girls College, Yamunanagar, Haryana

Shiv is one of the most important God in the Hindu pantheon and ,Along with Brahma and Vishnu is considered a member of the holy trinity (Trimurti) of Hinduism.

A complex character he may represent goodness benevolence and servers the protector but he also has a darker side as the leader of evil spirits, ghosts and vampires and as the master of thieves, villains and beggars. He is also associated with time and particularly as the destroyer of all things.

Shakti is the divine force, manifesting to destroy demonic force and restore balance every God in the Hinduism has his Shakti and without that energy they have no power. Parvati is the energy of Shiv.Shakti is also called Devi or Mahadevi, assuming different roles as sati, Parvati, Durga and kali.

Shiv, Parvati

&

Ganesh

Shiva's wife was Parvati,often incarnated as kali and Durga. She was infect a reincarnation of sati (or Dakshayani) the sati's marriage to shiva and even went father and held a special sacrifical caremony to all the Gods except shiva outraged at this slight, sati threw herself on the secrifical fire. Shiva reacted to this trageday by creating two demons **(virabhadra and Rudrakali)** from his hair who wreaked havoc on the caremony and beheaded Daksha.The other God appealed to shiva to end the violence and complying. He brought Daksha back to life but with the head to ram (or goad) sati was eventually reincarnated as Parvati in her next life and she re-married Shiva with Parvati. Shiva had a son the God Ganesha.The boy was infect created out of earth and clay to keep her company and protect her while Shiva returned one day and finding the boy guarding the room. Where Parvati was bathing he enquirer who he was not believing the boy was his son, and thinking him an impudent bigger. Shiva called up the bhutaganas demons.Who fought the boy and eventually managed to distract him with the appearance of the beautiful Maya and Whilst he admired the beauty, they lopped off his head. At the commotion, Parvati rushed from her bath and screamed that her son had been killed.Realising his error. Shiva then sent for a new head with. Which to make the boy whole again but the nearest at head was of an elephant. And go Ganesha the elephant headed God was born. Other

son of Shiva are Skanda or Kartikeya the God of war and Kubera and God of treasures Ganga (**The Goddess who personified the river Ganga)** was given to Shiva by Vishnu who could not take any more of constant quarrels between his then three wives of Lukshmi (**Goddess of good fortune**) Saraswati **(Goddess of wisdom)** and Ganga to cushion Gong A's fall to the earth and prevent such a great river destroying civilisation Shiva caught her in his hair tapknot. Once again illustrating his quality of self sacrifice.

Why do we worship the Shiva linga.

Varsion according to the puranam of why Shiva is worshiped an a lingam and how this happened. One of them being once there was a great sacrificial the great saga Narada Muni was invited to it but no one knew who would receive the effect of the sacrifice. Narada Muni said that Vishnu, Brahma and Shiva were all eligible but they would have to find out which one was the worthy Brighu was chosen to find this out.

First saga Brighu want to see Ford Brahma but Brahma was preoccupied and did not notice Brighu presence feeling insulted. Brighu cursed Brahma, **(you are so proud of your power of creation that you did not notice my arrival)**. For this you shall have no temples on the earth. Next , Brighu went to see Shiva in Kailash but shiva was occupied with Parvati at that hour, Brighu again felt offended and cursed Shiva to be worshipped only as a lingam. This is the reason why Lord Shiva is primarily represented worshiped as a lingam.

Shiva and kali

There are many different stories in Hinduism that show an association between the two deities, Shiva and kali. The exact degree of this association is under debate, with many claims identifying kali as a consort of Shiva. One story supporting the consort theory can be found in the Mahabhagavata Purana. In this story kali and sati are identified as the same being.

As per the story mentioned in Mahabhagavata Purana- kali, as the great Goddess, creates Brahma, Vishnu and Shiva. They are then each required to fulfill a test she appears before them in a horrible form that actually made Brahma, and Vishnu both turn away from fear. Shiva, being the only one that did not turn away, won the right to Mary her after her birth as Sati, the daughter of Daksha.

"शिव-शक्ति का समाज शास्त्रीय संबंध"

नूतन जड़िया

शोधार्थी, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर(म.प्र.)

सारांश

"प्रस्तुत पत्र में शिवपुराण व देवी पुराण में उल्लेखित 'शिव' और 'शक्ति' की संक्षिप्त व्याख्या करते हुए, शिव शक्ति का समाज में महत्व पर प्रकाश डाला गया है। शिव-शक्ति की सभी देवताओं के साथ ही दानव भी प्रार्थना करते है। देवीशक्ति (परा-अंबा) का 'सती' के रूप में प्रजापति दक्ष के यहॉ जन्म लेना, भगवान शिव से विवाह एवं बाद में 'शिव' का दक्ष द्वारा अपमान के कारण शरीर त्यागना, फिर 'गंगा' एवं 'पार्वती' के रूप में अवतरित होकर किस प्रकार समाज का कल्याण करना" इस पर प्रकाश डाला गया है।"

1. शिव-शक्ति–सामान्यतः 'शिव' को कल्याण करने वाला 'महादेव' (देवों के देव) माना जाता है और उनकी शक्ति देवी दुर्गा मानी जातीहै, जो विभिन्न रूप धारण कर सज्जनों (भक्तों) की रक्षा एवं दुर्जनों (असुरों) का संहार करती है, शिव और शक्ति के बारे में कुछ भी वर्णन किसी के भी वश की बात नहीं है।

"हरि अनंत हरि कथा अनंता" (१)

के अनुसार 'शिव' और 'शक्ति' का कौन वर्णन कर सकता है? यदि वर्णन कर दिया तो फिर वह अनंत कैसे रहेगा? यहॉ संक्षेप में देवी पुराण के आधार पर प्रयास किया गया है।

शक्ति के बिना इस अखिल ब्रह्माण्ड ही क्या अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों से लेकर छोटे-से-छोटे जीव तक का कोई अस्तित्व नहीं है। यहॉ तक कि बिना शक्ति स्वयं 'शिव' भी शव के समान है। तभी तो शिव ने शक्ति की सहस्त्र नाम मे सर्वप्रथम 'अनाद्या' (अर्थात् जिसका कोई 'आदि' नहीं और जिसका कोई आदि नहीं उसका अंत कैसे) कहते हुए, वे शांत चित्त लेट गए एवं देवी शक्ति परांबा को हमने हृदय पर स्थापित किया।

यत्र तत्र तवेदं हि कालीरूपं मनोहरं।
अविर्भवति तत्रैव शिव रूपस्य में हृदि।। (६)
शिव की भी इस प्रकार स्तुति की जाती है,
आकाशे तार का लिंगम्, उज्जैनिया महाकालं।
पाताले तारका लिंगम्, लिंगस्त्रयो नमोस्तुते।।

2. शिवशक्ति की समाजशास्त्रीय व्याख्या–पहले हमें शिव और समाजशास्त्रीय का अलग-अलग अर्थ समझना आवश्यक है।

शिवशक्ति अर्थात् शिकशक्ति, शिव में 'शि' ध्वनि का अर्थ मूल रूप से शक्ति या ऊर्जा होता है तथा 'व' का अर्थ प्रवीणता।

'शि-व' मंत्र में एक अंश उसे ऊर्जा होता है और दूसरा उसे संतुलित या नियंत्रित करता है और शिव नाम में ही शक्ति निहित है। अर्थात् शिव नाम भगवान शंकर के नाम से भी जोड़ा जाता है और इस शब्द को ओमकार रूप से भी समझा जाता है। शक्ति नाम 'पार्वती' के नाम से जोड़ा जाता है और इस शब्द को ऊर्जा, सती रूप से भी समझा जाता है। इसी प्रकार समाजशास्त्रीय का अर्थ है समाजशास्त्र अर्थात् समाज का विज्ञान। यह सामाजिक विज्ञान की एक शाखा है, वे जिसमें पद्धति और (घटना) विषय वस्तु, दोनों का ही अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार शिवशक्ति

और समाजशास्त्रीय अर्थ समझने के पश्चात् अब शिवशक्ति का समाजशास्त्रीय संबंध स्पष्ट किया जा सकता है।

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवकारे मंचे परमाशिवपर्यकनिलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरिम्।(३)

अर्थात् अमृतसागर के मध्य एक मणिमय द्वीप है, जो कल्पवृक्षों की वाटिका से घिरा हुआ है। उस द्वीप के मध्य कदम्ब के उपवन से आवृत चिन्तामणि से निर्मित एक भव्य भवन है, जिसमें शिव के आकार का मंच ऊपर स्थित परमशिव के स्वरूप पयंक के ऊपर निदानन्दलहरी भगवती विराजमान रहती है, ऐसी आप भगवती (शिवशक्ति) का जो कतिपय भावुक भक्त निरन्तर भजन करते रहते है, वे सभी धन्य है।

यामाराध्य विरचिरस्य जगतः स्रष्टा हरिः पालकः
संहर्ता गिरिशः स्वयं समभवद्धये च या योगिभिः।
यामाद्यां प्रकृतिं वदन्ति मुनयस्तत्वार्थविज्ञाः परां
तं देवी प्रणमामि विश्वजननीं स्वर्गापवर्गप्रदाम्।।(४)

अर्थात् जिनकी आराधना करके स्वयं ब्रम्हाजी इस जगत का निर्माण करने वाले हुए, भगवान विष्णु पालनकर्ता हुए तथा भगवान शिव संहार करने वाले हुए, योगिजन जिनका ध्यान करते है और तत्वार्थ जानने वाले मुनिगण जिन्हें मूल प्रकृति करते है- स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली जगजननी भगवती को मैं प्रणाम करता हूँ।

इस प्रकार पुराणों की परम्परा में अठारह महापुराणों के साथ-साथ अठारह उपपुराण भी प्राप्त है। इन उपपुराणों में देवीपुराण अर्थात् देवीशक्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। इस पुराण के आदिवक्ता भगवान सदाशिव है तथा श्रोता देवर्षि नारदजी है। अतः यह पुराण शिव और उनकी शक्ति (पार्वती) दोनों से जुड़ा है।

3. देवीपुराण (शिवशक्ति) के प्रादुर्भाव तथा समाज में उसका आख्यान–जब भगवान वेदव्यास जी अठारह पुराणों की रचना करने पर भी संतुष्ट नहीं हुए, तब उनके मन में यह विचार आया कि इस पवित्र पुराण में भगवती का परमतत्व और विस्तृत महिमा विद्यमान है, परन्तु महाज्ञानी महेश्वर शिव भी जिस देवीतत्व को भलीभाति नहीं जानते है उसका वर्णन स्वयं वेदव्यास जी कैसे कर सकते है? यह विचार कर देवी भक्तिपराण व्यास जी ने हिमालय पर्वत पर जाकर कठोर तपस्या की और उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवती के बिना प्रकट हुए आकाशवाणी से कहा- हे महर्षे! आप ब्रह्मलोक जाएँ, जहॉ समस्त श्रुतियॉ विद्यमान हैं, वहीं आपको मेरा दर्शन होगा और सारे रहस्यों का भी पता चल जाएगा। इस पर व्यास जी ब्रह्मलोक गए, वहॉ उन्होंने मूर्तिमान चारों वेदों को प्रणाम कर उनके अविनाशी ब्रह्मपद की जिज्ञासा की। तब चारों वेदों ने क्रम-क्रम से देवी भगवती को ही साक्षात् परमतत्व (परब्रह्म) बतलाते हुए कहा कि आप अभी हमारे प्रसन्न से इस तत्व का प्रत्यक्ष रूप से दर्शन कर सकेंगे। परिणामस्वरूप ज्योतिस्वरूपा सनातनी जगदम्बा प्रकट हो गई। उनमें सहस्त्रों सूर्यो की आभा एवं करोड़ों चन्द्रों की शीतल चन्द्रिका व्याप्त थी और वे सहस्त्रों भुजाओं में विविध शस्त्रों को धारण किए हुए दिव्य अलंकरणों से अलंकृत थी। इस प्रकार कभी वे विष्णु लक्ष्मी कभी राधा- कृष्ण तो कभी ब्रह्मा-सावित्री और कभी शिव-पार्वती के रूप में स्थित हो जाती थी। इस प्रकार उन सर्वव्यापिनी ब्रह्मस्वरूपिणी भगवती ने अनेक प्रकार के रूप धारण कर व्यास जी का संशय दूर कर दिया। अतः वर्तमान समाज में भी इन देवी-देवताओं की अलग-अलग पूजा-अर्चना की जाती है। प्रत्येक समुदाय के अपने-अपनेअलग इष्ट देवता है, जिनकी वे पूजा करते है परन्तु उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि सारे देवी-देवता एक ही है।

4. शक्तिपीठों के प्रादुर्भाव तथा समाज में उनकी मान्यता–भूतभावन भवानीपति भगवान शिव जिस प्रकार प्राणियों के कल्याणार्थ विभिन्न तीर्थो में पाषाण के लिंग के रूप मे आविर्भूत है उसी प्रकार अनन्तकोटि ब्रह्मण्डात्मक, करूणामय भगवती है उसीप्रकार अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड नायक, करूणामय

भगवती भी लीलापूर्वक विभिन्न तिर्थों में भक्तों पर कृपा करने हेतु पाषाण रूप से ही शक्तिपीठों के रूप में विराजमान है। ये शक्तिपीठ साधकों को सिद्धि और कल्याण प्रदान करने वाले है।

इस सृष्टि के निर्माता पितामह ब्रह्माजी ने मानवीय (समाज का) जगत का विस्तार करने के लिए अपने दक्षिण भाग में स्वयम्भुव मनु तथा वाम भाग से शतरूपा को उत्पन्न किया। मनु-शतरूपा से दो पुत्रों और तीन कन्याओं की उत्पत्ति हुई, जिनमें सबसे छोटी पुत्री का विवाह मनु ने प्रजापति दक्ष से किया, जो ब्रह्म जी के मानसपुत्र थे।

ब्रह्माजी की प्रेरणा से जी दक्ष ने दिव्य सहस्त्र वर्षों तक तपस्या करके आद्याशक्ति जगजननी जगदम्बा का भगवती शिवा को प्रसन्न किया और उनसे अपने यहॉ पुत्री रूप मं जन्म लेनेका वरदान मांगा।

कुछ समय पश्चात् प्रकृतिस्वरूपिणी भगवती पूर्णा ने दक्षपत्नी प्रसूति के गर्भ से जन्म लिया। दक्ष ने कन्या का नाम 'सती' रखा। सती वर्षा ऋतु मंदाकिनी की भॉति बढ़ने लगी। दक्ष के मन में उनका विवाह करने का विचार आया। शुभ समय देखकर उन्होंने स्वयंवर का आयोजन किया, जिसमें भगवान सदाशिव के अतिरिक्त सभी देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व, ऋषि तथा मुनि उपस्थित थे। सती ने शिव विहीन स्वयंवर सभा देखकर 'शिवाय नमः' कहकर वरमाला भूमि को समर्पित कर दी और वह माला भगवान शिव के गले में सुशोभित होने लगी। यह देखकर वहॉ विराजमान ब्रह्माजी ने प्रजापति दक्ष से कहा आपकी पुत्री ने देवाधिदेव भगवान शंकर का वरण किया है। ब्रह्माजी का यह वचन सुनकर दक्ष ने भगवान शिव को बुलाकर उन्हें सती को सौंप दिया। भगवान शिव भी सती का पाणिग्रहण कर उन्हें लेकर कैलाश चले गए।

इधर सती के चले जाने के बाद वरदान के अनुसार दक्ष का दिव्य ज्ञान लुप्त हो गया। वे शिव औरसती के द्वेषवश विषाद करने लगे इतना ही नहीं राजा दक्ष ने शिव से द्वेषवश एक महान यज्ञ का आयोजन किया, जिसमें सभी देवताओं को तो आमंत्रित किया, परन्तु न तो सती को बुलाया और नही शिव को। सती को नारद जी के द्वारा बताये जाने पर इस बात का पता चला और शिवजी से अनुमति लेकर दक्ष के यहॉ चली गई। इसके बाद देवी सती यज्ञ मण्डप में पहूँची जहॉ दक्ष देवताओं के साथ यज्ञ कर रहे थे। वहॉ शिव का भाग न देखकर सती ने भयंकर महाकाली का रूप धारण कर लिया। यह देखकर दक्ष ने कहा यहॉ तुम गौरवर्ण वाली और दिव्य वस्त्राभुषण से अलंकृत रहती थी और अब काली और दिगम्बरा हो गई है। दक्ष द्वारा शिव के प्रति ऐसी निन्दा, द्वेष और व्यंग्यपूर्ण वचनों को सुनकर अपने ही समान रूपवती छायासती को उत्पन्न किा। तथा दक्ष बोले- कुपुत्री! तू मेरी ऑखों से ओझल हो जा प्रेतभूमि निवासी शिव की पत्नी होकर तुम मेरे लिए मर गई हो। दक्ष के ऐसे वचनों को सुनकर छायासती ने गंभीर वाणी में कहा- मैं तुम्हारी ऑखों से ही दूर नहीं जाऊँगी, बल्कि तुम्हारे द्वारा उत्पन्न इस शरीर से भी शीघ्र ही अवश्य बाहर चली जाऊँगी। ऐसा कहकर देखते-देखते यज्ञाग्नि मे प्रवेश कर गयी। नारदजी ने यह समाचार भगवान शिव को दिया और सदाशिव क्रोध और शोक से विचलित हो गये। तथा उन्होंने अपने तीसरे नेत्र से हजारों रूद्रगणों की उत्पत्ति की। इन रूद्रगणों ने दक्ष के यज्ञ को नष्ट कर दिया तथा दक्ष का सिर काट डाला। शिव की ऐसी दशा देखकर ब्रह्म व विष्णु देवी की स्तुति की। फिर देवी ने शिवजी से कहा मैंने आपका परित्याग नहीं किया है, में कुछ समय तक आपके साथ नहीं रह सकूँगी। आप मेरी छायाशरीर सिर पर धारण करके सम्पूर्ण भूतल पर भ्रमण करो। मेरा शरीर अनेक खण्डों में विभक्त होकर गिरा और उन स्थानों पर पापों का नाश करने वाले महान शक्तिपीठ उदित होंगे।

इस प्रकार छायासती के शरीर के अंग-प्रत्यंग धरातल पर गिरने से 51 शक्तिपीठ बन गए।

पीठानि चैकपंचाशदभवन्मुनिपुंगव।
अंगप्रत्यंगपातेन छायासत्या महीतले।।

इस तरह शक्ति के अर्थात शिव के द्वारा शक्ति के अंगों को भूमि पर गिराया गया इसलिए

उन्हें शिव शक्ति या शक्तिपीइ के नाम से जाना जाता है। तथा आधुनिक समाज में भी भारात के अलग-अलग राज्यों में इन पीठों की महिमा का वर्णन किया जाता है।

5. पराअंबा देवी का ''गंगा'' एवं ''पार्वती'' रूप में प्रकट होकर समाज का कल्याण करना''–सृष्टि के लिये शक्ति की परम आवश्यकता को देखते हुए तीनों संचालनकर्ता ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने पुनः स्तुती की। देवी पराअंबा ने फिर शिवजी को हिमालय की पुत्री बनकर दो रूपों में सामने आने की बात कही।

1. शिव ने सती के शरीर को सिर पर रखकर विव्हल होकर ब्रह्मांड घूमते फिरे अतः जलमयी गंगा का रूप धारण कर।

2. पार्वती होकर पत्नी रूप में।

देवी गंगा तथा पार्वतीका प्राकट्य- महादेवी दुर्गाने हिमालय के यहॉ मेनका के गर्भ से गंगा तथा पार्वती के रूप में अवतार लिया। ब्रह्माजी हिमालये सं गंगाको मांगकर देवताओं के साथ उन्हें स्वर्गलोक ले गये तथा उन्हें शिवजी को समारोहपूर्वक पत्नी रूप में प्रदान किया। जो जगदम्बा ब्रह्माजी के कमण्डलु में रही थी, उन्होंने ही भगवान् शिव को प्राप्त करने के बाद जलरूप में अवतीर्ण होकर ब्रह्मद्रव के रूप में पृथ्वीलोक में आकर सागरपुत्रों का उद्धार किया तथा अन्य सभी प्राणियों का वे कल्याण करती रहती है।

इस प्रकार सती ने अपने अंशरूप से गंगा के रूप में हिमालय की पुत्री होकर तथा पूर्णांश से पार्वती रूप में जन्म लेकर भगवान् शंकर को पति रूप में प्राप्त किया।

नारदजी के द्वारा पार्वती जी के जन्म की कथा सुनने की जिज्ञासा करने पर महादेवजी के जन्म की देवी मेना ने शुभ दिन में जगन्माता भगवती को पुत्री रूप में जन्म दिया। उस समय गिरिराज हिमालय नेभगवती जगदम्बा के रूप में कन्या का दर्शन करते हुए उन्हें प्रणाम किया तथा उनसे अपना वृत्तान्त सुनाने की प्रार्थना की।

देवी द्वारा हिमालय को देवीगीता का उपदेश-

पार्वतीजी ने योग के सार रूप में ब्रह्मविद्या का यहॉ वर्णन किया है, जिसे 'देवीगीता', 'पार्वतीगीता' या 'भगवतीगीता' भी कहा जाता है। इसके जाननेमात्र से प्राणी ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। (५)

भगवती पार्वती कहती है कि मुमुक्षु साधक को चाहिये के मेरे में चित्त और प्राण को लगाकर तत्परतापूर्वक मेरे नाम का जप करता रहे। मेरे गुण और लीला-कथाओं का श्रवण करते हुए अपने वर्णाश्रमधर्मके अनुसार विधि-विधान से मेरी पूजा और यज्ञ आदि सम्पन्न करना चाहिए। सभी यज्ञ, तप और दान से मेरी ही अर्चना करनी चाहिये।

जब इस आत्मा की प्रत्यक्ष अनुभूति होती है, उसी क्षण मुक्ति हो जाती है, परंतु मेरी भक्ति से विमुख प्राणियों के लिये यह प्रत्यक्षानुभूति अत्यनत दुर्लभ है। इसलिये मुमुक्षु साधकों को यत्नपुर्वक मेरी भक्ति में ही संलग्नरहना चाहिये। राग-द्वेष आदि दोषों से प्राणी जन्म-मरण की प्रक्रिया से निरनतर बॅधा रहता है। अतः शरीर आदि अनात्म पदार्थों में उस आत्मबुद्धि का परित्याग कर देना चाहिये। वास्तव में सच्चिदानन्दस्वरूप यह आत्मा न उत्पन्न होता है, न मरता है, न सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों में लिप्त होता है और न कष्ट ही भोगता है। जैसे घर के अंदर अव्यवस्थित आकाश पर घर के जलने का कोई प्रभाव नहीं होता, उसी प्रकार शरीर में स्थित आत्मा पर शरीर में होने वाले छेदन आदि का कोई प्रभाव नहीं होता। शरीर के मारे जाने पर आत्मा को मारा गया समझता है, ऐसा व्यक्ति भ्रमित चित्तवाला है, क्यांकि आत्मा न मरता है, न मारा जाता है।

सृष्टि के समय यह जीव पूर्वजन्म की वासनाओं से युक्त अन्तःकरण के साथ उत्पन्न होता है और जगत् में निवास करता है। विद्वान् को चाहिये कि ज्ञान, विवके के द्वारा इच्छित पदार्थों में आसक्ति तथा अनिच्छित पदर्थों की प्राप्ति में द्वेष का परित्याग कर सुखी हो जाये। पाप-पुण्य के अनुसार जीव को सुख तथा दुःख की प्राप्ति होती है। पुण्यकर्मो से स्वर्ग की प्राप्ति होने के बाद पुण्य के क्षीण होने पर जीव पुनः मृत्युलोक में गिरता है। अतएव विद्वान पुरूष को आसक्ति का त्याग करते हुए विद्याभ्यास

में तत्पर रहना चाहिये तथा संत्संग करते हुए परम सुख को प्राप्त करना चाहिये। वास्तव में विषय भोगों का सेवन करने वालों का आत्यन्तिक कल्याण नहीं होता, अतः आत्मतत्व का विचार करके वासनात्मक सुख का परित्याग कर शाश्वत सुख की प्राप्ति करनी चाहिये।

भगवती पार्वती गिरिराज हिमालय से कहती है कि अत्यनत दुराचारी मनुष्य भी यदि अनन्यभाव से मेरी उपासना करता है तो वह भी पापरहित होकर भवबन्धन से छूट जाता है निरन्तर एकनिष्ठ चित्तवाला होकर जो नित्य मेरा स्मरण रखता है, उस भक्तिपरायण योगी को मैं मुक्ति प्रदान करती हूँ। अतः महामते! टाप पराभक्ति से युक्त होकर मेरी आराधना कीजिये। इस प्रकार पार्वतीजी के मुख से देवीगीता सुनकर पर्वतश्रेष्ठ हिमालय जीवन्मुक्त हो गये।

तीनों लोगों में जो लोग आर्द्रानक्षत्रयुक्त नवमीतिथि को बिल्ववृक्ष में मेरी पूजा करके भक्तिपूर्वक मेरा प्रबोधन करते हुए शुक्लपक्ष की नमीतक प्रतिदिन मेरा पूजन करेंगे, उनके ऊपर प्रसन्न होकर मैं उनके सभी मनोरथ पूर्ण करूँगी। मेरे अनुग्रह से उसका कोई शत्रु नहीं होता, उसके बन्धु-बान्धवों का उससे वियोग नहीं होता और उसे किसी प्रकार का दुःख तथा दारिद्र्य भी नहीं होता। मेरी कृपा से उसे इस लोक तथा परलोक के मनोवांछित पदार्थ तथा अन्य सभी प्रकार की सम्पदाओं की प्राप्ति हो जाती है। भक्तिपूर्वक मेरी उपासना करने वाले मनुष्यों के पुत्र, आयु तथा धन-धान्य आदि की प्रतिदिन वृद्धि होगी तथा उन्हें अचल लक्ष्मी की प्राप्ति भी होगी, व्याधियॉ नहीं होगी, कष्टकर ग्रह उन्हें पीड़ित नहीं कर सकते और उनकी अकाल मृत्यु नहीं होगी।

भगवती के उपासकों ने दस महाविद्याओं को कालीकुल और श्रीकुल- दो भागों में विभक्त किया है। दसों देवियॉ भक्तों द्वारा पृथक-पृथक रूप से पूजित होती है। इसीलिये सभी की उपासना के लिये अलग-अलग मन्त्रों, यत्नों एवं उपासना-पद्धतियों का विधान किया गया है, जिनमें पंचदशाक्षरी, एवं षोडशाक्षरीप्रभृति मन्त्रों से सत्वगुणसम्पन्ना भगवती की प्राणप्रतिष्ठा करके नित्य दर्शन करते है। इसी प्रकार, हिंगलाज या कालीप्रभृति देवियों के लियेभी अलग-अलग यन्त्रों एवं उनमें अलग-अलग देवियों की प्राणप्रतिष्ठा की शास्त्रीय व्यवस्था है।

देवी पुराण में उल्लेख है कि भगवान श्रीराम का रावण पर विजय पाना श्री देवी परा अंबा की आराधना का ही फल है। श्रीराम की विजय हेतु ब्रह्माजी ने, सभी देवों ने एवं तीनों लोकों में सभी ने शारदीय नवरात्रि में देवी की पूजा की, तभी ये शारदीय नवरात्रि मनाने की परंपरा चली आ रही है।

समाज शास्त्र के एक विभिन्न सिद्धांतों का एक ही सार भगवान श्री कृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है-

यद्यदाचरति श्रेष्ठः तत्तदेवतरो जनाः।
स यत्पमाणं कुरूते लोकस्तदनुवर्तते।। (६)

समाज के श्रेष्ठ (वरिष्ठ) लोग जो-जो आचरण करते हैं, लोग उसे प्रमाण मानकर वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं।

इस प्रकार हम देखते है कि भगवान शिव एवं देवी शक्ति ने किस-किस प्रकार समाज में शिक्षा देने के लिये कैसे चरित्र किये है, ताकि समाज उनका पालन करे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर
2. देवी पुराण, गीताप्रेस गोरखपुर, अध्याय 23, श्लोक 186.
3. देवी पुराण, गीताप्रेस गोरखपुर, सिंहावलोकन, पृष्ठ 13
4. देवी पुराण, गीताप्रेस गोरखपुर, सिंहावलोकन, पृष्ठ 17
5. भगवती गीता, देवी पुराण, गीताप्रेस गोरखपुर, अध्याय 15,16,17,18.
6. श्रीमद भगवत गीता, अध्याय 5, श्लोक 21

'Śiva-Śakti in Universal Perspective'

Madhav Puranik

Research Scholar
Tilak Maharashtra Vidyapeeth, Pune

Abstract

Śiva-Śakti in Abhinavgupta's Theory of Aesthetics

Abhinavgupta's theory of aesthetics extends the boundary of experience upto the category of Śiva-Śakti, 'Prakāśa'-Vimarśa] based on the ontological principles of Śvātantryavāda and Ābhāsavāda. Svātantryavāda is from the point of view of the Ultimate principle and Ābhāsavāda is from the point of view of the manifested variety. In the Absolute, the entire variety in the objective world is in a state of perfect unity. The highest category 'Siva' or 'Universal being' is an Ābhāsa.The epistemological explanation of the above theory takes into account the aspects of Prameya, Pramāṇa; Pramātā. Abhinavgupta explains the process of aesthetic experience in terms of the levels of Sense, Imagination, Emotion, and Katharsis with final level of Transcendence. [Comparative Aesthetics, Dr. K.C.Pandey]

After accepting Abhinavgupta's theory of aesthetics completely, present paper aims at the following –

1 To describe the process of aesthetic experience in terms of twelve Kālis of the Mahārtha 'or 'Krama 'system depicting twelve successive stages of Prameya, Pramāṇ a, Pramātā. [Spanda-Kārikās, Vasugupta1.1]
2. To describe the above process in terms of the levels of Citta-praṇa [intermediate level of Śiva-Śakti] and five koœas [Annamaya etc.]
3. To indicate the corresponding levels of the process related to five states of consciousness power [Jagrat, svapna etc.]
4. To apply the dialectical method of Hegel for the transition of Śiva-Śakti in the above process.
5. To define Citta-praṇ a along with the rules for movement of Śiva-Śakti from the lowest category to highest category of tattvas applicable to all experiences [aesthetic, spiritual and contemplative]

हर रूप महादेव
(भारतीय शास्त्रीय संगीत के विशेष संदर्भ में)

डॉ. रीना सहाय

अध्यक्ष, स्नातकोत्तर, संगीत विभाग
श्री अरविन्द महिला कॉलेज, पटना

संगीत एवं अध्यात्म अनादि काल से भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। संगीत को अध्यात्म का मार्ग माना गया है और आध्यात्मिक चेतनाएँ सर्वोपरि हैं। यद्यपि संगीत का नियमित स्वरूप वेदों में निहित हुआ तथापि संगीत की परम्परा प्रागैतिहासिक कालों से चली आ रही है। संगीत भाववाचक होता है, जिसमें मनुष्य की आंतरिक एवं अन्तर्निहित भावनाएँ गहराईयों तक पहुँच जाती है। संगीत भक्तों की वाणियों में आराध्य देवों की स्तुति गुंजायमान होती रही है। महादेव की पूजा कई रूपों में की गई। शिव देवों के देव महादेव हैं। भगवान शिव ने रूद्र रूप धारण कर कैलाश पर्वत पर निवास किया। माता शक्ति ने दक्ष पुत्री सती के रूप में अवतार लिया एवं कैलाश प्रस्थान किया। ऋक्वेद के रूद्र सूक्त में वे अंतरिक्ष स्थानीय देवता हैं, जिनकी उपाधि ष्यंबकंम्, नीललोहित, भव, शर्व, पशुपति, मारूत्पिता, असुर मरूत्वान् इत्यादि हैं। इन्हें स्वर्ग का सृक वराह कहा गया है। पिनाक धनुष सृकवज्र तथा कृपाण विद्युत इनके तत्व हैं। इनके कल्याणकारी तथा विनाशकारी दोनों स्वरूपों का वर्णन वेदों में प्राप्त है। महामृत्युंजय मंत्र के शिव उपास्य देवता हैं। प्राणियों के ईश्वर शंकर भूतेश्वर हैं। भागीरथ की आराधना सफल करके चन्द्रमा को शीश में धारण कर शिव गंगाधर बने। रावण का गर्व हरण करके देवताओं की प्रार्थना पर आरोग्य प्रदायक वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग की स्थापना हुई। जब पार्वती शिव का अपमान न सह सकीं एवं अग्नि में प्रवेश कर गयी, तो शिव वैरागी बनकर तपस्या में लीन हो गए। श्री राम ने दक्षिण में रामेश्वरम मंदिर में शिवलिंग की पूजा की। रामेश्वरम् की स्तुति दो प्रकार से की गई है। राम कहते हैं - रामस्य ईश्वरः यःसः रामेश्वरः (अर्थात्) राम का जो ईश्वर है वह रामेश्वर है। लंकापति रावण भी शिव के अनन्य उपासक थे। उन्होंने लंका में कई शिव मंदिर बनवाए। महाभारत में वर्णित है कि अर्जुन ने भगवान शिव से ज्ञान का वरदान माँगा था। महाकवि कालिदास ने 'रघुवंशम्' में शंकर को चराचर जीवों की उत्पत्ति करनेवाला, पालनकर्त्ता एवं संहारकर्त्ता बताया है।

पुरातत्वों के अनुसार यह ऐतिहासिक तथ्य दिया जाता है कि शिव तत्वों की शिवलिंग द्वारा पूजा 5000 वर्षों से निरन्तर चली आ रही है। सिंधु-सरस्वती सभ्यता में हरप्पा मोहजोदड़ो में शिव लिंग पाया गया है। अतिप्राचीन, प्राचीन, मध्यकाल से लेकर आधुनिक काल तक शिव पूज्यनीय है।

शिव मंगल हैं। वह मंगल जो स्वयं तक सीमित नहीं है वरन् समस्त लोक के लिए कल्याणकारी है। शिव नाम मन, वचन और कर्म से पावन होने का संदेश देता है। जो कल्याण करता है वह शंकर है - सं करोति इति शंकरः।

शिव स्वरूपः-

शिव के ललाट पर बनी विभूति की क्षैतिज रेखाएँ माया द्वारा रचित तीनों लोकों के संहार का प्रतीक है। भस्म विनाश के साथ-साथ स्थायित्व का द्योतक है, उसे जलाया नहीं जा सकता, यह अनश्वर आत्मा का प्रतीक है। शिव का तीसरा नेत्र सभी वांछित एवं अवाँछित वस्तुओं के प्रति तिरस्कार दर्शाता है। त्रिशूल ब्रह्मा, विष्णु, महेश-सृष्टि, पालन एवं संहार को दर्शाता है। डमरू, जो उनके गले में लटक रहा है, इसका प्रयोग बंदरों को शांत करने के लिए किया गया है। बंदर मनुष्य के चंचल दिमाग के प्रतीक है। पैरों तले राक्षस मनुष्य के अहंकार का प्रतीक है, जिसका भगवान शिव दमन कर रहे हैं।

संसार की रक्षा के लिए शिव ने विषपान किया जिसके कारण उनका कंठ नीला हो गया और वे नीलकंठ कहलाए। अमृत कलश थामे तीन नेत्रों वाले शिव का एक नेत्र सूर्य, द्वितीय चन्द्र और तृतीय अग्नि का प्रतीक है। शिव ष्यंबकम् हैं।

संगीत काव्यों में शिव :-

प्राचीन ग्रंथकारों ने राग रागिनियों की उत्पत्ति देवी-देवताओं से मानी है। धारणा है कि ब्रह्मा ने सृष्टि की, संगीत की भी स्रष्टा वही हुए। ब्रह्मा ने यह विद्या शिव को दी। शिव ने यह विद्या सरस्वती को और सरस्वती ने यह ज्ञान स्वर्ग के गंधर्वों, किन्नरों, अप्सराओं और नत्तकों को दिया। संगीत की कला नारद, हनुमन्त ऋषि को मिली। श्री आई शेखर ने आर्यों और अनार्यों के प्रसंग में भरत की नाट्य विषयक कथा को ऐतिहासिक पुट दिया है। वे कहते हैं- 'भरत ने ब्रह्मा और शिव से नाट्य की उत्पत्ति की प्रार्थना की एवं उसके प्रदर्शन द्वारा आर्यों तथा अनार्यों की सभ्यताओं का संयोग प्रदर्शित किया है। पंडित तुलसीदास देवांगन के अनुसार वैदिक साहित्य में 'साम' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गयी है -

'साम शब्द के सा का संबंध ऋग्मत्रों से है और ऋग्मत्र पत्नी रूप हैं तथा अम् षड्जादि स्वर रूप है। इसका तात्पर्य यह है कि जिस 'साम' से संगीत की उत्पत्ति हुई, उस साम का रूप ही पति-पत्नी भावयुक्त है।'[1]

दामोदर कृत संगीत दर्पण में वर्णित है-

शिव-शक्ति-समायोद्रागाणा सम्भवो भवेत्
पञ्चास्यात पंच रागास्युः षष्ठस्तु गिरिजामुखम्।
(9) संगीत दर्पण

अर्थात् शिव शक्ति के संयोग से रागों की उत्पत्ति हुई महादेव के मुख से पाँच राग एवं छठा राग पार्वती के मुख से उत्पन्न हुआ।

सद्यो वक्रतु श्री रागो वामदेवाद वसन्तकः
अघोराद् भैरवे भूत तत्पुरुषाद् पंचमो भवेत्।।
(10) संगीत दर्पण

ईशानारव्याद् मेघ रागो नात्यारम्भे शिवादहुत
गिरिजायाः मुखालास्ये नट्ट नारायणो भवेत्
(11) संगीत दर्पण

शिव के पाँच मुखों में सद्योवक्रामुख से श्री राग, वामदेव मुख से वसंत, अघोरमुख से भैरव, तत्पुरुष मुख से पंचम, ईशान मुख से मेघराग की उत्पत्ति हुई। त्लास्य नृत्य के प्रसंग में पार्वती जी के मुख से नट्टनारायण अवतरित हुआ है।

संगीत में काल का भाग, जो कला, पात और लय से युक्त है, वह ताल है। ताल शब्द तल् धातु के बाद घं प्रत्यय लगाने से बनता है। संगीत दर्पण में ताल का ता शंकर और ल शक्ति का द्योतक है–

तकारे शंकर प्रोक्तो लकारः पार्वती स्मृता
शिव शक्ति समायोगात्ताल नामाभि धीयते

नन्दिकेश्वर कृत भरतार्णव में लिखा है कि ताण्डव नृत्य से 'ता' और लास्य से 'ल' वर्ण के आधार पर ताल शब्द व्युत्पन्न हुआ।

ताण्डवस्याद्यवर्णेन लकारो लास्य शब्दभाक्।
यदा संगच्छते लोके तदा तालः प्रकीर्तितः।।

संगीत का आधार ध्वनि है, जिसके दो तत्व है - स्वर एवं काल। स्वर तत्व संगीत और काव्य के रूप में तथा काल तत्व ताल एवं छन्द के रूप में

अभिव्यक्ति होता है। छन्द और ताल मिलकर संगीत को प्रस्फुटित करते हैं।

नाद -

हिन्दुत्त्व में नाद चिदाकाश की ध्वनि को कहा गया है।

ध्वनि से ही ब्रह्माण्ड की सृष्टि हुई। अव्यय, अव्यक्त, निराकार ब्रह्म का अनुभव सर्वप्रथम सांगीतिक स्वर में हुआ। विशेष उल्लेखनीय है कि बाइबल में भी सृष्टि के आदि में शब्द ब्रह्म की स्थिति मानी जाती है। संगीत के सप्तस्वरों का आदि रूप नाद ब्रह्ममय ओंकार है। यही परमपुरुष परमेश्वर की स्वरमय आदिवाणी है। यह शब्द भी है और स्वर भी है। संसार में जब कुछ नहीं था अर्थात् आकाशवादि पंचभूतों का जब अस्तित्व नहीं था तब केवल 'ओंकार' था। तात्पर्य यह है कि भारतीय वैदिक मत संगीत की उत्पत्ति को पंचभूतों से भी प्राचीन मानता है।1

पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर की पुस्तक में इसी धारणा पर आधारित चौताल में बद्ध ध्रुपद राग भैरव में प्रस्तुत है -

प्रथम आद नाद ब्रह्म, जो जासो भया है सब ही विस्तार।
शब्द पवन अग्नि पानी धरित्री माया माई सृष्टि रची करतार।।[2]

राग मालकौंस में निबद्ध ध्रुपद वे शब्द इस प्रकार है :-

स्थायी - नाद को विस्तार करके दिखाय, तो ही मैं जाँनू वा को बड़ो ज्ञान

अन्तरा - जे जे गुनी ते ते सब जानत, यह कठिन बात, गुरु से पूछ ले यही ज्ञान।

संगीत में स्वर एवं ताल को संयोजित किया जाता है। स्वर, ताल छन्दों का संबंद्ध देवताओं से जोड़ा गया है। महादेव आदि देव हैं, वे ही यथा शिव, शंकर, पंचानन, त्रिनेत्री, त्रिशूलधारी, विश्वनाथ, गौरीशंकर हैं। महादेव शिव वह चेतना हैं जो सभी कर्मो एवं परिवर्त्तनों से परे है। सारा अस्तित्व उनका हिस्सा है। महादेव आध्यात्मवादियों को आकर्षित करते हैं, निराकार एवं आकार के उपासकों को भी।

शिव तत्त्व तीन अवस्थाओं में वर्णित है -

(1) अरूप (निराकार) (2) रूपारूप (साकार निराकार) (3) सरूप (साकार)

अरूप - अरूप अवस्था में कोई आकार, रंग या बनावट नहीं होती तैतिरीय उपनिषद् में कहा गया है-

यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्यमनसा सह।
जिसका वर्णन या कल्पना नहीं की जा सकती।

इस अवस्था में आदि-अन्त, संकोच-विस्तार, प्रस्तारणा-अभिसारणा, ये लागू नहीं होती। यह अवस्था चैतन्य रूप का द्योतक है। ब्रह्माण्ड की सृष्टि के पहले की यह अवस्था है।

रूपारूप - रूपारूप अवस्था में निराकार से साकार में आविर्भाव होता है। सूक्ष्म से स्थूल रूप में परिवर्त्तित होने की यह अवस्था है। काशी विश्वनाथ में स्थित लिंग, जिसे बान लिंग कहते हैं, वह रूपारूप अवस्था है।[3]

सरूप - सरूप अवस्था में शिव कई आकार ग्रहण करते हैं। 'स' - 'सह' के अर्थ में स्थापित है, अर्थात् सरूप आकार के साथ ही यह अवस्था है। ईशान, पशुपति, रूद्र उग्र, भीम, महत्त इत्यादि सरूप अवस्थाएँ हैं। प्राचीन दर्शन कहता है कि परमात्मा मानव के पास आने में विभिन्न आकार लेते हैं। वे स्वयं योगी हैं। उनका वंश ध्वनि है। शिव की पहली अभिव्यक्ति ध्वनि के रूप में है।

शिव के साकार एवं निराकार रूपों में शास्त्रीय संगीत में बंदिशें प्राप्त है।

राग आभोगी में तीन ताल में निबद्ध मध्यलय की बंदिश इस प्रकार है-

स्थायी - जगत पत सब सुख निदान
करन हार सुमरिन कर
सुर नर मुनि पावत परम धाम

अन्तरा - निराकार ते भव सरूप
निरगुण सो सब गुणन खान
निरंजन करुणाधन नील धवल
ध्यावत श्याम राम।

राग झिंझोटी, तीन ताल में निबद्ध एक सुंदर रचना के बोल हैं -

स्थायी - पति देवन महादेव शिव शम्भू,
एक कर राख त्रिशूल एक डमरू

अन्तरा - चन्द्र बदम्बर ओढ़े भस्म लगाय,
अमर पिया पतहूँ।

रागों का ध्यान मूर्त्तियों में निरूपण :-

अखण्ड, अनन्त, इन्द्रियातीत, निर्गुण, निराकार ब्रह्म जब साकार बना, तभी वह दृष्टिगोचर हुआ, उसकी सगुणोपासना की परम्परा चली।[1]

भारतीय संगीत के इतिहास में मध्यकाल महाकाव्यों का काल रहा है। जहाँ संगीत एवं साहित्य दोनों का समन्वय बनाते हुए संगीतविदों ने कई छन्द बनाए। शास्त्रीय संगीत में मध्यकाल तक रागों का अस्तित्व पूर्णतः आ चुका था। रागों का ध्यान मूत्तियों में निरूपण करते हुए सांगीतिक ग्रंथ लिखे गए। जिनमें अहोबल कृत संगीत पारिजात, पं. लोचन कृत राग तरंगिणी आते हैं। ग्रंथकारों की विशेषता यह रही कि रागों को दैविक एवं मानव रूप में चित्रित कर उसे कविताओं, पदों एवं छन्दों में व्यक्त किया। छन्द काव्यात्मक अभिव्यक्ति का अभिन्न अंग प्रारंभ से रहा है। राग तरंगिणी में आदि राग भैरव के रूप में शिव वर्णित हैं पं. लोचन के शब्द -

राग तरंगिणी प्रथम तरंग -

शिरहिं गंग अंगहि भुअंग, भूषण शशि भालहिं
विषयम नयन, चित उदित चेंन आसन गजरवालहिं
नर कपाल धर, धवल रूप कर शूल सुलच्छन
हरसरूप, सब राग भूप, सित वसन बिलच्छन
जग सकल राग-रागिनी भवन, आदि राग जेहि कहत सब
सब समए गेय गुन अतिनिपुन, भैरव, सुनि सुखदेव भुव।

सूलताल में राग भैरव में निबद्ध एक धुपद में महादेव वर्णित हैं यथा । -

स्थायी - आए भैरव भोलानाथ, भैरवी अर्धांगी
फौं फौं फौं करत, भूषण नाग

अन्तरा - नन्दी की असवारी, आनंदि सोहे
एक कर सोहे कैची, बाहन को बोध

अन्य बंदिश धीने त्रिताल में इस प्रकार प्रस्तुत है - राग कौंसी

स्थायी - हे महादेवा हे त्रिपुरारी,
नीलकंठ त्रिशूल कर धारी

अन्तरा - हाथ पिनाक गले ब्याल विराजे,
भेष अमंगल मंगलकारी
शिव को देवों के देव माना गया है।

इसी भावना पर आधारित राग देवगिरी में बिलावल मध्यलय की बंदिश अत्यंत लोकप्रिय है -

स्थायी - देवन देव महादेव,
त्रिशूल खपर डमरू लिये।

अन्तरा - वाहन बैल ललाट चन्द्रमा विभूति
दिए।

इस प्रकार गायन की विभिन्न शैलियों में जैसे- धुपद, विलम्बित, द्रूत ख्याल में महादेव को केन्द्रित कर बंदिशें प्राप्त हैं। लोक संगीत में भी होली के गई गीतों में महादेव शंकर गाए जाते हैं। मिथिला क्षेत्र में प्रचलित 'नाचारी' एवं 'महेशवाणी' पूर्ण रूपेण शिव पर आधारित गीत हैं। हर हर महादेव के कीर्त्तन अत्यंत लोकप्रिय हैं।

भारतीय संगीत गायन, वादन एवं नृत्य का समन्वय है। वैदिक काल में ही संगीत की तीनों विधाएँ लोकप्रिय हो चुकी थीं। यज्ञ कार्यों के लिए इनका प्रयोग होता था। यद्यपि उनका लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति ही था। वही संगीत परवर्त्ती कालों में मार्गी संगीत के रूप में गाया गया। मार्गी अर्थात् जो ईश्वर का मार्ग है। आचार्य मतंग ने देशी और मार्ग संगीत तथा प्रबंधों को शंकर के मुख से उद्भूत बताया है। लव-कुश ने श्री राम के सामने मार्गी संगीत ही प्रस्तुत किया था। राम स्वयं एक श्रेष्ठ गंधर्व थे। मंगल गान की चर्चा रामायण एवं महाभारत दोनों में की गयी है। नृत्य की चर्चा महाभारत में बताई गई है कि अर्जुन स्वयं एक श्रेष्ठ नर्त्तक थे जिन्होंने, इन्द्र की आज्ञानुसार नृत्य की शिक्षा गंधर्व चित्रसेन

द्वारा प्राप्त की। मतस्यपुराण में भी वैदिक काल में समूह नृत्यों के वर्णन हैं।

नटराज :- शिव 'नटराज' रूप में वंदनीय हैं। नटराज अर्थात् नृत्य का राजा। शिव प्रदोष में वर्णित है कि तीनों लोकों की जगद्धात्री माता रत्न जड़ित सिंहासन पर विराजमान हैं, कैलास पर्वत की ऊँचाइयों पर शूलपाणि शिव नृत्य कर रहे हैं, सरस्वती वीणा, इन्द्र बाँसुरी, लक्ष्मी गायन, विष्णु स्वयं तालवाद्य बजा रहे हैं। गांधर्व, यक्ष, अप्सराएँ, सिद्ध, साध्य, विद्याधर तीनों लोकों के प्राणी इस अदभुत् दृश्य को देखकर आह्लादित हैं।

दूसरे प्रकार शिव ताण्डव नृत्य में शिव भैरव या वीरभद्र के रूप में रौद्रपूर्ण तामसिक भाव लिये हुए हैं। वे आग की लपटों के बीच, दस हाथों सहित, काली के साथ नृत्य करते हैं। एलोरा, एलीफेन्टा, भुवनेश्वर की मूत्तियों में उनका यह नृत्य रूप दिखाया गया है।

तीसरा प्रकार नटराज का आनन्द ताण्डव है। मान्यता है कि देवताओं ने क्रोधवश शिव को चुनौती दी। एक व्याघ्र को अग्नि की लपटों से सृजित किया। व्याघ्र, सर्प तथा राक्षस ने बौने के रूप में शिव पर प्रहार किया। शिव ने व्याघ्र के चर्म को उसके शरीर से अलग कर अपना वस्त्र बना लिया, सर्प को माला बना अपने गले में धारण कर लिया तथा राक्षस को पैरों के नीचे दबा लिया। सिर पर गंगा एवं चन्द्र से सुशोभित शिव का एक हाथ अभय मुद्रा में है, दूसरे हाथ में डमरू, तीसरे हाथ में अग्नि है तथा चौथा हाथ पैरों तले राक्षस को इंगित करता है।

संगीत कला स्वर्गीय है। ब्रह्माण्ड लयलीन है, शिव सर्वत्र मंगल रूप में विद्यमान हैं। गहन साधना, शान्त मन एवं चित्त की एकाग्रता से उनकी अनुभूति की जा सकती है। यह वह अवस्था है जहाँ ॐ ध्वनि मानस मन, अस्तित्व एवं इंद्रियों में प्रतिध्वनि होती है।

ऊँकारं बिन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ऊँकाराय नमो नमः।।
नमन्ति ऋषयो देवा नसनत्यप्सरसां गजाः।
नरा नमनित देवेशं ककाराय नमो नमः।।

संदर्भ ग्रंथ -

भारतीय संगीत का इतिहास - ठाकुर जयदेव सिंह
भारतीय संगीत शास्त्र - पं. तुलसीराम देवांगन
भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन - डॉ. अरुण कुमार सेन

फुटनोट

1. पं. तुलसीराम देवांगन -भारतीय संगीत शास्त्र पृ. -232
2. पं. तुलसीराम देवांगन - भारतीय संगीत शास्त्र पृष्ठ-8
3. पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर - संगीत बाल प्रकाश, भाग 3 पृष्ठ 110
4. डी.के हरि - अंडरस्टैंडिंग शिव पृ.-26
5. पं. तुलसीराम देवांगन - भारतीय संगीत शास्त्र पृ. 233
6. पं. भातखंडे - क्रमिक पुस्तक मालिका - पृ. 200
7. पं. रामाश्रय झा - अभिनव गीतांजलि - पृ. 94

संगीत में शिवशक्ति

डॉ. गजानन रणदिवे

श्रीराम कॉलनी, नागदा जं.
तहसील-खाचरौद, जिला.–उज्जैन, मध्यप्रदेश

भारत में संगीत की समृद्धशाली परम्परा आदिकाल, प्रागैतिहासिक काल से ही रही है। संगीत की इतनी प्राचीन एवं इतनी समृद्ध परम्परा कुछ ही देशों में पाई जाती है। ऐसा भी माना जाता है कि संगीत का प्रारम्भ सिंधु घाटी की सभ्यता के काल में हुआ है। हालाकि इस दावे के एकमात्र साक्ष्य है, एक नृत्य बाला की मुद्रा में कांस्य मूर्ति और नृत्य, नाटक और संगीत के देवता रूद्र अथवा शिव की पूजा का प्रचलन भारत में सांस्कृतिक काल से लेकर आधुनिक युग तक आते-आते संगीत की शैली में अधिक परिवर्तन हुए है। भारतीय संगीत में यह माना जाता है, कि संगीत के आदि प्रेरक शिव और सरस्वती है। इससे हम यह निष्कर्ष लगा सकते है कि मानव इतनी उच्च कला को बिना किसी दैवी प्रेरणा के, केवल अपने बल पर विकसित नही कर सकता।

एक ग्रंथकार के मतानुसार, ''नारद ने अनेक वर्षों तक योग-साधना की, तब शिवजी ने उन्हें प्रसन्न होकर संगीत-कला प्रदान की। पार्वती की शयनमुद्रा को देखकर शिवजी ने उनके अंग-प्रत्यंगों के आधार पर रूद्रवीणा बनाई और अपने पाँच मुखों से पाँच रागों की उत्पत्ति की। तत्पश्चात् छठा राग पार्वती के मुख द्वारा उत्पन्न हुआ। शिवजी के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और आकाशोन्मुख होने से क्रमशः भैरव, हिंडोल, मेघ, दीपक और श्री राग प्रकट हुए, तथा पार्वतीजी द्वारा कौशिक राग की उत्पत्ति हुई। ''शिवप्रदोष'' स्तोत्र में लिखा है कि त्रिजगत् की जननी गौरी को स्वर्ण-सिंहासन पर बैठाकर प्रदोष के समय शूलपाणि शिवजी ने नृत्य करने की इच्छा प्रकट की। इस अवसर पर सभी देवता उन्हें घेरकर खड़े हो गए और बजाना आरंभ किया, लक्ष्मीजी गाने लगीं और विष्णु भगवान् मृदंग बजाने लगे। इस नृत्यमय संगीतोत्सव को देखने के लिए गंधर्व, यक्ष, पतंग, उरग, सिद्ध, साध्य, विद्याधर, देवता, अप्सराएँ आदि सब उपस्थित थे। बड़े ही आनन्द के साथ ताण्डव सम्पन्न हुआ। इस समय श्री आद्या भगवती पार्वती जी परम प्रसन्न हुईं, और उन्होंने श्री शिवजी से पूछा, कि आप क्या चाहते है? आज बड़ा ही आनन्द हुआ। फिर सब देवों से, विशेषकर नारद जी से प्रेरित होकर उन्होंने यह वर माँगा कि, ''हे देवी! इस आनन्द को केवल हम लोग ही लेते हैं, किन्तु पृथ्वीलोक में एक ही नहीं, हजारों भक्त इस आनन्द से तथा नृत्य-दर्शन से वंचित रहते हैं, अतएव मृत्युलोक में भी जिस प्रकार मनुष्य इस आनन्द को प्राप्त कर सकें ऐसा कीजिए, किन्तु मैं अपने **'ताण्डव'** को समाप्त करूँगा और **'लास्य'** करूँगा' इस बात को सुनकर श्री आद्या भुवनेश्वरी महाकाली ने 'एवमस्तु' कहा और देवगणों से मनुष्य-अवतार लेने को कहा तथा स्वयं श्यामा (आद्या महाकाली) श्यामसुन्दर का अवतार लेकर श्री वृन्दावन धाम में आयीं। और श्री शिवजी ने राधा जी का अवतार लेकर ब्रज में जन्म लिया, एवं देवदुर्लभ **'रासमण्डल'** की आयोजना की, और वहीं पर **'नटराज'** की उपाधि श्यामसुन्दर को दी गयी।''

भारतीय शास्त्रकारों के मत में वाद्यों की उत्पत्ति का कारण देवाधिदेव शंकरजी है। दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करने के पश्चात् उद्वेग को शान्त करने के लिए भगवान शंकर ने नन्दी, नारद, तुम्बरू इत्यादि को वाद्य-निर्माण के लिए प्रेरणा दी, फलस्वरूप वाद्यों का जन्म हुआ।

शिवस्तुति, शिवपरन, कवित्त, तांडव यह सब भगवान शिवजी की ही निर्मिति है ताडंव नृत्य में मिश्र जाति की ताल का प्रयोग हुआ था। ताल की उत्पत्ति भगवान शिवजी की आज्ञा से भगवान गणेशजी ने की थी, डमरू और मृदंग ताल का ही प्रतीक है। शिवजी ने त्रिपुरासुर राक्षस का वध किया था, उस समय भगवान ने शक्ति का प्रदर्शन तांडव नृत्य के साथ किया था। उनके हावभाव और प्रदर्शन से नृत्य बन गया। बाद में उसी को **''तांडव''** कहा गया। क्रोधित शिवजी को पार्वती ने मनाया उसी को **''लास्य''** कहा गया। इसीलिए भी सभी देवताओं ने शिवजी को देवों के देव महादेव, आदिदेव, भोलेशंकर कहलाए। इस शक्ति-महाशक्ति के साथ समन्वय होने से उसका रूप **''अर्धनारिश्वर''** प्रदर्शित हो गया।

नाहम वसामी वैकुंठे, योगिनाम हृदय नच।
मतभक्ता यत्र गायंती, तत्र तिष्ठामी नारद।।

अर्थात् न मैं वैकुंठ में रहता हूँ, न मैं योगियों के हृदय में रहता हूँ, जहाँ मेरा गायन होता है, वहीं मेरा निवास होता है। अर्थात् गायन करने वाले के हृदय में शिवजी का वास रहता है, और गायन करने वाले कलाकार भगवान के प्रिय होते है। भगवान शिवजी हमेशा ध्यानमग्न रहते है, ऐसे ही कलाकार भी संगीत के द्वारा शिवशक्ति प्राप्त करके ध्यानमग्न हो जाते है। मानसिक शांति मिलती है, आत्मविश्वास बढ़ता है, एकाग्रता बढ़ती है, संगीत के द्वारा भी मोक्षप्राप्ति होती है।

आर्यों के आदि देवता ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं। इनमें ब्रह्माजी को जगत् का उत्पन्न करने वाला, विष्णु भगवान को जगत का पालन करने वाला और महेश को संसार का संहार कर्ता कहा गया है। माना गया है कि महादेवजी ने **''पिनाक''** का आविष्कार किया। इसे तन्त्र वाद्यों का पिता कहा जाता हैं, जब महादेवजी ने त्रिपुर राक्षस का संहार कर दिया तो वे प्रसन्नता से नाचने लगे। उनके नाच में ताल की संगति करने के लिए ब्रह्माजी ने उनके पुत्र गणेशजी को डमरू नामक ताल-वाद्य बनाकर दिया।''

भगवान शिवजी की कुछ बंदिशें

1. देवन देव महादेव त्रिशूल खप्पर डमरू लिये - त्रिताल - राग - बंगाल बिलावल
2. शिव-शिव-शिव शंकर गिरिजापति - सुलताल - राग - अड़ाना
3. पूजन चली महादेव - धृपद - चौताल - राग - मालकौंस
4. देवन देव महादेव हर कर - त्रिताल - राग - कल्याण
5. शिव रण नमामि नमामि - त्रिताल - राग - कल्याण
6. हरो महादेव जन की भव भीर - ताल - झूमरा - राग - चंद्रकौंस
7. डमरू धरे कर त्रिशूल अरधंग रूप बैल बिराजै - त्रिताल - राग - सावनी
8. डमरू बाजे डिमिक डिमिक, निरतत हर उमगि उमगि - एकताल - राग - गुर्जरी तोडी
9. हे महादेवा हे त्रिपुरारी नी कन्ठ त्रिशूल कर धारी - त्रिताल - राग - कौंसी
10. मुनि महादेव अब गुनी हरि सकल गुन धाम - त्रिताल - राग कौंसी
11. देव महादेव कीजै कृपा, संकट हरन देव देत सुख सम्पदा - झपताल - राग - लंका दहन सारंग

भगवान शिव मूल रूप से संगीत और नृत्य के प्रेमी रहे है। भगवान शंकर डमरू बजाकर अपनी शक्ति आराधना के साथ जनमानस को देवी-देवताओं तथा भूतमंडली को आनंदित करते थे। शंकर भगवान के डमरू के निनाद से ही संस्कृत ही सभी भाषाओं की जननी होने से साहित्य, सांस्कृतिक व क्रीड़ा का जितना भी प्रचार-प्रसार आज हुआ है। उसके मूल

में भगवान शंकर का डमरू ही निव के पाषाण के रूप में रूपित है। चारों वेदों की उत्पत्ति संस्कृत में ही हुई, वहीं सामवेद का उपवेद जिसे गांधर्व वेद कहते है। जिसके रचियता महर्षि नारद को माना है। गायन-वादन और नर्तन इस वेद के प्रमुख अंग माने जाते है। प्रथम लेखन से पूर्व वेदों को कंठाग्र किया जाता रहा है, पश्चात् उनका स्वरूप लेखन में हमारे बीच आज मौजूद है। गांधर्व शास्त्र जिस भाषा में लिखा गया है, वो भाषा संस्कृत थी, और भगवान शंकरजी के डमरू के निनाद से उत्पन्न हुई है। प्रस्तुत विषय संगीत में शिवशक्ति आज पूर्व रूप से खरा उतरते हुए, संगीत के प्रारंभ में शिव पूर्ण रूप से विराजित थे। उनके डमरू को आधार मानते हुए, धीरे-धीरे कई वाद्य प्रयोग में आए, वहीं भगवान शिवजी का तांडव नृत्य जग विख्यात हुआ। यह भी निर्विवाद सत्य है कि, बिना वाद्य के कोई भी नृत्य संभव नही हैं। अतः आज विश्व के जितने भी नृत्य जिन साज-बाज के साथ संपादित होते हैं, उनके मूल में स्वयं शिवजी ही विराजित है। शिवनाम अपने आप में कल्याणकारक है इस दृष्टि से भी संगीत का कोई भी क्षेत्र हो बिना शिव के वह अपूर्ण है। शिवजी का तांडव नृत्य इतना प्रभावकारी रहा था, यह मुझे कहने की आवश्यकता नही है। धर्मग्रंथों में और पुराणों में इनकी महिमा भरी विस्तार पूर्वक वर्णित है। वर्तमान में भी हम देखते हैं कि संगीत सुनते ही हमारी सोयी हुई आत्मा जाग जाती है। प्रायः लता गुल्म व पशु-पक्षियों पर भी संगीत का प्रभाव देखा जा रहा है। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए इसके इर्द-गिर्द संगीत की सारी विधा चाहे वह गायन हो, वादन हो या नृत्य ही क्यों न हों पूर्णरूपेण हम जीवन में सफल होते हुए अपने प्रयोगात्मक रूप से इसका सकारात्मक प्रतिफल पाते है।

संगीत की प्रत्येक विधा आदिकाल और अनंतकाल का प्रतीक रही है। जिसे अगर हम भगवान शिवजी से जोड़ते हैं, तो संगीत के प्रत्येक क्षण के साथ-साथ प्रकृति के प्रत्येक कण में शिवजी के रूप का आभास करते है। जिसमें शिवजी के प्रिय स्थल श्मशान से लेकर हिमालय की विशाल और विराट हिम से युक्त शिवजी के सिहांसन रूपी कैलाश पर्वत और मानसरोवर भी शिवमय होकर स्वयं को संगीत में एक अभिनव और तरंगित प्रस्तुति प्रदान करते है। शिवजी का संगीत सदैव भक्तों से आत्मियता के साथ एक आध्यात्मिक प्रस्तुति के रूप में जनमानस में सदैव एक अनुकरणीय प्रस्तुती रहा है, चाहे वह तांडव के रूप में हो, या शिवजी के रौद्र रूप में हो। जब भी भक्त और शिव एक दूसरे से साक्षात्कार करते हैं, तो शिवजी सहजता से संगीत के माध्यम से अपने भक्तों की दूरियाँ मिटा देते है। ये शिवजी का सदैव भक्तों के बीच एक अनूठा संबंध रहा है, शिवजी को अगर हम शक्ति के रूप में देखते है तो वह वीणा के तारों के रूप में हमारे आध्यात्मिक और सांस्कृतिक जीवन को एक नई दिशा प्रदान करते है। भारत में चाहे वह दक्षिण के रामेश्वरम् तट हो, जो हिंदमहासागर की लहरों में अटखेलियाँ करता हुआ हिंदमहासागर के जल का अभिषेक रामेश्वरम् के शिवलिंग को अपने संगीतमय लहरों के द्वारा पृथ्वी के आज से लाखों वर्ष पूर्व उत्पत्ति के साथ ही शिवाभिषेक कर रहा है। शिवजी का हिन्दुस्तान के प्रत्येक कोने में प्रकृति ने संगीतमय प्रस्तुतीकरण किया है, जो दक्षिण के बाद हम पश्चिम भारत के स्वराष्ट्र तट पर अरब सागर के द्वारा सोमनाथ के मंदिर में लहरों के अभिषेक से दृष्टिगत करते है। पूर्व में ये हमें शिव के विभिन्न रूपों के रूप में झंकृत करते है। उत्तर में केदार और बद्रीविशाल संपूर्ण हिमालय को अपने शिवरूपी कंधों पर विराजे रखे हैं, यहीं भारतभूमी की विश्व को संगीतमय प्रकृति जन्य प्रस्तुतियाँ हैं। जो आदिकाल से ही शिव के भक्तों, चाहे वो अब्दुल रहीम के रूप में हो या संत हरिदास के रूप में हो। देवी-देवताओं ने शिवजी के रूप में अवतरित होकर हमे मालवा में वीर तेजाजी, देवनारायणजी और रामदेवपीर के रूप में भी सदैव पशुरक्षक, प्रकृतिरक्षक, गौरक्षक और पर्यावरणीय सचेतक के रूप में

पल-प्रतिपल लोगों को स्थानीय बोली और भाषाओं में लोकसंगीत और लोकगीतों के द्वारा संगीत को एक सहज और सरल रूप में जो शास्त्रीय संगीत से भिन्न था, जो आम बोलियों-भाषाओं से प्रेरित होकर जनमानस के रग-रग में शिवमय हो गया। शिवजी की इस महिमा का भारत के प्रत्येक कालखंड में एक अनुकरणीय देन के रूप मैं मानता हूँ। शिवजी की इस सहजता को स्वीकार करता हूँ। इस विषय को चुनने का मेरा निर्णय शिव के प्रति मेरी एक अगाढ़ श्रद्धा, विश्वास और भक्ति शिव की संगीतमय आस्था का प्रतीक रही है। भोलेनाथ शिव सदैव मेरे वाद्ययंत्रों की झंकार से ही मेरे अंदर समा जाते है। शिव की इस ईश्वरीय भक्ति को भारत के करोड़ों लोग मंदिरों की घंटीयों के रूप में नगाड़ों की थाप के साथ और पक्षीयों की कलरव ध्वनि में महसूस करते है। क्योंकि शिव में हम जब नंदी को देखते है तो, उन गायों की गले में बंधी घंटीयों के द्वारा भी हमें गौरूपी नंदी का संगीतसार दृष्टिगत होता है। अतः मैं स्वतः को बड़ा सौभाग्यशाली मानता हूँ कि मैं इस जंबू द्वीप पर शिव की अराधना और भक्तिपीठों के साथ आध्यात्मिक अहसास करता हूँ। आज मैं इस विषय से साक्षात्कार करते हुए पूर्णतः प्रकृतिजन्य प्रत्येक क्रियाओं में शिव की शक्ति को नमन करता हूँ।

भारत में गंगा-जमुना संस्कृति को हम शिव के आर्शीवाद के रूप में महसूस करते है। यहाँ पर उस्ताद अल्लारखा खाँ से लेकर उस्ताद बिसम्मिल्ला खाँ ने इस गंगा-जमुना संस्कृति को पूर्ण आवेग के साथ भाईचारा सामाजिक सौहार्द्र, राष्ट्रवाद, सांस्कृतिक सहभागिता तथा भारत के सभी समाज और जातियों में परस्पर सामाजिक समरसता को संगीतमय रूप में स्थापित करने का प्रयास किया है। जिसे हम आधुनिक भारत के प्रथम शिक्षामंत्री मौलाना अब्दुल कलाम साहब में उनकी वैज्ञानिकता के साथ शिवभक्ति में देख सकते है जो हमारी गंगा-जमुना संस्कृति का इतिहास के प्रत्येक कालखंड में गवाह रहा है। भारत में हम कालिदास समारोह, कलिंग समारोह, कोणार्क उत्सव, कच्छ उत्सव, सिंधु-सतलज महोत्सव जो हिमालय की तलहठी में शिव के संगीत के साथ आयोजित होते है। कागंड़ा महोत्सव जो हिमालय के पहाड़ों को शिवमयी भक्ति के साथ सोमबंध करते है। कांगड़ा से कामाख्या तक का संपूर्ण हिमालय का तराई प्रदेश हमे शिव के संगीत के साथ पहाड़ी नगाड़ों में हिमालय के आगोश में डूब जाने के लिए प्रेरित करते है। स्वयं भगवान श्रीराम ने भारत के दक्षिणी छोर में लोगों को शिवमय संगीत में आभास देने के लिए स्वयं अपने हाथों से शिवलिंग का निर्माण किया। केरल और तमिलनाडु की नीलगिरी पहाड़ियों में हमे कुर्ग-बल्हारी और हाड़ा जनजातियों में भी शिवशक्ति का तथा दक्षिण भारत के मंदिरों में औज जन-जातियों में भारत की समरसता को महसूस कराते हैं, आज भी हमारे देश में सावन, भादो और कार्तिक माह में एक लोक कहावत प्रचलित है, **"तीज त्यौहारा बावड़ी ले डूबी गणगौर"** अर्थात समस्त त्यौहार का आगाज तीज के त्यौहारों के साथ होता है। शिवपार्वती के रूप में इसर संगीत के साथ होता है, ये संगीत के शिवशक्ति की महिमा हमारे ग्रामीण अंचलों और भारत के असली भू-दृश्य को संगीतमय आभा देते है। जो ग्रामीण मेलों के रूप में, कांगड़ा के दशहरे के रूप में, माँ बम्लेश्वरी की अराधना के रूप में तथा कावड़ यात्रियों के रूप में सावन में महसूस होता है। बाबा महाकाल की नगरी उज्जैयनी में श्रावण महोत्सव, कालिदास महोत्सव, पं. जितेंद्र अभिषेकी महोत्सव होते है। इन्हीं महोत्सव के माध्यम से शिव का संगीत जन-जन तक पहुँचाया जाता है। शिवजी का और संगीत का संबंध घनिष्ठ है, इसलिए भारतीय शास्त्रीय संगीत में उनके नाम से शिववंदना और बहुत सी बंदीशें भी सुनने को मिलती है। कुंभ मेलों के आयोजन के द्वारा भारतीय संगीत को शिवशक्ति के साथ जोड़कर अंतर्राष्ट्रीय पहचान मिलती है। इसीलिए कहा जाता है कि, ये कुंभ के मेले देश-विदेश के भक्तों को नदियों के रूप में तथा सागर के रूप में सभी भक्तों को मिलन

का आभास कराते है। यही भारत की अंतरर्राष्ट्रीय धरोहर है। इतने लोगों के एकत्रित होने से ऐसा लगता है, जैसे कुंभ मेले को स्वयं भोलेनाथ का ही संचालन प्राप्त हो रहा है। अतः मैं आज इस लेखन को लिखते समय भावविभोर हो रहा हूँ, और अपने समस्त गुरूओं को जिन्होंने मुझे इस संगीतमय ईश्वरीय शिवशक्ति का आभास कराया उन सभी का आभार मानता हूँ। भारत की इस महान परंपरा को शिवशक्ति के रूप में महसूस कर इस बहुत ही महत्वपूर्ण विषय को विराम देता हूँ जय बाबा महाकाल।

संदर्भ सूची :-

1. संगीत विशारद -पेज नं. 12, 649, 568 - लेखक - डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग
2. भारतीय संगीत का इतिहास-लेखक-भगवतशरण शर्मा
3. साथियों के साथ चर्चा तथा विचार विमर्श, वाचन
4. शिवपुराण - गीताप्रेस गोरखपुर - पेज नं. 299
6. Internet side – https//h.m.wikipedia.org, m.hindiwebdunia.com
7. अभिनव गीतांजलि - लेखक- पं. रामाश्रय झा "रामरंग"-भाग-1,2,3,4,5

Shivshakti in Music

Shambhavi[1]

Research Scholar,Baba Saheb Bhim Rao Ambedkar Bihar University, Muzaffarpur, Bihar, India

Rakesh Kumar Mishra[2]

Assistant Professor ,Shyam Nandan Sahay College,Muzaffarpur,Bihar,India

Our universe runs through a supreme power known as divine energy as well as cosmic energy, whose power lies in the hand of "SHIVSHAKTI". ShivShakti is the power of transformation and liberation, which is one of the three main forces, personified in the Hindu god, "Shiva", the transformer and destroyer of evil while "Shakti" act as source of energy by Shiva and called as "Parvati" or "Mahadevi". It is very interesting to know how and when "Divine energy" came into existence in the field of "Music". The "Divine energy" communicated the "Divine mantra" to Rudra "Shivshakti" ,when they were in deep meditative state, it occurred when "World" suffered from negativity, worshipped different god and even cross connect belief systems but instead not satisfied from within, during that time "Divine energy" converge and collectively proceeds the people of the world towards the universal truth of "Shivjyoti", the pure divine fire in shape of "Third –Eye". Shiva, "Principle of Changelessness" which represents unmanifest , formless and consciousness whereas Shakti "Principle of Change" which represents manifest, formed and energy, such that root of Shakti are in Shiva, both in the ultimate sense one and the same, this dissolution of duality is the aim of "Tantra" which inturns helps in yoga. "Mantra Shakti" is the universal cosmic energy as personified by Hindu mother goddess, Shakti, which evoked by the repetitive recitation of a single syllable, word or series of phrases with specific meanings such as (1) Adi Shakti Mantra,which calls goddess protective energy to eliminate fear and fulfill desires,(2) Sarab Shakti,all encompassing power, (3) Prithum Bhagwati, divine creation and (4) Kundalini Mata Shakti, mother of all energy. Shakti Mantras (Bija Mantras) in the form of music chanted in Tantra Yoga and meditation to understood Shakti, access energy, power and creativity in themselves and universe ,which overall transform prana and consciousness at the deepest levels. The

Keywords: Mantra shakti, Meditation, Music, Shivshakti,Tantra yoga,Third eye.

main Shakti mantras and their energies are pronounced as (a) Om (Panic energy), (b) Aieem (Sound), (c) Hreem (Solar), (d) Shreem (Lunar), (e) Kreem (Electric), (f) Kleem (Magnetic), (g) Hum (Fire), (h) Hleem (power to stabilize) and (i) Treem (Power to transcend). Overall aim of present study is to depict the power of Shivshakti in the field of music, which empowered Universe in energetic way to remove all fears, misery and undesires and further shifted to a new sphere full of peace ,satisfaction and happiness.

शिव शक्ति का एकात्मक स्वरूप एवं संगीत में शिव की महिमा

स्नेहा कुमारी

स्नातकोत्तर संगीत विभाग

ति. मां. भा. वि. वि., भागलपुर

सारांश

शिव मृत्युंजय हैं तो शक्ति काली, तारा भुवनेश्वरी हैं। निराकार ब्रह्म जब साकार रूप धारण करता तब वह महाशून्य से प्रकट होकर सगुण रूप धारण कर लेता है फिर वह शिव कहलाता है। और उसकी शक्ति मॉ भगवति ही मूल आदि शक्ति के नाम से विख्यात है। जीव कई पाशों में बॅधा है वह आत्मदर्शन की चाह रखता है। आत्मा परमात्मा के दर्शन की चाह रखता है। शिव और शक्ति साकार रूप धारण कर जीव का कल्याण करते हैं। मातृसत्ता की कृपा के बिना यह सृष्टि नहीं बन सकती। इसलिए संसार में जहॉ 'म' है वहीं पूर्णता है। राम में 'म' श्याम में 'म' प्रेम में 'म' आत्मा में 'म' परमात्मा में 'म' परंतु परमात्मा में दो 'म' शिव शक्ति की एकता का बोध कराते हैं।

भगवान शिव की लीलायें सम्पूर्ण ब्रहमाण्ड में व्याप्त हैं। लीलाभिनय के लिए प्रभु इस जगत की सृष्टि करते हैं। एवं अन्तर्यामी रुप से स्वं भी इसमें प्रविष्ट हो जाते हैं। और आवश्यकता पडने पर व्यक्त रुप में भी प्रकट होते हैं। शिव की घोर एवं अघोर रुपों में व्याख्या मिलती है। भगवान शिव की संहारलीला की मूर्ति धोर एवं रक्षक तथा पालन पोषण की मूर्ति अघोर कहलाती है। द्वादशज्योतिर्लिंग, वाणलिंग, स्वंभूलिंग, आदि भगवान शिव के लिंग रूप में पाकाटय के द्योतक हैं। रूद्र, शिव, मृड, भव, मृत्युंजय, दक्षिणामूर्ति, नटराज, महाकाल, पंचमुख, नीलकंठ, पशुपति, त्रंबक, योगेश्वर, इत्यादि विभिन्न नामों से जगत में जाने जाते हैं। शिव की पत्नि पार्वती इनके शक्ति के रुप में जानी जाती हैं। शिव पुराण के अनुसार शिव शक्ति का संयोग ही परमात्मा है। शिव की जो पराशक्ति है उससे चित्त शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। आनन्द शक्ति से इच्छा शक्ति का उद्भव हुआ। इच्छाशक्ति से ज्ञाणशक्ति और ज्ञाणशक्ति से पॉचवीं क्रियाशक्ति प्रकट हुई। इन्हीं से निवृति आदि कलाएं उत्पन्न हुई हैं।

चित्त शक्ति से नाद और आनन्द शक्ति से बिन्दु प्राकट्य बताया गया है। इच्छा शक्ति से ' म 'कार प्रकट हुआ है। ज्ञाण शक्ति से पॉचवां स्वर 'उ' कार उत्पन्न हुआ है। और क्रिया शक्ति से 'अ' कार की उत्पत्ति हुई है इस प्रणव 'ओम' की उत्पत्ति हुई।

शिव शक्ति एक हीं तत्व के दो महास्वरूप हैं। जिस भांति चित्त के बिना चैतन्य नहीं हुआ जा सकता उसी प्रकार शक्ति के बिना शिव को प्राप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि शक्ति हीं शवि की इच्छायुक्त अभिव्यक्ति हैं। शिव अगर सृष्टि की लीला हैं तो इसकी क्रिया शक्ति हैं। शिव को जानने के लिए शक्ति को पहचानना आवश्यक है। शक्ति ही यथार्थ में शिव तत्व है। यही मूल तत्व शिव के अर्धनारीश्वर होने का रहस्य है। शिव के बिना शक्ति का अथवा शक्ति के बिना शिव का कोई अस्तित्व हीं नहीं है। शिव अकर्ता हैं वो

संकल्प मात्र करते हैं। शक्ति संकल्प सिद्धी करती है। शिव कारण है शक्ति कारक है।

शिव में ईकार हीं शक्ति है। शिव से ईकार निकल जाने पर 'शव' ही रह जाता है। शास्त्रों के अनुसार बिना शक्ति के सहायता के शिव का साक्षत्कार नहीं होता। अतः आदिकाल से शिव शक्ति की संयुक्त उपासना होती रही है। भगवान का अर्द्धनारीश्वर रूप जगत्पिता और जगत्माता के सम्बन्ध को दर्शाता है। सतचित आनन्द ईश्वर के तीन रूप हैं। इसमें सत्यरूप उनका मातृस्वरूप है, चित्तस्वरूप उनका पितृस्वरूप है। और उनके आनन्द स्वरूप के दर्शन अर्द्धनारीश्वर के रूप में हीं होते हैं। सृष्टि के समय परम पुरूष ने अपने वामअंग से प्रकृति को निकालकर उसमें समस्त सृष्टि की उत्पत्ति करते हैं। शिव गृहस्थों के ईश्वर और विवाहित दम्पत्तियों के उपास्य देव हैं क्योंकि अर्द्धनारीश्वर शिव स्त्री और पुरूष की पूर्णएकता की अभिव्यक्ति है। संसार की सारी विषमताओं से घिरे रहने पर भी अपने मन को स्थिर बनाये रखना हीं योग है। भगवान शिव अपने पारिवारिक सम्बन्धों से हमें इसी योग की शिक्षा देते है। अपनी धर्मपत्नी के साथ पूर्ण एकात्मकता अनुभव कर ,उसकी आत्मा में आत्मा मिलाकर हीं मनुष्य आनन्द रूप शिव को पा सकता है।

भारतीय संगीत प्रारंभ से ही अध्यात्म से जुडा हुआ रहा है। इसकी उत्पत्ति के संदर्भ में देवी देवताओं के योगदान की चर्चा हमेशा होती रही है। इसमें भगवान शिव का नाम विशेष उल्लेखनीय है। भारतीय परंपरा के अनुसार कैलाशपति भगवान शंकर ने संगीत को सुचारू रूप में संसार के सम्मुख रखा। शिव ने देवी सरोस्वती को संगीत प्रदान किया। नारद ने उसे देवी सरोस्वती से ग्रहन कर उसे स्वर्ग और भू पर प्रसारित किया। इसी से स्वर्ग और पृथ्वी पर एक रूप में विचरण करने वाले महर्षि नारद की भी कल्पना सदैव वीणा पर गाते हुए की गई है। नृत्यकला के ताण्डव एवं लास्य रूप को शिव तथा पार्वती की देन माना जाता हैं। ऐसा भी माना जाता है कि पार्वती की शयन मुद्रा को देखकर भगवान शिव ने उनके अंग प्रत्यंगों के आधार पर रूद्र वीणा बनाई। और अपने मुख से पाँच रागों की उत्पत्ति की । तत्पश्चात छठा राग पार्वती जी के मुख से उत्पन्न हुआ। शिव जी के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण तथा आकाशोन्मुख से क्रमशः भैरव, हिंडोल, मेघ, दीपक और श्री राग उत्पन्न हुये। एवं पार्वती द्वारा कौशिक राग की उत्पत्ति हुई। शिव प्रदोष स्त्रोत के अनुसार शिव ने गौरी को स्वर्ण सिंहासन पर बैठाकर प्रदोष के समय शूलपाणि नृत्य करने की इच्छा प्रकट की। इस अवसर पर सारे देवता उन्हें घेरकर खड़े हुये और उनका स्तुतिगान करने लगे। सरोस्वती ने वीणा, इंद्र ने वेणु तथा ब्रहमा ने करताल बजाना आरंभ किया। लक्ष्मी जी गाने लगी और भगवान विष्णु मृदंग बजाने लगे। इस संगीतोत्सव को देखने के लिये गंधर्व, यक्ष, पतग, उरंग, सिद्धसाध्य, विद्याधर देवता एवं अप्सराएं आदि उपस्थित थे।

प्राचीन ग्रंथों में मृदंग आदि वाद्यों की उत्पत्ति के अनेक आख्यान प्राप्त होते हैं। मृदंग के लिए कहा जाता है कि शिव ने त्रिपुरासुर विजयपर जो नृत्य किया उसमें संगति देने के लिए ब्रह्मा ने एक अवनद्य वाद्य का निर्माण किया जिसका ढाँचा मिट्टी का था; अतः उसे मृदंग कहा गया । शिव जी का सम्बन्ध डमरू नामक अवनद्य वाद्य से है। एक मत के अनुसार डमरू की ध्वनि 'अइउण', ऋलृक, एओउ, एओच, हयवरट, लण इत्यादि से पाणिनी के चौदह सूत्रों का सूत्रपात हुआ। रूद्रडमरूभसूत्र के अनुसार 'अइउण सरिग स्मृता' अर्थात अ इ उ से क्रमशः सा रे ग, एओड से म प तथा एओच से ध नि स्वर प्रकट हुए । ऋ और लृ नपुंसक स्वर हैं जिन्हे काकली और अंतर कहा जाता हैं। हयवरट आदि शेष दस सूत्रों में जो व्यंजन हैं वो तालोत्पत्ति के कारण हैं।

भारतीय संगीत में विभिन्न राग रागनियों को चित्रों के रूप मे भी उकेरा गया है। वर्तमान समय में बीकानेर के राजकीय संग्रहालय में अन्य शैलियो के अतिरिक्त जयपुरी शैली के चित्रों का सम्पूर्ण सेट सजा हुआ है। इसमें छः राग और तीस रागनियों

का चित्रण है। इसमें सबसे प्रथम भैरव राग एवं उसकी रागनियों का चित्रण है। भैरव राग को शिव का स्वरूप दिया गया है। चित्र के उपरी भाग पर राग का चित्रांकन ठीक कवित्त के आधार पर किया गया है। श्वेत अधोवस्त्र पहने शिव जी सुंदर तरूणियों के बीच आसन जमाए बारादरी में विराजमान हैं। ललाट पर चंद्र ,जटाओं में गंगा ,गले मे मुंडमाला से युक्त औरमृगछाला बिछाए शिव ध्यानमग्न दिखाए गए हैं। इस राग का समय प्रातःकाल है। और इसके मूल स्वर 'ध नि सा रे ग म प ' हैं। भैरव राग की पॉच वधुओं के नाम दोहे के रूप में इस प्रकार दिए गया है।

भैरवी विरारी कही, मधुमाधवी विचारी ।
सैंधवी बंगाली सुनो, ए भैरव की नारी।।

भैरवी रागिनी को कलाकार ने विशाल नेत्रों वाली सुंदर और गौर वर्ण युवति के रूप में दिखाया है। जो श्वेत ओढना ,लाल कंचुकी तथा सुनहरा घाघरा धारण किये हुये है। जलाशय के बीच सुनहरे शिव मंदिर में श्वेत शिवलिंग श्थापित है। और सामने कमल पुष्प पर बैठी नायिका गले में चंपा माला पहने अपने प्रिय शिव को ताल बजाकर प्रसन्न करने में रत है। वैरारी रागिनी को श्वेत वस्त्र से सुसज्जित दिखाया गया है। नायिका के हाथों में स्वर्ण कंगन तथा नागिन के सदृश बाल संवारते हुये बरादरी में बिछे पलंग की ओर अग्रसर हो रही है। अपने पति को रिझाने के लिए मानों पुष्पों से भरा कल्पवृक्ष पृथ्वि पर उतर आया हो। मधुमाधवी रागिनी रति के समान रूपवति है।दसुंदर ऑख, मधुर वचन तथा स्वर्ण जैसे शरीर वाली पीला वस्त्र धारण किये हुये सुसज्जित स्वर्ण पलंग के पास खडी हुईअपने श्वेत वस्त्र धारी पति से चुंबन करवाने में संलग्न है। भैरव की सैंधवी रागिनी विशाल अंग वाली कामातुर नायिका है। जो प्रतिदिन अपने पति पर कामरूपि वाणों से प्रहार करने वाली है। यह लाल वस्त्र धारण किये हुये वायें हाथ में त्रिशूल लिये हुये है। और दाहिने हाथ से श्याम शिव लिंग पर पुष्प चढाते हुए दिखाया गया है। बंगाली भैरव की रागिनी के ललाट पर मनमोहक कस्तुरी का लेप है। यह बालों को बॉधे तथा अंग पर विभूति रमाये हुये है। इस प्रकार अन्य रागनियों का भी वर्णन है।

संदर्भ ग्रंथ सूचि -

1. शिव शक्ति का रहस्य - यशपाल भारती, रणधीर प्रकाशन हरिद्वार, पृष्ठ संख्या - 1
2. कल्याण अवतार कथांग जनवरी 2006, गीताप्रेस गोरखपुर, पृष्ठ संख्या-267
3. भारतीय संगीत एक एतिहासिक विश्लेषण -डॉ स्वतंत्र शर्मा टी. एन. भार्गव एण्ड सन्स इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या-4,5
4. निबंध संगीत-लक्ष्मी नारायण गर्ग,संगीत कार्यालय हाथरस उ.प्र., पृष्ठ संख्या - 431,432,433

संगीत में शिवशक्ति

अभिवन गीताजंलि
राम नारायण झा
स्टाफ आर्टिस्ट
संगीत एवं कला विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

संगीत प्रकृति के कण कण में मौजूद है। भगवान शिव को संगीत का आदि प्रेरक माना गया है। शिव महापुरण के अनुसार शिव के पहले संगीत के बारे में किसी को कोई जानकारी नहीं थी। नृत्य, वाद्य यंत्रों की बजाना कोई नहीं जानता था। क्योंकि शिव ही इस ब्रह्मांड में सर्व प्रथम आये।

प्राचीन धुपदों की वंदिशें हमेशा से शिव के आदि अनादि रूप का गुणगान करता रहा है।

भैरव राग की प्रसिद्ध वंदिशें
आद मध अन्त शिव,

में शिव को ही आदि मध्य और अन्त माना गया है।

गुणकली राग की प्रसिद्ध वंदिश

डमरू हर कर बाजे, के अन्तिम पंक्ति में आदि पुरुष अनन्त हर हर अर्थात् शिव ही आदि पुरूप है।

मालकौश की एक वंदिशें जो वैजूबावरा द्वारा रचित है इसमें कहा गया है,

जन वैजू बावरो, रावरो नाथ पाये, अगम अनादि शंकर सरिस देव को है।

अर्थात् शिव की अनादि रूप की व्याख्या इस वंदिश में की गई है।

नाद और शिव का अटूट संबंध है। दरअसल नाद एक ऐसी ध्वनि है जिसे ॐ कहा जाता है। पैराणिक मत है कि ॐ से शिव का जन्म हुआ है। नाद से ध्वनि और ध्वनि से ही वाणी की उत्पत्ति हुई है। शिव का डमरू नाद साधना का प्रतीक माना गया है।

शिव पुराण के अनुसार शिव भक्ति का संयोंग ही परमात्मा है। शिव की जो पराशक्ति है उससे चित् शक्ति प्रकट होती है। चित्त शक्ति से आनन्द शक्ति का प्रार्दुभाव होता है, आनन्द शक्ति से इच्छा शक्ति, इच्छा शक्ति से ज्ञान शक्ति और ज्ञान शक्ति से क्रिया शक्ति प्रकट हुई है और इन्हीं से निवृत्ति आदि कलाएँ उत्पन्न हुई है।

एक मत के अनुसार संगीत की उत्पत्ति ब्रह्म से हुई। ब्रह्म ने यह कला शिव को प्रदान की और शिव जी से सरस्वती ने इस कला को ग्रहण किया। अतः सरस्वती को वीणा वादिनी कहा गया।

एक अन्य मत के अनुसार-संगीत कला के आदि प्रर्वतक शिव है। शिव, स्वयं में नटराज कहलाते है। नटराज दो शब्दों के मेल से बना है। नट और राज, नट का अर्थ है कला और राज का अर्थ है राजा। भगवान शंकर का नटराज रूप इस बात का सूचक है कि अज्ञानता को सिर्फ ज्ञान संगीत और नृत्य से ही दूर किया जा सकता है। नाट्य शास्त्र में उल्लेखित संगीत नृत्य योग व्याकरण आदि के प्रर्वतक् शिव ही है।

शिव और शक्ति एक दूसरे के पूरक है एवं विभिन्न रूपों में सृष्टि के समस्त तत्वों व्याप्त है। जब पुरुष के रूप में उपास्य हुई तो ईश्वर शिव भगवान के नाम से संज्ञापित हुई और जब स्त्री रूप में पूज्य हुई तो ईश्वरी, दुर्गा व भवानी कहीं गई।

मध्य काल में मिथिला के (बिहार) के महाकवि विद्यापति ने अपने एक पद में अर्धनारीश्वर की व्याख्या इस प्रकार से की है।

जय जय शंकर जय त्रिपुरारि।
जय अध पुरूष जयति अंधनारि।
आध धबल तनु आधा गोरा।
आध सहज कुच आध कटोरा
आध हड़माल आध गजमोति।
आध चानन सोह आध विभूति
आध जोग आध भोग बलासा।
आध विधान आध दिगबासा
आध चान आध सिन्दूर सोभा।
आध बिरूप आध जग लोभा
भने कविरतन विधाता जाने।
दुई कए बॉटल एक पराने

अर्थात्-

शंकर की जय हो त्रिपुरारी की जय हो, आधे पुरूष आधे नारी की जय हो। इस अर्धनारीश्वर का आधा शरीर श्वेत है और आधा गोरा है। आधे में स्वभाविकस्तन और आधे में कटोरे (नारीस्तन के समान (स्तन है) आधे भाग में हड्डी (मुंडो) की माला है और आधे में गजमुक्ता की माला है। आधे शरीर में चंदन शोभायमान है और आधे में विभूति है।

आधा चैतन्य बुद्धि है और आधे की बुद्धि भोली है, आधे में रेशमी वस्त्र है और आधे में मून्ज की डोरी है।

आधा योग साधना करता है आधा भोग विलाश में (मग्न) है आधे में पहनावा है, आधा नग्न (दिगंबर) है।

आधा (ललाट) में चन्दुमा है, आधे में सिन्दूर की शोभा है आधा मुख कुरूप है, आधा संसार को लुभाने वाला है कविरत्न कहते है (इस रहस्य को) विधाता ही जानते है, एक प्राण को दो (शरीरो) में बांटा दिया। इस पद में कवि द्वारा योग और भोग का समन्वय की दिखाया गया है।

कुछ ग्रंथकारों के मत से शिव जी ने अपने पूर्व-पश्चिम-उत्तर दक्षिण और आकाशोन्मुख होने पर क्रमशः भैरव, हिडोर मेघ-दीपक और श्री ये पाँच राग प्रकट किए तथा पार्वती जी के मुख से कौशिक राग प्रकट हुए। अर्थात् शिव और शक्ति से ही इन रागों की उत्पत्ति को माना गया है। अतः रागों की उत्पत्ति भी शिव एवं शक्ति के द्वारा ही हुई है।

भगवान शिव द्वारा उत्पन्न राग भैरव स्वयं साक्षात शिव ही है। संगीत दर्पण में भैरव राग का स्वरूप इस प्रकार वर्णित है,

गंगाधरः शशिकलातिलकस्त्रिनेत्रः
सर्पौविभूषित तनुर्राजकृतिवासा
भास्वात्रिशूलकर एष नृमुण्डधारी
शुभ्राम्वरो जयति भैरव आदि रागः

अर्थात्-

जो गंगा को धारण करने वाले है, चन्द्रमा की कलाओं को तिलक के रूप में ज्योति नेत्रों वाले धारण करते है सर्पो से जिनका शरीर विभूषित है और हाथी की चमड़ी से जिनके वस्त्र निर्मित है जिनके हाथों में त्रिशूल हमेशा विराजमान है और जो मनुष्य के मुड़ों को धारन करने वाले है ऐसे शुभम राग भैरव आदि राग है जिसकी जय हो।

शक्ति स्वरूपा जगत जननी जगदम्वा माँ सरस्वती को संगीत की अधिष्ठात्री है। किसी कवि द्वारा रचना में कहा गया है।

स्वर हंस वाहन शुभकरी
संगीत देवी शारदे
ऐंकार रूप अनूप दर्शन
श्रवण मंगल मात्रिके

अर्थात-

वाग हंससंचरी एवं स्वर संगीत विलासिनी माँ शारदे के अनुपम दर्शन एवं श्रवण से शुभग मंगल होता है। शिव शक्ति को कालीदास ने वाणी और अर्थ के रूप में देखते हुए कहा है-

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये
जगतः पितरो वंदे पार्वती परमेश्वरो

अर्थात् जिस प्रकार जहाँ वाणी है वहाँ अर्थ है वैसे ही जहाँ शिव है वहाँ शक्ति है। नाद और भगवान शिव की अटूट संवंध है, क्योंकि नाद ऐसी ध्वनि है जिसे ऊँ कहा जाता है। नाद से ध्वनि और

ध्वनि से ही वाणी की उत्पत्ति हुई है। शिव का डमरू नाद साधना का प्रतीक माना गया है। आज से हजारो वर्षो से शिव को नटराज, देवी सरस्वती को वीणावादिनि के रूप में चित्रित किया गया है।

डॉ. जयदेव जी के मतानुसार सरस्वती शब्द संस्कृत भाषा की सृ धातु से बना है, जिसका अभिप्राय है 'सरकना' या गतिशिल होना है। सरस्वती ब्रह्म में वह शक्ति है जिसके द्वारा ब्रह्म में गतिशीलता आती है और इसी शक्ति से ब्रह्म ने विश्व का निर्माण किया और इसकी शक्ति का प्रयास नाद है, और समस्त ब्रह्मंड नाद और गति की शक्ति से व्याप्त है। इसीलिए सरस्वती को काव्य संगीत इत्यादि ललित कलाओं की जननी माना गया है।

एक पौराणिक आख्यान के अनुसार किसी समय प्रदोषकाल में देवगण रजतगिरि कैलाश पर 'नटराज' शिव के ताण्डव में सम्मलित हुए और जगज्जननी आद्या श्री गौरी जी रत्नसिंहासन पर बैठकर अपनी अध्यक्षता में तांण्डव कराने को तैयार हुई। ठीक उसी समय वहाँ भी नारद जी महराज भी पहुँच गए और अपनी वीणा के साथ ताण्डव में सम्मलित हुए। तदन्तर भी शिव जी ताण्डव नृत्य करने लगे, श्री सरस्वती जी वीणा बजाने लगी, इन्द्र महराज बंशी बजाने लगे, ब्रह्म जी हाथ से ताल देने लगे और लक्ष्मी जी आगे आगे गाने लगी, विष्णु भगवान मृदंग बजाने लगे और बचे हुए देव गण तथा गंधर्व यक्ष पन्नग उरग, सिद्ध विद्याधर अप्सराएँ चारो ओर स्तुति में लीन हो गए। बड़ें ही आनन्द के साथ ताण्डव सम्पन्न हुआ। उस समय भी आद्या भगवती पार्वती जी परम प्रसन्न हुई और उन्होंने भी शिव जी से पूछा कि आप क्या चाहते है? आज बड़ा ही आनन्द हुआ। फिर सब देवों से विशेषकर नारद जी से प्रेरित होकर यह वर मांगा कि हे देवि! इस आनन्द को केवल हम लोग ही लेते है, किन्तु पृथ्वीतल में एक ही नही हजारो भक्त इस आनन्द से तथा नृत्य दर्शन से बंचित रहते है, अतएव मृत्युलोक में भी जिस प्रकार मनुष्य इस आनन्द को प्राप्त कर सकें ऐसा कीजिए, किन्तु मैं अपने 'ताण्डव' को समाप्त करूंगा और 'लास्य' करूंगा। इस बात को सुनकर श्री आद्या भुवनेश्वरी महाकाली ने 'एवमस्तु' कहा और देवगणों से मनुष्य अवतार लेने को कहा स्वयं आद्या महाकाली श्याम सुन्दर का अवतार लेकर श्री वृन्दावन धाम में आयी और श्री शिवजी ने राधा जी का अवतार लेकर ब्रज में जन्म लिया एवं देवदुर्लभ 'रासमंडल' की आयोजन की ओर वही पर नटराज की उपाधि श्यामसुन्दर की दी गयी।

मानवीय भाषा में यूँ कहे की शिव और शक्ति दो अलग सत्ताएँ नही है। जब शिव अभिव्यक्त होता है तो शक्ति हो जाता है और जब शक्ति अभिव्यक्ति समेटले तो शिव हो जाती है।

अतः यह कहा जा सकता है कि आज जो हम पृथ्वी वासी संगीतनृत्य का आनन्द प्राप्त कर रहे है उसके अधिष्ठाता स्वयं भगवान शिव एवं पार्वती (शक्ति) से हैं जो स्वयं को नटराज एवं वीणावादिनी के रूप में स्थापित करते हुए हम पृथ्वी वासी को इस संगीत रूपी अमृत का पान कराया।

संदर्भ

संगीत विशारद
संगीत मणि
विद्यापति पदावली

संगीत में शिवशक्ति

डॉ0 शोभा सिंह

अध्यक्ष, आर0एन0एस0 म्यूजिक स्कूल, कानपुर

प्रस्तावना

संगीत प्रकृति की आत्मा है संगीत, ईश्वर है, आनन्द है, आध्यात्म हैं। संगीत करूणा है निवेदन है प्रेम है, वात्सल्य है और माधुर्य है। भारत में संगीत, युग-युग धर्म एवं आध्यात्म से जुड़ा हैं। संगीत का उद्गम वेदों से माना जाता है। लेकिन मेरा विश्वास है कि संगीत का जन्म सृष्टि के साथ ही हुआ है। संगीत मानव समाज की एक सहज कलात्मक उपलब्धि है। सांस्कृतिक परम्पराओं का मूर्तिमान प्रतीक है। अमूर्त भावनाओं को भूर्त रूप देने के लिए एक माध्यम हैं। संगीत अखण्ड, असीमित और अनन्त है।

भारतीय संस्कृति में संगीत का अपना विशिष्ट महत्व हैं। संगीत चौंसठ कलाओं में श्रेष्ठतम कला और चतुर्दश विधाओं में आत्मानन्द के उत्तम साधन के रूप में मानव को मिली है। सृष्टि में संगीत तत्व को स्वयं योगेश्वर कृष्ण, भगवती सरस्वती, भगवान शंकर ने मानव कल्याण के लिये जन्म दिया है। उन्होनें क्रमशः मुरली, वीणा, एवं डमरू धारण करके संगीत कला को एक अनूठा गौरव प्रदान किया हैं।

संगीत का अर्थ

संगीत की व्युत्पत्ति ''सम् गै (गाना). कत'' है, अर्थात् ''गै'' धातु में ''सम'' उपसर्ग लगाने से यह शब्द बनता है। ''गै'' का अर्थ है, गाना और सम् (सं) एक अव्यय, जिसका व्यवहार समानता, संगीत उत्कृष्ट, निरन्तरता औचित्य आदि सूचित करने के लिये किया जाता है। अतः संगीत का अर्थ- उत्कृष्ट, पूर्ण तथा औचित्यपूर्ण ढंग से गायन माना जा सकता है।

संगीत शब्द ''गीत'' में सम् उपसर्ग लगाकर बना है। सम् यानी ''सहित'' और ''गीत यानी ''गान''। गान के सहित'' अर्थात् अंगभूत क्रियाये (नृत्य) एवं वादन के साथ किया हुआ कार्य संगीत कहलाता है।

''नृत्य वाद्यानुगं प्रोक्तं वाद्यं गीतानुवृत्ति च।
अतो गीत प्रधानत्वादत्र दावभिधीयते।

अर्थात गान के अधीन वादन और वादन के अधीन नर्तन है, अतः इन कलाओं में गान को ही प्रधानता दी गई है, 'गीत वाद्यं तथा नृत्य भयं संगीत मुच्यते' संगीत रत्नाकर के अनुसार, गीत, वाद्य और नृत्य, ये तीनो मिलकर संगीत कहलाते है। तीनो कलाये परस्पर स्वतन्त्र होते हुए भी एक-दूसरे से जुड़ी है, जैसे गायन के अधीन वादन और वादन के अधीन नर्तन।

भक्ति का जो प्रकार ऊपर उल्लिखित हुआ, वह 'सगुण या 'साकार' के नाम से अभिहित है। भक्ति की दूसरी विधा 'निर्गुण या 'निराकार' कहलाती है जहां भक्त ईश्वर के स्वरूप का ध्यान न करते हुए केवल उसकी सत्ता का चिन्तन करता है। इसका माध्यम ''की ध्वनि है और इसकी उपासना प्रणवोपसना कहलाती है।'' का केवल गायन ही गायक को तन्मयता प्रदान करता है और श्रोताओं की विकेन्द्रित या बिखरी हुई चित्त-वृत्तियों को गायक के स्वर में केन्द्रित कर देता है। इसी ''का रूपांतर आज गायक द्वारा आरम्भ मे लगाए गए

'आ' कार में देखा जाता है। आरम्भिक षड्ज सही ढंग से लगाना कोई साधारण बात नहीं। वह ऐसा लगना चाहिए कि श्रोताओं का ध्यान उस ध्वनि के अतिरिक्त और कहीं न हो। स्वर में ऐसा तादाभ्य ही 'योग' है और इसी योग के लिए 'नाद-योग' संज्ञा है। आगमों, पुराणों और तन्त्र-ग्रन्थों में इसी की महिमा गाई गई है। कानों से सुनाई देने वाले आहत नाद से अनाहत नाद तक पहुंच जाना अथवा नाद के स्थूल रूप से सूक्ष्म स्वरूप तक पहुँच जाना, योग-साधना की चरम सीमा है।

ओउम् की महत्ता

अध्यात्म के अन्तर्गत एक मत के अनुसार संगीत का उद्गम 'ओउम्' से है। इस परम्परा का कहना है कि परमात्मा को-'इको ह बहुस्याम्' इस प्रकार का संकल्प होता है तो ब्रम्हाड में एक विचित्र प्रकार का कम्पन्न होता है। यह कम्पन्न ही संगीत की प्रथम किरण है, और ब्रम्हाड कम्पित करके जो स्वर निकलता है वही 'प्रणव नाद' है। इसी प्रणव से ही समस्त ज्ञान एवं कलाये उत्पन्न हुई है। 'मनुस्मृति' में कहा गया है कि 'ऋग्वजु साम्' से ही क्रमशः अ-उ-म् इन तीनों अक्षरों को लेकर 'ओउम्' शब्द बना है। इस 'ओउम्' शब्द में तीन गुणों की सृजनात्मक शक्तियाँ विराजमान है। इनमें 'अ' सृष्टिकर्ता ब्रम्हा का 'उ' पालक विष्णु का तथा 'म्' संहारक महेश का प्रतीक है। ह्यस्व, दीर्घ और प्लुप्त इन स्वरों के बिना 'ओउम' का उच्चारण नही किया जा सकता। इसी 'ओउम्' से षड्जादि सात स्वरों का आविर्भाव हुआ है। यह 'ओउम्' ब्रम्हा है। स्वर और व्यंजना ही ब्रम्हा हैं। इस प्रकार 'ओउम्' ही संगीत के जन्म का आधार है।

ऊँकार शब्द का विभाजन

उस आदित्य में समस्त भूत अनुगत है ऐसा समझों ऊँकार रूप उस आदित्य की मात्रा का विभाजन प्रकार किया गया है-

1. ऊँकार की प्रथम मात्रा-

1) जो आदित्य के उदय के पूर्व है, वह 'हिकार है।

2) तथा सूर्य के पहले उदाति होने पर जो रूप हे वह 'प्रस्ताद' है।

2. ऊँकार की द्वितीय मात्रा-

1) आदित्य का जो रूप खड़गव वेला में (सूर्य उदय के तीन मुहूर्त पश्चात् काल में रहता है वह आदि है।)

2) मध्यान्ह में आदित्य का जो रूप है वह 'उद्गीय' हैं।

3. ऊँकार की तृतीय मात्रा-

1) आदित्य का जो रूप मध्यान्ह के पश्चात् और अपरान्ह पूर्व होता है वह 'प्रतिहार है।

2) आदित्य का जो रूप मध्यान्ह के पश्चात् और सूर्यास्त के पूर्व हो जाता है, वह 'उपद्रव' है।

4. ऊँकार की अर्ध मात्रा-

आदित्य का जो रूप सूर्यास्त से पूर्व है, वह 'निधन' है। वस्तुतः आदित्य की सप्तदीय अवस्थाएं ही हैं। सम्भवतः ये सात अवस्थायें ही संगीत के सात स्वरों से सम्बन्धित हो सकती हैं। ऊँकार की मात्राओं की उपासना के माध्यम से मोक्ष की प्राप्ति का विधान है।

संगीत के आदि प्रेरक

शिव, ब्रह्म, सरस्वती, गन्धर्व और किन्नर को जो हम अपनी संगीत-कला के आदि प्रेरक मानते चले आये है, इसके मूल में यही भावना है कि संगीत-कला देवी प्रेरणा से ही प्रादुभूर्त हुई हैं। यद्यपि संगीत मानव के लिए स्वाभाविक है तथापि कला के रूप मे यह दिव्य प्रेरणा से ही आया होगा। संगीत वह सुन्दर, सुरभि, सरस पद्य है जो बिना स्वर्ग के प्राणदायक, शीतल ओसकण के खिलता ही नहीं। हमारे ऋषियों और आचार्यो का यह विश्वास है कि शंकर जी के डमरू से वर्ण और स्वर दोनों उत्पन्न हुए। शंकर की शक्ति पार्वती, शिवा, दुर्गा भी संगीत की प्रेरक मानी गयी है।

ब्रम्हा जी भी संगीत के प्रेरक के रूप में स्मरण किये गये है। ब्रम्हा शब्द बृह् अथवा बृह् धातु से बना है। इस धातु का अर्थ है आत्मविस्तार, ध्वनि होना, ध्वनि के द्वारा हृदय के भावों को अभिव्यक्त

करना। ब्रम्हा के मूल में ही शब्द या नाद है। अतः इन्हें संगीत का प्रेरक मानना सर्वथा उपयुक्त है।

सरस्वती भी संगीत के आदि प्रेरकों में से स्मरण की गयी है। सरस्वती ब्रम्हा की शक्ति का ही नाम है। 'सरस्. वती' शब्द सृ धातु से बना है जिसका अर्थ है 'सरकना' गतिशील होना। सरस्वती ब्रम्हा की वह शक्ति है जिसके द्वारा ब्रम्हा में गतिशीलता आती है। इसी शक्ति से ही ब्रम्हा विश्व का निर्माण करते है। इस शक्ति का प्रर्याय है शब्द या नाद। अतः सरस्वती काव्य, संगीत इत्यादि ललित कलाओं की जननी है।

हमारे ही देश मे देव-देवी को संगीत का आदि प्रेरक माना हो, ऐसी बात नहीं है। यूरोप में भी यह विश्वास रहा है। यूरोप, अरब और फ्रांस में जो संगीत के लिए शब्द है उस पर ध्यान देने से इसका रहस्य प्रकट हो जायेगा। संगीत के लिए यूनानी भाषा में शब्द है 'मौसिकि' (Mousike), लैटिन मे मुसिका (Musica), फ्रांसिसी में मुसीक (Musique), पोर्तुगी में मुसिका (Musica), जर्मन में मुसिक (Musik), अंग्रेजी में म्यूजिक (Music), इब्रानी, अरबी और फारसी में मोसिकी। इन सब शब्दों में साम्य हैं। ये सभी शब्द यूनानी भाषा के 'म्यूज' (Muse) शब्द से बने हैं। म्यूज यूनानी परम्परा में काव्य और संगीत की देवी मानी गयी है। कोश में म्यूज ;डनेमद्ध शब्द का अर्थ दिया है। 'दि इन्स्पायरिंग गॉडेस ऑफ सांग' अर्थात 'गान की प्रेरिका देवी'। यूनान का परम्परा में 'म्यूज' 'ज्यौस' (Zeus) की कन्या मानी गयी हैं। 'ज्यौस' शब्द का संस्कृत के 'द्यौस्' का हीरूपान्तर है जिसका अर्थ है 'स्वर्ग'। ज्यौस और म्यूज की धारणा ब्रह्म और सरस्वती से बिलकुल मिलती-जुलती है। अतः यह बात नहीं है कि भारत के ही आचार्यो ने देव-देवी को संगीत का आदि प्रेरक माना है, सारे जगत् का यही विश्वास रहा है।

इन दिव्य शक्तियों के अतिरिक्त गन्धर्व स्वर्ग के संगतीकार माने गये है। इनसे भी मानव को संगीत की प्रेरणा मिली है। संगीत-शास्त्र में नारदजी गन्धर्वो में से स्मरण किये गये है। यह वीणा के आविष्कार माने गये है और नर और देव के बीच के दूत। ऐसा विश्वास रहा है कि शिव, ब्रम्हा, सरस्वती इत्यादि से सबसे पहले नारद ने संगीत सीखा और नारद के द्वारा यह कला भू-लोक में आई।

एक ग्रन्थकार के मतानुसार नारद जी ने अनेक वर्षो तक योग-साधना की तब महादेव जी ने उन्हें प्रसन्न होकर संगीत-कला प्रदान की। पार्वती जी की शयन-मुद्रा को देखकर शिवजी ने उनके अंग-प्रत्यंगों के आधार पर रूद्रवीणा बनाई और अपने पांच मुखों से पांच रागों की उत्पत्ति की, तत्पश्चात् छठा राग पार्वती के श्रीमुख से उत्पन्न हुआ। शिवजी के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और आकाशोन्मुख होने से क्रमशः भैरव, हिंडोल, मेघ, दीपक और श्री राग प्रकट हुए तथा पार्वती द्वारा कोशिक राग की उत्पत्ति हुई। 'शिवप्रदोष' स्तोत्र में लिखा है कि त्रिजगत् की जननी गौरी को स्वर्ण-सिंहासन पर बैठाकर प्रदोष के समय शूलपाणि शिव ने नृत्य करने की इच्छा प्रकट की। इस अवसर पर सब देवता उन्हें घेरकर खड़े हो गए और उनका स्तुति गान करने लगे। सरस्वती ने वीणा, इंद्र ने वेणु तथा ब्रम्हा ने करताल बजाना आरंभ किया, लक्ष्मी जी गाने लगी और विष्णु भगवान् मृदंग बजाने लगे। इस नृत्यमय संगीतोत्सव को देखने के लिए गंधर्व, यक्ष, पतग, उरग, सिद्ध, साध्य, विद्याधर, देवता, अप्सराएं आदि सब उपस्थित थे।

'संगीत-दर्पण' के लेखक दामोदर पंडित (सन् 1625 ई.) के मतानुसार संगीत की उत्पत्ति ब्रम्हा जी से ही आरंभ होती है। अपने मत की पुष्टि करते हुए उन्होंने लिखा है:-

द्रुहिगोत यदन्विष्टं प्रयुक्तं भरते न च।
महादेवस्य पुरतस्तन्मार्गाख्यं विमुक्तदम्।।

अर्थात्-ब्रह्म जी (द्रुहिण) ने जिस संगीत को शोधकर निकाला, भरत मुनि ने महादेव जी के सामने जिसका प्रयोग किया तथा जो मुक्तिदायक है, वह 'मार्गी' संगीत कहलाता है।

पौरागिक मान्यता के अनुसार, सृष्टि के आदि नर्तक भगवान् शंकर माने जाते है उन्होंने एक नहीं, अनेको बार नृत्य किया। शिव ने प्रलंगकारी रौद्र रूप धारण कर सृष्टि का विनाश करने के लिए संहार नृत्य, आसुरी शक्ति अर्थात पाप व कुकर्मों पर विजय

प्राप्त करने के लिए त्रिपुर नृत्य, गौरी के प्रति सात्विक आकर्षण युक्त नृत्य, दाम्पत्य-प्रेम-नृत्य, तथा मोध व आनन्द से प्रफुल्लित नृत्य समय-समय पर किए।

एक कथा के अनुसार, तारकासुर के तीन पुत्र थे। तारंकाक्ष, विद्युन्माली व कमलाक्षः जिन्होनें तपस्या द्वारा ब्रह्म से त्रिपुर-निर्माण का वरदान प्राप्त किया। ये त्रिपुर (तीन महासागर) स्वर्ग, अंतरिक्ष व भूतल पर बनाए गए। त्रिपुर में सोने, चांदी व लोहे, तीन धातुओं के नगरों का का निर्माण हुआ। किन्तु कुछ समय पश्चात् त्रिपुर में दुराचार, पाप और अधर्म की बाढ़ सी आ गई असुरों के घोर पाप व संकटों से मुक्ति दिलाने के लिए शिव ने त्रिपुर-दाह किया। शिव ने देवमय रथ पर चढ़कर दिव्य धनुष द्वारा त्रिपुर को भस्म कर दिया और त्रिपुरासुर राक्षस का वध किया इस समय दंडी, आकाशचारी, सिद्ध व चारणों ने पुष्प-वृष्टि की। उनके तेजस्वी रूप से दस दिशाएं प्रज्जलित हो उठी। इसी समय पार्वती ने विजयोल्लास में हर्षित होकर नृत्य किया इसके अतिरिक्त जब मेना के यहाँ पार्वती का जन्म हुआ, तो व्यस्क होकर पार्वती ने शिव जी को वर रूप में प्राप्त करने के लिए तपस्या की। शिव ने उन्हें पत्नी-रूप में स्वीकार करने का वरदान दिया। शिव ने नट के रूप में उनके राज्य में नृत्य किया और सबको मोहित कर दिया। फलस्वरूप मेना ने उन्हे उपहार में अमूल्य रत्न प्रदान किए। किन्तु उन्होने उपहार में पार्वती मांग लिया। यह प्रसंग 'शिव-पुरूाण मे मिलता है।

शिवजी का जो स्वरूप हम देखते है, वह समस्त भक्तगण, कलाकार, दार्शनिक और प्रेमीजनों के लिए एक आदर्श का प्रतीक है। शिव जी के नृत्य के समय की उनकी अंग-स्थितियों पर विचार करते हुए डॉ. आनन्दकुमार स्वामी ने लिखा है, ''डमरू से सृष्टि और अभय प्रदान करने वाली मुद्रा से आशा अथवा रक्षा का उद्भाव होता है, अग्नि से विनाश का संकेत होता है और उठा हुआ हाथ मुक्ति का सूचक है।

शिव और संगीत

'नन्दिकेश्वरकारिका' में यह बतलाया गया है कि नटराज शिव जी ने नृत्य के अन्त में जो डमरू बजाया उसी से चौदह माहेश्वर सूत्र निकले-

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्काँ नवपञ्चवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धनेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्।।
(नन्दिकेश्वसारिका)

इन्हीं सूत्रो से स्वरवर्ण बने और 'रूद्रडमरूद्भवविरण' के अनुसार 'अइउण्' इत्यादि सूत्रों से ही षड्ज, ऋषभ, गान्धार इत्यादि स्वर निष्पन्न हुए है। सभी स्वरों का जनक षड्ज है जिसका वर्ण है शुभ। पंचतत्वों का दूसरा तत्व है आप, उसका वर्ण भी शुभ्र है। जैसा कि पूर्व बताया गया है, आप का अर्थ है प्राप्त करना। गान-योग द्वारा इस तत्व में गमन करके मनोवांछित प्राप्ति की जा सकती है। आप तत्व के देवता भगवान शिव का वर्ण भी शुभ्र है। भगवान् शिव संगीत के भी वरद देवता माने गए हैं। वेदों ने इस आप-तत्व का और आप-देवताओं का अत्यन्त विश्वस्त और सुन्दर वर्णन किया है-''आपोहिप्टा मयोभुवः तान ऊर्जे दधातन महेरणाय चक्षसे यो वः शिवत्तमों रसः तस्य भाजयते नः उशितीरिव मातरः तस्मा अरंग माम वः यस्य जिन्वधु आपो जनमथ च नः'' इन ऋचाओं का अर्थ भी अत्यन्त गूढ़ हैं। लौकिक सुख और भोग प्राप्त कर पारलौकिक जीवन पर दृष्टि रखने वाले स्वयं आप-देवताओं की आराधना करके सब कुछ प्राप्त करते थे। आप तत्व को उन्होनें शिवोत्तम रसः कहा है।

शारदातनय का मत है कि शिव जी नाट्यवेद के आदि निर्माता है। उन्होनें अपने शिष्य तण्डु को नाट्यवेद सिखलाया और ब्रम्हा ने उसे तण्डु से सीखा। शिव की वीणा 'अनालम्बी' मानी गयी है। हेमचन्द्र ने अभिधानचिन्तामणि में भिन्न-भिन्न वीणाओं के भिन्न-भिन्न को इस प्रकार गिनाया हैं।

शिवस्य वीणा अनालम्बी सरस्वतयास्तु कच्छपी।
नारदस्य तु महती गणानान्तु प्रभावती।
विश्वावसोस्तु बृहती तुम्बुरोस्तु कलावती।।

अर्थात् शिव जी की वीणा का नाम अनालम्बी है, सरस्वती की वीणा का नाम कच्छपी, नारद की वीणा नारद की वीणा का नाम महती, गणों की वीणा

का नाम प्रभावती, विश्वासु की वीणा का नाम बृहती और तुम्बुरू की वीणा का नाम कलावती है।

शिव जी द्वारा रागोत्पत्ति

सभी संगीत शास्त्र राग की उत्पत्ति शिव और पार्वती संयोग से मानते है। शिव के पांच मुखों से पांच और पार्वती के मुख से एक अर्थात् छः रागों की उत्पत्ति हुई देव-देव महादेव के सद्योजात मुख से श्री, वामदेव मुख से बसंत, अधोर मुख से भैरव, तत्पुरूष मुख से पंचम और अंशज मुख से मेघ तथा पार्वती के मुख से नट्टानारायण आदि का प्रादुर्भाव हुआ।

संगीत दामोदर रागोत्पत्ति के सन्दर्भ में उल्लेख मिलता है कि श्री कृष्ण के समक्ष गोपियों ने एक-एक करके गीत गाना आरंभ किया, तो षोडश सहस्त्र रागों की उत्पत्ति हो गई। इन रागों में जगत में छत्तीस राग प्रसिद्ध है, बाद में कालक्रम से फिर उसमें भी संख्या घट गई है। सुमेरू के उत्तर, पूर्व, पश्चिम और दक्षिण तथा समुद्र के उपकंठ के जितने भी देश है, वहां ये सब राग विद्यमान है।

संगीत दर्पण मे राग-रागिनी की स्पष्टीकरण मिलता है कि किसी समय जगदम्बा ने महादेव से पूछा, है देव! यदि मुझ पर आप प्रसन्न हुये है तो अनुग्रह पूर्वक बताइये कि कौन से राग है और कौन सी रागिनी, इनका महत्व क्या है? महादेव ने जगदम्बा के प्रश्न के उत्तर में कहा कि-श्री, बसंत, भैरव, पंचम, मेघ और नट्टनारायण ये छः राग है, इन छहों पुरूषों की छः स्त्रियां है और वे रागिनी कहलाती है। मालश्री, त्रिवेणी, गौरी, केदारी, मधु, माधवी और पहाड़िकायें ये छहों ''श्री राग'' की स्त्रियां है। देशी, देवकिरी, वराटी, तोड़िका ललिता और हिंदोली ये छह बसंत की, भैरवी, गुर्जरी, रामकिरी, गुणकिरी, बंगाली, और सैंधवी ये छह भैरव की, विभाषा, भूपाली, कर्णाटी, बड़हंसिका, मालवी और पट मंजरी ये छः पंचम की, मंदारी, सौठी, सावेरी, कौशिकी, गांधारी और हर श्रृंगारा ये छह मेघ की तथा कामोदी कल्याणी, अमीरी, सारंगी और नट्टहाबीरा ये छहः नट्ट नारायण राग पत्नियां हैं।

उपसंहार

संगीत के अन्तर्गत स्वर, लय तथा शब्द, तीनों के सम्यक् निर्वाह पर ध्यान देना संगीत-शास्त्र के 'अवधान' कहलाता है और तीनों का समुचित संगम ही उत्कृष्ट भाव-संगीत अथवा भक्ति संगीत का जन्म देता है। भक्ति का चरम उत्कर्ष वस्तु के साथ तन्मयता में हैं। ऐसी तन्मयता, जो आराध्य के साथ ऐक्य-भाव स्थापित करें, ऐसी तदाकारता, जिसमें ज्ञाता, ज्ञेय तथा ज्ञान अथवा गायक, गायन तथा गेय वस्तु का भेद निःशेष हो जाए। संगीत क्रिया का सर्वोच्च बिन्दु यही निर्विकल्प समाधि है, जहां सीमित अंह नष्ट होकर 'जगदात्मा' में विलीन हो जाता हैं। संगीत के अन्तर्गत देश, काल और जाति का बन्धन नहीं रहता, यह तथ्य सवंजन-प्रसिद्ध है। संगीत-जगत् में रसिक श्रोता यह विचार नहीं करता कि कलाकार हिन्दु है अथवा मुसलमान, पंडित है या बूढ़ा है अथवा बालक। संस्कृत में एक उक्ति है, गुणः 'प्रजास्थान गुणितु न च लिंग न च वयः'। अर्थात्-गुणियों में गुण देखे जाते हैं। उनका स्त्री या पुरूष होना अथवा उनकी आयु विचारणीय नहीं। भक्ति की जो चरम सीमा अद्वैत में पाई जाती हैं, उसका प्रबल माध्यम आरम्भ से अब तक संगीत रहा हैं और विश्व के अन्त तक रहेगा, इसमें किंचित् सन्देह नहीं।

जिस प्रकार शरीर का स्पन्दन प्राण है, उसी प्रकार संगीत स्पन्दन भक्ति है और भक्ति का संगीत। त्रिदेवो में महादेव रोद्र रूप होते हुये भी संगीत में प्रणेता मान्य है, यह शास्त्र-सम्मत बात है।

ग्रन्थ सूची

1. भारतीय संगीत का इतिहास, डॉ ठाकुर जयदेव सिंह, द्वितीय संस्करणः 2010
2. संगीत विशारद, बसंत पंचम संस्करणः 1965
3. भक्ति संगीत, लक्ष्मीनारायण गर्ग, द्वितीय संस्करणः 1970
4. संगीत स्वरित, रमाकान्त द्विवेदी, प्रथम संस्करणः 2004

भारतीय वाद्यों के चिन्तन में शिव शक्ति की अवधारणा-एक अध्ययन

शिखा-शोध छात्रा

आर0जी0 पी0जी0 कालेज, मेरठ।

जब हम भारतीय संगीत के इतिहास का अवलोकन करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि संगीत मे सदैव ही आध्यात्मिक धारणाओं को मान्यता दी गई है। यहाँ तक कि संगीत की उत्पत्ति का आधार भी विद्धजनोंने अध्यात्मिक बताया है, यहीं कारण है कि हमारे देवी-देवता किसी न किसी वाद्ययंत्र के साथ हमें प्रतीक रूप में दिखाई पडते है। भगवान शिव को ''संगीत कला का जनक'' माना जाता है। शिव महापुराण के अनुसार ऐसी मान्यता है कि शिव के पहले संगीत के विषय में किसी को भी जानकारी नहीं थी। नृत्य वाद्ययंत्रों को बजाना गाना उस समय कोई नहीं जानता था क्योंकि शिव ही इस ब्रहमाण्ड में सर्वप्रथम आये है।

समस्त जगत को नाद के अधीन बताया गया है नाद और भगवान शिव का अटूट सम्बन्ध है। दरअसल नाद एक ऐसी ध्वनि है जिसके ''ऊँ'' कहाँ जाता है। पौराणिक मत है कि 'ऊँ' से ही भगवान शिव का जन्म हुआ है। संगीत के सात स्वर तो आते जाते है लेकिन उनके केन्द्रीय स्वर नाद में ही है। नाद से ही ध्वनि और ध्वनि से ही वाणी की उत्पत्ति हुई है। शिव का वाद्य डमरू नाद साधना का प्रतीक माना गया है।[1]

शिव और शक्ति के विषय में शिवपुराण में निर्दिष्ट है कि-शिव शक्ति का संयोग ही परमात्मा है। शिव की जो पराशक्ति है उससे चित् शक्ति प्रकट होती है। चित् शक्ति से आनन्द शक्ति का प्रादुर्भाव होता है, आनन्द शक्ति से इच्छाशक्ति का उद्धभव हुआ है, इच्छाशक्ति से ज्ञान शक्ति और ज्ञान शक्ति से पांचवी क्रियाशक्ति प्रकट हुई है। इन्ही से निवृत्ति आदि कलाएँ उत्पन्न हुई हैं।[2]

वास्तव में शिव और शक्ति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। शक्ति के साथ शिव, शिव है अन्यथा शक्ति विहिन शिव शव के समान है। शिव शक्ति के संदर्भ में हमें संगीत कला (गायन, वादन, नृत्य) के अन्तर्गत अनेक पौराणिक कथाएँ मिलती है,। परन्तु यहाँ हम केवल अपने विषय **'भारतीय वाद्यो के चिन्तन में शिव-शक्ति की अवधारणा' एक अध्ययन'** के विषय मे ही चर्चा करेगे। इस कड़ी में हम यहाँ पहले, घण्टा (धन वाद्य) के विषय मेंचर्चा करेगें।

ऐसा माना जाता है कि घण्टा ध्वनि से निकलने वाला स्वर ओंकार है और घण्टा बार-बार बजाने से उसी की पुनरावृत्ति होती है। ओंकार से ही बहमाण्ड की निवृत्ति हुई है। घण्टा नाद की सृष्टि के प्रारम्भ का प्रतीक माना जाता है।

घण्टा अथवा घण्टी (जो घण्टे का अपेक्षाकृत छोटा रूप है) का सम्बन्ध सबसे पहले हमें भगवान शिव के साथ कैलाश पर्वत पर रहने वाले गणों से मिलता है। घण्टाकर्ण शिवजी के गण का नाम था। जिसके कान घण्टाकार थे नदी शिव का दूसरा गण है जो शिव का वाहन है। नंदी के गले में घण्टी बंधी होती है जो इसकी पहचान की सूचक और प्रतीक है।[3]

घण्टी की उत्पत्ति कथा जो नन्दी और शिव-पार्वती से जुड़ी है। नन्दी के गले में जब घण्टी नहीं बंधी थी, यह उस समय की बात है। नन्दी अपने स्वभाव के कारण कैलाश से कहीं दूर चला गया। शाम हो गइ, जब नन्दी नहीं लौटा तो शिव ने पार्वती से पूछा नन्दी कहाँ है ? पार्वती ने अनभिज्ञता प्रकट की। सब जगह ढूढँने पर भी नन्दी का जब पता नही लगा तो शिव परेशान हो गये। शाम होने लगी थी। सूर्य अस्तांचल की ओर जा रहा था, महादेव ने नन्दी को आते देखा। शिव शंकर बहुत नाराज हुए। नन्दी पर उनका सारा गुस्सा बरस पड़ा। इतने में पार्वती बाहर निकली। महादेव ने पार्वती से नन्दी की शिकायत करते हुए कहा-पार्वती इसे आज से बांध कर रखा जाये। इसके गले में रस्सी लगाओं। पार्वती ने कहा भगवन! इस प्रकार तो हम नन्दी को कैद में डाल देंगे। इसकी स्वतंत्रता छीनने का हक हमें नहीं है। महादेव का गुस्सा दोगुना हो गया और बोले पार्वती इसको वश में रखने का कोई उपाय तुम्हारे पास है तो बताओ।

पार्वती ने कहा-इसका उपाय है मेरे पास प्रभु।

वह क्या है? तपाक से महादेव ने पूछा।

पार्वती-नन्दी के गले में हम बजने वाली एक घण्टी डाल दे तो कैसा रहेगा!उसके चलने से घण्टी बजती रहेगी। और वह कहाँ है, इसकी सूचना भी हमें मिलती रहेगी।

महादेव - घण्टी किस चीज की होगी।

पार्वती-''लकड़ी की होगी''।

पार्वती ने लकड़ी की बजने वाली घण्टी बनवाई उसे रस्सी के सहारे से नन्दी के गले में बांध दी । अब नन्दी जहाँ-जहाँ जाता उसके गले की घंटी 'टन-टन' बजती रहती। जिससे महादेव को भी पता लगता रहता कि नन्दी कही न कही आस-पास ही है।

इस प्रकार पहली काष्ठ की घण्टी का निमार्ण हुआ। आज भी कई मवेशियों के गले में लकड़ी की घण्टी जिसे **'टपरी'** कहा जाता है बाँधी जाती है।[4]

यह तो हुई घण्टी की उत्पति सम्बन्धी कथा जो कि शिव-पार्वती से सम्बन्धित है परन्तु हमारे धर्म ग्रन्थों में शक्ति (पार्वती) के नौ रूपों से एक रूपमें घण्टी का प्रतीक उद्रेखित किया गया है। नौ महादेवियों में से एक देवी का नाम ही चन्द्रघण्टा है।

इस प्रकार घण्टा नामक घनवाद्य का सम्बन्ध शिव-शक्ति (पार्वती) से माना जाता है।

इसी प्रकार तन्त्रवाद्य में एक वीणा प्रकार जिससे **रूद्रवीणा** कहा जाता है, का सम्बन्ध भी शिव शक्ति से है। इस मान्यता के अनुसार शिवजी ने पार्वती के शयन मुद्रा के आधार पर एक वीणा का निर्माण किया। जिसे बाद में रूद्र(शंकर) वीणा कहा जाने लगा। [5] इसे पार्वती वीणा भी कहा जाता है क्योंकि इसका निर्माण ही शंकर जी ने पार्वती की शयन मुद्रा अर्थात स्त्री - अर्धागों के आधार पर किया था।

इसी प्रकार अवनद्ध वाद्यो की उत्पत्ति के सम्बन्ध में हमें शिव शक्ति से सम्बन्धित पौराणिक कथाएँ प्राप्त होती हैं। हमारे प्राचीन साहित्य में अवनद्ध वाद्यों से सम्बन्धित शिव पार्वती की कथा दो रूपों में मिलती हैं प्रथम मुरज राक्षस से सम्बन्ध है तथा द्वितीय पार्वती की जिज्ञासा से सम्बद्ध कथा है।

मुरज राक्षस से सम्बद्ध कथा के अनुसार, मुरज नामक राक्षस ब्रहमा से वर प्राप्त कर अपने आपकों अमर समझता हुआ एक बार कैलाश पर्वत के वन में तप कर रहेरूद्र को मारने के लिए आया। रूद्र ने मुरज राक्षस के भावको ज्ञानचक्षु से जान लिया। उस पर क्रोध से बरसते हुए बोले कि तप को भंग करने का दुस्सहास कर अब तु कहा भाग रहा है। इतना कहते ही वह राक्षस युद्ध की इच्छा से शिव के सम्मुख आकर खड़ा हो गया। बहुत समय तक युद्ध करके शिव ने उसे पशु की तरह मार डाला। उसके हाथ गला और पाव शरीर से अलग करके भूमि पर फेंक दिया। बाद में गिद्ध मांस के लोभ सें उसके शरीर को आकाश में ले गये। मांस चबाकर उसे गिद्धो ने फेक दिया। जिससे वह एक वृक्ष के ऊपर लटक गया। सूर्य के ताप से धीरे-धीरे वह मांस सूख गया और चर्म के रूप में परिणत होकर ऐसी शाखा पर अवनद्ध हो गया जिसके दो मुख

है।(अतः भीतर ऐसी शाखा खोखली और उसमें दो विवर से दिखाई दे रहे थे) जब वायु चलती तोउसी स्थान के भीतर से होकर चलती जिससे कुछ स्वर से सुनाई देते।

इन शब्दों को कभी वहाँ से जाते हुए शिव ने सुना। ये शब्द परम सुखकर थे। अतः शिव ने उस स्थान पर जाके देखा। उन्हें पुरानी घटना याद आ गई कि इसे तो मैंने ही मारा था। शिव ने वामहस्त से उसे स्पर्श किया जिससे तीन शब्द निकले 'त, इ, ति कौतुकवश शिव ने दक्षिण कर से उस पर प्रहार किया जिससे 'धी' शब्द निकला फिर शिव ने वाम करते हुए प्रहार किया जिससे 'धो' शब्द निकला। पुनः दक्षिण कर से प्रहार करने पर उसमें से 'द्रोम' शब्द निकला। इसके बाद शिव अपने स्थान पर चले गये।

दूसरी कथा जो कि उपरोक्त का ही अगला भाग है वर्षा ऋतु के दिनो में उमा (पार्वती) ने शिव सेनई कुटिया बनाने के लिए कहा। गणों ने पलाशों की सहायता से बांस वाले स्थान पर कुटिया बना दी। एक बार कुटिया के सूखें पत्रों पर वर्षा की बूंदों से होने वाले स्वरों को शिव और उमा ने सुना। उमा ने शिव से कहा स्वामी, वर्षा और पत्र के योग जैसे शब्द सुनाई पड़ रहे है, ऐसे शब्द कही स्थापित करें। इस पर शिव ने मुरज की कथा उमा को सुनाई और उन पर बजने वाले शब्दों कानिधान किया।[6] इस प्रकार मुरज नामक अवनद्ध वाद्य का आविष्कार हुआ।

इसी क्रम में घण्टा, वीणा तथा मुरज के अतिरिक्त शिव जी का सम्बन्ध डमरू नामक अवनद्ध वाद्य से भी है जो शिव के साथ-साथ शक्ति (पार्वती) का भी प्रिय वाद्य है। इसके अतिरिक्त बनारस घराने वाले शहनाई वादक शहनाई की उत्पत्ति शिव के वाद्य श्रृंग या सींग से स्वीकार करते है। उनके अनुसार इसका सर्वप्रथम वादन शिव पार्वती-परिणय के शुभ अवसर पर हुआ था। वैसे आज भी शहनाई को मंगल वाद्य माना जाता है और विवाह आदि शुभ अवसरों पर इसका वादन होता है।[7]

अतः हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि विभिन्न धार्मिक एवं पौराणिक मान्यताओं के अनुसार भगवान शिव भारतीय संगीत कला के आदि प्रणेता हैं तथा शिव के साथ-साथ शक्ति का सम्बन्ध में संगीत कला से रहा है। इन दोनों (शिव-शक्ति) के संयोग से ही संगीत कला (गायन, वादन तथा नृत्य) का प्रादुर्भाव हुआ। भारतीय वाद्यों (चतुर्विध वाद्य-तत्, घन, सुषिर तथा अवन) के संदर्द्ध मे हमें शिव-शक्ति की धारणामिलती है। इन पौराणिक कथाओं को हमारे प्राचीन साहित्य ने पर्याप्त मान्यता मिलती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 http;//naidunia.jagran.com "लेख- भगवान शिव हैं ब्रहमाण्ड में संगीत के उत्पत्ति के जनक" मंगलवार, जनवरी 05, 2016।

2 WWW.webdunia.Com "शिव पुराण में शिव-शक्ति का संयोग"

3 संगीत, पत्रिका, हाथरस - जून 2016 पृष्ठ 40

4 वही, पृष्ठ-43

5 निबन्ध संगीत, गर्ग, लक्ष्मीनारायण, पृष्ठ-155

6 संगीत कला विहार, दिसम्बर 1987, पृष्ठ-375-76

7 15 नवम्बर 1970 की नार्दन इंडिया पत्रिका में श्री सुकुमार राय का लेख है 'दी म्यूजिक ऑफ शहनाई'।

''भारत के प्रमुख ज्योतिर्लिंग की ऐतिहासिक विशेषता''

डॉ. लक्ष्मी ठाकुर

(सहा. प्राध्या. इतिहास)

शास. एम.जी.एम.पी.जी. महाविद्यालय इटारसी (म.प्र.)

1.सारांश - सम्पूर्ण तीर्थ लिंगमय हैं। सब कुछ लिंग में ही प्रतिष्ठित है। उन शिवलिंगों की कोई गणना नहीं है तथापि मैं उनका किंचित् वर्णन करता हूँ।

संसार में कोई भी वस्तु शिव के स्वरूप से भिन्न नहीं है। मुनिश्रेष्ठ शौनक! इस भूमण्डल पर जो मुख्य- मुख्य ज्योतिर्लिंग हैं, उनका मैं वर्णन करता हूँ। उनका नाम सुनने मात्र से पाप दूर हो जाते हैं-

सौराष्ट्र में सोमनाथ, श्रीशैल पर मल्लिकार्जुन, उज्जयिनी में महाकाल, औंकारतीर्थ में परमेश्वर, हिमालय के शिखर पर केदार, डाकिनी क्षेत्र में भीमशंकर, वाराणसी में विश्वनाथ, गोदावरी के तट पर त्रयम्बक, चिताभूमि में वैद्यनाथ, दारूकावन में नागेश, सेतुबन्ध में रामेश्वर तथा शिवालय में घुमेश्वर का स्मरण करे। जो प्रतिदिन प्रातः काल उठकर इन बारह नामों का पाठ करता है, उसके सभी प्रकार के पाप छूट जाते हैं और उसे सम्पूर्ण सिद्धियों का फल प्राप्त हो जाता है-

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारे परमेश्वरम्।।
केदारं हिमवत्पृठे डाकिन्यां भीमशङ्करम्।
वाराणस्यां च विश्वेशं त्रयम्बकं गौतमीतटे।।
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारूकावने।
सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशं तु शिवालये।।
द्वादशैतानि नामानि प्रातरूत्थाय यः पठेत्।
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः सर्वसिद्धिफलं लभेत्।।

इन लिंगो पर चढ़ाया गया प्रसाद सर्वदा ग्रहण करने योग्य होता है, उसे श्रद्धा से विशेष यत्नपूर्वक ग्रहण करना चाहिये। ऐसा करने वाले के समस्त पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाते है।

2. परिचय - सोमनाथ ज्योतिर्लिंग का दर्शन कर मनुष्य सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है और (इस लोक में) मनोवांछित अभीष्ट फल प्राप्त कर मरने के पश्चात् स्वर्ग को जाता हैं। मनुष्य जिस - जिस फल को उद्देश्य करके इस उत्तम तीर्थ का सेवन करता हैं, वह उस फल को अवश्य प्राप्त करता हैः इसमें संशय नहीं है।

सोमेश्वर उस प्रकार के फल को देखकर वे देवता एवं ऋषिगण प्रीतिपूर्वक शिवजी को नमस्कार कर क्षयरोग - रहित चन्द्रमा को लेकर उस तीर्थ की परिक्रमा करके उसकी प्रशंसा करते हुए (अपने - अपने धाम को) चले गये और चन्द्रमा भी अपना पुरातन कार्य करने लगे।

सोमेश्वर लिंग इसी प्रकार प्रकट हुआ था। जो मनुष्य सोमेश्वर लिंग की उत्पत्ति को सुनता है अथवा दूसरों को सुनाता है, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और वह सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है।

जब तारका वध करने वाले महाबलवान् पार्वतीपुत्र कार्तिकेय पृथ्वी की परिक्रमा कैलाश पर पुनः आये, उस समय देवर्षि नारद ने वहॉ आकर अपनी बुद्धि से उन्हे भ्रमित करते हुए गणेश के विवाह आदि का सारा वृत्तान्त कहा। इसे सुनकर अपने माता - पिता के मना करने पर भी वे कुमार उनके प्रणाम कर क्रौंच पर्वत पर चले गये।

जब माता पार्वती कार्तिकेय के वियोग से बहुत दुखी हुई, तब शिवजी ने उन्हें समझाते हुए कहा - हे प्रिये ! तुम दुखी क्यों हो रही हो, हे पार्वती ! हे सुभ्रू! दुःख मत करो, तुम्हारा पुत्र (अवश्य) लौट आयेगा; तुम इस महान् दु'ख का त्याग करो। शंकरजी के बारंबार कहने के बाद भी जब पार्वती को सन्तोष नहीं हुआ, तो उन्होंने तथा ऋषियों को कुमार के पास भेजा। उसके बाद गणों को साथ लेकर सभी बुद्धिमान् देवता एवं महर्षि प्रसन्न होकर कुमार को लाने के लिये वहाँ गये।

वहाँ जाकर कुमार को भली भाँती प्रणाम करके उन्हें अनेक प्रकार से समझाकर उन सभी ने आदर पूर्वक प्रार्थना की। तब स्वाभिमान से उदीप्त कार्तिकेय ने शिवजी की आज्ञा से युक्त उन देवगणों की प्रार्थना को स्वीकार नही किया।

तत्पश्चात् वे सभी लोग पुनः शिवजी के समीप लौट आये और उन्हें प्रणाम करके अपने - अपने धाम को चले गये। तब उनके न लौटने पर शिवजी एवं पार्वती को पुत्रवियोगजन्य महान् दुःख प्राप्त हुआ। इसके बाद वे दानों लौकिकाचार प्रदर्शित करते हुए अत्यन्त दीन एवं दुखी हो परम स्नेहवश वहाँ गये, जहाँ उनके पुत्र कार्तिकेय रहते थे।

तब पुत्र कार्तिकेय माता-पिता का आगमन जान स्नेहरहित हो उस पर्वत से तीन कोस चले गये। अपने पुत्र के दूर चले जाने पर विराजमान वे दोनो ज्योतिरूप धारण कर वहीं कौच पर्वत पर विराजमान हो गये। पुत्र स्नेह से व्याकुल हुए वे शिव तथा पार्वती अपने पुत्र कार्तिकेय को देखने के लिये प्रत्येक पर्व पर वहाँ जाते हैं। अमावास्या के दिन साक्षात् शिव वहाँ जाते हैं तथा पूर्णमासी के दिन पार्वती वहाँ निश्चित रूप से जाती हैं। उसी दिन से लेकर मल्लिका (पार्वती) तथा अर्जुन (शिवजी) - का मिलित रूप वह अद्वितीय शिवलिंग तीनों लोकों में प्रसिद्ध हुआ। जो (मनुष्य) उस लिंग का दर्शन करता हैं, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है और समस्त मनोरथों को प्राप्त कर लेता है; इसमें सन्देह नहीं है। उसका दुःख सर्वथा दूर हो जाता है, वह परम सुख प्राप्त करता है, उसे माता के गर्भ में पुनः कष्ट नहीं भोगना पड़ता है, उसे धन - धान्य की समृद्धि, प्रतिष्ठा, आरोग्य तथा अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है; इसमें संशय नहीं।

इसके बाद महाकाल भगवान् शिवजी ने प्रसन्नचित्त होकर उस राजा की रक्षा करने के लिये जो उपाय किया, उसे आप लोग आदरपूर्वक सूनिये।

हे विप्रो ! उसी समय कोई ग्वालिन बालक सहित उस उत्तम नगर में घूमती हुई महाकाल के निकट पहुँची । पाँच वर्ष की अवस्था वाले बालक को लिये हुए वह विधवा ग्वालिन राजा के द्वारा की जाती हुई महाकाल की पूजा को आदरपूर्वक देखने लगी। राजा के द्वारा की गयी उस आश्चर्यजनक शिवजी पूजा को देख करके शिवजी को प्रणाम कर वह पुनः अपने शिविर में लौट गयी। यह सब अच्छी तरह देखकर उस गोपीपुत्र ने कौतुहल - वश उस शिवपूजन को करने का विचार किया।

उसने अपने शिविर के सन्निकट किसी दूसरे सूने शिविर में अत्यन्त मनोहर पाषाण लाकर भक्तिपूर्वक उसे स्थापित किया और ग्रन्ध, आभूषण, वस्त्र, धूप,दीप, अक्षत आदि कृत्रिम द्रव्यों से शिवजी का पूजन कर नैवेध भी चढाया। पुनः मनोहर बिल्वपत्रों एवं पुष्पों से बार - बार शिवपूजन कर अनेक प्रकार का नृत्य करके शिव को बार - बार प्रणाम किया।

उसी समय उस ग्वालिन ने आसक्त हुए श्रेष्ठ मनवाले अपने पुत्र को स्नेह से भोजन के लिये बुलाया। जब शिवभक्ति में सने हुए चित्तवाले उस बालक ने बार - बार बुलाये जाने पर भी भोजन की इच्छा नहीं की, तब उसकी माता (स्वयं) वहाँ गयी।

ऑखे बन्द किये हुए उस शिवजी के आगे बैठा हुआ देखकर उसका हाथ पकड़कर खींचा और क्रोधपूवर्क मारा। किंतु खींचने और मारने पर भी जब उसका पुत्र नही आया, तब उसने शिवलिंग को दूर फेंककर उसकी पूजा को नष्ट कर दिया।

उसके बाद हाय! हाय! कहकर दुखी होते हुए अपने पुत्र को झिड़क कर क्रोधयुक्त वह ग्वालिन पुनः अपने घर में प्रविष्ट हो गयी। तब वह बालक (अपनी) माता के द्वारा भगवान् शिव के पूजन को

नष्ट किया गया देखकर देव! देव! इस प्रकार कह कर चीखने लगा और (प्रथ्वी पर) गिर पड़ा।

इसके बाद शोकाकुल होने के कारण वह सहसा मुर्च्छित हो गया। फिर दो घड़ी बाद चेतना में आने पर उसने अपने दोनो नेत्र खोले। शिवजी की कृपा से उसी क्षण वहाँ पर महाकाल का सुन्दर शिविर (देवालय) बन गया, जिसे उसे बालक ने देखा।

बारह ज्योतिर्लिंगों का महत्व व महिमा -

1. **सोमनाथ** - सोमनाथ ज्योतिर्लिंग भारत का ही नही अपितु इस पृथ्वी का पहला ज्यातिर्लिंग माना जाता हैं, कि जब चंद्रमा को दक्ष प्रजापति ने श्राप दिया था, तब चंद्रमा ने इसी स्थान पर तप कर इसी स्थान पर इस श्राप से मुक्ति पाई थी। ऐसा भी कहा जाता है कि इस शिवलिंग की स्थापना स्वयं चन्द्र देव ने की थी। विदेशी आक्रमणों के कारण यह 17 बार नष्ट हो चुका है। हर बार यह बिगड़ता और बनता रहा है।

2. मल्लिकार्जुन - यह ज्योतिर्लिंग आन्ध प्रदेश में कृणा नदी के तट पर श्रीशैल नाम के पर्वत पर स्थित है। इस मंदिर का महत्व भगवान शिव के कैलाश पर्वत के समान कहा गया है। अनेक धार्मिक शास्त्र इसके धार्मिक और पौराणिक महत्व की व्याख्या करते हैं।" कहते है कि इस ज्योतिर्लिंग के दर्शन करने मात्र से ही व्यक्ति को उसके सभी पापों से मुक्ति मिलती है। एक पौराणिक कथा के अनुसार जहां पर यह ज्योतिर्लिंग है, उस पर्वत पर आकर शिव का पूजन करने से व्यक्ति को अश्वमेध यज्ञ के समान पुण्य फल प्राप्त होते है। यह मल्लिकार्जुन नामवाला दूसरा ज्योतिर्लिंग कहा गया है, जो दर्शन मात्र से सभी सुख प्रदान करता है; मैंने लोक कल्याण के लिये इसका वर्णन किया।

3. **महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग** - यह ज्योतिर्लिंग मध्य प्रदेश की धार्मिक राजधानी कही जाने वाली उज्जैन नगरी में स्थित है। महाकालेश्वर ज्यातिर्लिंग की विशेषता है कि ये एकमात्र दक्षिणमुखी ज्योतिर्लिंग है। यहां प्रतिदिन सुबह की जाने वाली भस्मारती विश्व भर में प्रसिद्व है। महाकालेश्वर की पूजा विशेष रूप से आयु वृद्धि और आयु पर आप हुए संकट को टालने के लिए की जाती है। उज्जैनवासी मानते हैं कि भगवान महाकालेश्वर ही उनके राजा हैं और वे ही उज्जैन की रक्षा कर रहे हैं।

भक्तों की रक्षा करने वाले महाकाल नामक ज्योतिर्लिंग का भक्तिवर्धक माहात्म्य आदरपूर्वक सुनिये। उज्जयिनी नगरी में चन्द्रसेन नामक एक महान् राजा था, जो सभी शास्त्रों के तात्पर्य को तत्वतः जानने वाला, शिवभक्त तथा जितेन्द्रिय था।

उस राजा का मित्र महादेव गणों में प्रमुख मणिभद्र नामक गण था; वह समस्त लोगों द्वारा

नमस्कृत था। किसी समय उदारबुद्धि वाले उस गणाध्यक्ष मणिभद्र ने **प्रसन्न** होकर उसे चिन्तामणि नामक उत्तम मणि प्रदान की। सूर्यसदृश प्रकाश करने वाले वह मणि कौस्तुभमणि के समान ध्यान करने, दर्शन करने तथा सुनने मात्र से निश्चय ही कल्याण प्रदान करती है। उसके प्रकाश तल का स्पर्श पाते ही कॉसा, तॉबा, लौह, शीशा, पाषाण तथा अन्य (धातु-खनिज आदि) भी शीघ्र ही सुवर्ण हो जाते थे। उस चिन्तामणि को गले में धारण करके वह परम शिवभक्त राजा चन्द्रसेन इस प्रकार शोभित होता था, जैसे देवगणों के बीच सूर्य शोभित होते है।

चिन्तामणि से युक्त ग्रीवा वाले नृपश्रेष्ठ चन्द्रसेन के विषय में सुनकर पृथ्वी के समस्त राजा मणि को लेने के लिये आतुर मन वाले हो गये।

उन मुर्ख एवं मत्सरग्रस्त राजाओं ने देवलब्ध उस मणि को अनेक उपायों के द्वारा चन्द्रसेन से मॉगा। किन्तु हे ब्राह्मनों! महाकाल में दृढ़ भक्ति रखने वाले उस चन्द्रसेन ने सभी राजाओं की याचना निष्फल कर दी। तब राजा चन्द्रसेन से इस प्रकार तिरस्कृत हुए सभी देशों के समस्त राजाओं ने खलबली मचा दी। इसके बाद वे सभी राजा चतुरंगिणी सेना से युक्त होकर उस चन्द्रसेन का युद्ध जीतने के लिये भलीभांति उधत हो गये।

आपस में मिले हुए उन सभी राजाओं ने एक दूसरे को संकेत से अपना मनोभाव समझाकर बहुत

सारे सैनिकों के साथ मिलकर उज्जयनी के चारों द्वारों को घेर लिया।

तब अपनी नगरी को समस्त राजाओं के द्वारा घिरी देखकर वह राजा उन्हीं महाकालेश्वर की शरण में गया। वह राजा निर्विकल्प होकर तथा निराहर रहकर दृढ़ निश्चयपूर्वक एकाग्रचित हो दिन-रात महाकाल का अर्चन करने लगां।

यह महाकालपुरी उज्जयिनी का अधीश्वर राजा चन्द्रसेन शिवभक्त होने से निश्चिन्त तथा दुर्जेय है। जिसकी पुरी में शिशु भी इस प्रकार के शिवभक्त है, वह राजा चन्द्रसेन तो महान् शिवभक्त होगा। निश्चय ही इसके साथ विरोध करने से तो शिवजी क्रुद्ध हो जायँगे और उनके क्रोध से हम सब लोग विनष्ट हो जायेगें। इसलिये हमें इस राजा से मेल कर लेना चाहिये; ऐसा करने पर शिवजी (हम लोगों पर) महती कृपा करेंगे।

इस प्रकार महाकाल नामक ज्योतिर्लिंग सज्जनों को शुभ गति देनेवाला, सभी दुष्टों का वध करने वाला, कल्याणकारी तथा भक्तों के ऊपर दया करने वाला है। (हे द्विजो!) मैंने अत्यन्त पवित्र, गोपनीय, सभी प्रकार के सुखों को देने वाले, स्वर्ग को प्रदान करने वाले तथा शिव में भक्ति को बढ़ाने वाले इस आख्यान का वर्णन किया।

4. ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग -ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग मध्य प्रदेश के प्रसिद्ध शहर इंदौर के समीप स्थित है, उस स्थान पर नर्मदा नदी बहती है और पहाड़ी के चारों ओर नदी बहने से यहां ॐ का आकार बनता है। ॐ शब्द की उत्पत्ति ब्रहमा के मुख से हुई है। इसलिए किसी भी धार्मिक शास्त्र या वेदों का पाठ ॐ के साथ ही किया जाता है। यह ज्योतिर्लिंग औकार अर्थात ॐ का आकार लिए हुए है, इस कारण इसे औकारेश्वर नाम से जाना जाता है।

देवगणों का वचन सुनकर हर्षित हुए परमेश्वर ने लोककल्याण के लिये प्रेमपूर्वक वैसा ही किया। ओंकार नामक जो एक लिंग था, वह दो रूपों में विभक्त हो गया। प्रणव में स्थित सदाशिव ऊँकारेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुए और जो पार्थिव में प्रकट हुए, वे परमेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुए। हे द्विजो! वे दोनों ही भक्तों के मनोरथ कों पूर्ण करने वाले तथा भुक्ति और मुक्ति देने वाले हैं।

तब देवताओं एवं ऋषियों ने उनकी पूजा की तथा उन वृाभध्वजको प्रसन्न करके अनेक वरदान प्राप्त किये। इसके बाद देवता अपने-अपने स्थान को चले गये। हे द्विजो ! विन्ध्य भी बहुत प्रसन्न हुआ; उसने अपना कार्य सिद्ध किया और दुःख का परित्याग कर दिया।

5. केदारनाथ - केदारनाथ स्थित ज्योतिर्लिंग भी भगवान शिव के बारह प्रमुख ज्योतिर्लिंगों में आता है। यह उत्तरखंड में स्थित है। बाबा केदारनाथ का मंदिर बद्रीनाथ के मार्ग में स्थित है। केदारनाथ समुद्र तल से 3584 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। केदारनाथ का वर्णन स्कन्द पुराण एवं शिव पुराण में भी मिलता है। यह तीर्थ भगवान शिव को अत्यंत प्रिय है। जिस प्रकार कैलाश का महत्व है उसी प्रकार का महत्व शिव जी ने केदार क्षेत्र को भी दिया है।

पाण्डवों को देखकर जिन्होंने माया से महिष का रूप धारण कर पलायन किया था और जब उन पाण्डवों ने महिषरूपधारी उन शिवको तथा उनकी पूँछ भी पकड़ ली, तब वे उन (पाण्डवों) के प्रार्थना करने पर नीचे की ओर मुखकर वहाँ स्थित हो गये। भक्तवत्सल नामक वाले सदाशिव उसी रूप में वहाँ विराजमान हुए। उस रूप का शिरोभाग नयपाल (नेपाल) - में प्रकट हुआ। उसके बाद शिवजी ने उन्हें (पाण्डववों को) पूजन करने की आज्ञा प्रदान की । तब उनके द्वारा पूजित होकर शिवजी ने उन्हें अनेक वरदान दिये और स्वयं वहीं स्थित हो गये। पाण्डव भी उनकी पूजाकर प्रसन्न होकर सभी मनोवांछित फल प्राप्त करके समस्त दुःखों से मुक्त होकर वहाँ से चले गये।

भारतवासी लोगों द्वारा केदारेश्वर क्षेत्र में साक्षात् (भगवान) शंकर की नित्य पूजा की जाती है। जो शिवप्रेमी वहाँ का शिवरूप युक्त कंकण उन्हें प्रदान करता है, वह शिवजी के समीप जाकर उनके उस रूप को देखकर सभी पापों से छूट जाता है। जो

बदरीवन की यात्रा करता है, वह भी जीवन मुक्त हो जाता है। वहाँ नर- नारायण तथा केदाररेश्वर शिवजी का दर्शन करके मनुष्य मुक्ति का अधिकारी हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है।

केदारेश्वर जो भक्त उनकी यात्रा करते हुए उनकी यात्रा करते हुए मार्ग में मृत्यु को प्राप्त होते हैं, वे भी मुक्त हो जाते हैं; इसमें संशय नहीं करना चाहिये। वहाँ जाकर प्रसन्नता से युक्त होकर केदारेश्वर का पूजनकर तथा वहाँ का जल पीकर मनुष्य पुनर्जन्म नहीं पाता है।

हे बाह्मणों! इस भरतखण्ड में सभी प्राणियों को नर - नारायण तथा केदारेश्वर की भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। वे इस भूखण्ड के स्वामी हैं और विशेष करके सबके स्वामी हैं, केदार नामक शम्भु सभी प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं; इसमें सन्देह नहीं हैं।

6. भीमाशंकर - भीमाशंकर ज्योतिर्लिंग महाराष्ट्र के पूणे जिले में सहयाद्रि नामक पर्वत पर स्थित है। भीमाशंकर ज्योतिर्लिंग को मोटेश्वर महादेव के नाम से भी जाना जाता है। इस मंदिर के विषय में मान्यता है कि जो भक्त श्रद्धा से इस मंदिर का दर्शन प्रतिदिन सुबह सूर्य निकलने के बाद करतः है, उसके सात जन्मों के पाप दूर हो जाते हैं तथा उसके लिए स्वर्ग के मार्ग खुल जाते है।

कामरूप नामक देश में लोकहित की कामना से साक्षात् कल्याण एवं सुख के भाजन शिवजी स्वयं प्रकट हुए थे। हे मुनीश्वरों।

पूर्व समय में सभी प्राणियों को सदा दुःख देने वाला एवं धर्म को नष्ट करने वाला भीम नामका एक बड़ा बलवान् राक्षस हुआ था।

महाबलवान् वह कुम्भकर्ण के द्वारा कर्कटी नामक राक्षसी से उत्पन्न हुआ था। कुम्भकर्ण से उत्पन्न कर्कटीका बलवान् पुत्र राक्षस भीम ब्रह्मा के द्वारा दिये गये वरदान से उन्मत होकर देवताओं को निरन्तर पीड़ा पहुँचा रहा है।

हे महेश्वर! आप दुःख देने वाले उस भीम नामक राक्षस का वध कीजिये। शिवजी - 'मैं उसका वध करूँगा' - ऐसा कहकर पुनः देवताओं से कहने लगे। शिवजी बोले - 'हे भीम! देखो, मैं ईश्वर हूँ, मैं (राजाकी) रक्षा के लिये प्रकट हुआ हूँ। मेरा पहले से ही यह व्रत है कि मैं सदा भक्तों की रक्षा करता हूँ। अतः अब तुम भक्तों को सुख देने वाले मेरे बलको शीघ्र देखो' - ऐसा कहकर शिवजी ने अपने पिनाक धनुष से उसकी तलवार के दो टुकड़े कर दिये। तब उस राक्षस ने पुनः अपना त्रिशूल फेंका। शिवजी ने उस दुष्ट के उस त्रिशूल के भी सैकड़ों टुकड़े कर दिये।

इसके बाद शिवजी की कृपा से सभी मुनीश्वरों तथा इन्द्र आदि सभी देवताओं को शान्ति प्राप्त हुई और सारा जगत् स्वस्थ हो गया। देवताओं एवं ऋषियों ने शिवजी से विशेष रूप से प्रार्थना की - संसार को सुख देने के लिये आप स्वामी को अब यहीं निवास करना चाहिये। निर्बल तथा पराक्रमहीन लोगों को दुःख देनेवाला यह बड़ा कुत्सित देश है, आपके दर्शन से उन लोगों का कल्याण होगा। आप भीमशंकर नाम से प्रसिद्ध होंगे और सब कुछ सिद्ध करेंगे। सभी आपत्तियों को दूर करने वाला यह लिंग सदा पूज्य होगा।

7. काशी विश्वनाथ - विश्वनाथ ज्योतिर्लिंग भारत के बारह ज्योतिर्लिंगों में से एक है। यह उत्तर प्रदेश के काशी नामक स्थान पर स्थित है। काशी सभी धर्म स्थलों में सबसे अधिक महत्व रखती है। इसलिए सभी धर्म स्थलों में काशी का अत्यधिक महत्व कहा गया है। इस स्थान की मान्यता है कि प्रलय आने पर भी यह स्थान बना रहेगा। इसकी रक्षा के लिए भगवान शिव इस स्थान को अपने त्रिशूल पर धारण कर लेंगे और प्रलय के टल जाने पर उसके स्थान पर पुनः रख देंगे।

यह क्षेत्र चारों दिशाओं में सभी ओर पाँच कोस तक फैला हुआ कहा गया है, इसमें कहीं भी मर जाने पर प्राणी को अमृत्व की प्राप्ति होती है।

यदि पूर्वजन्म में आदरपूर्वक काशी का दर्शन किया गया है, तभी में आकर मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होता हैं, अन्यथा नहीं। काशी में आकर जो मनुष्य गंगास्नान करता है उसके संचित तथा क्रियमाण कर्मका नाश हो जाता है। इस प्रकार काशीपुरी का

तथा विश्वेश्वर का भी बहुत माहात्म्य है, जो सज्जनों को भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है।

8. त्रंयबकेश्वर - ज्योतिर्लिंग गोदावरी नदी के करीब महाराष्ट्र राज्य के नासिक जिले में स्थित है। इस ज्योतिर्लिंग के सबसे अधिक निकट ब्रहमागिरि नाम का पर्वत है। इसी पर्वत से गोदावरी नदी शुरू होती है। भगवान शिव का एक नाम त्रयंबकेश्वर भी है। कहा जाता है कि भगवान शिव को गौतम ऋषि और गोदावरी नदी के आग्रह पर यहां ज्योतिर्लिंग रूप में रहना पड़ा।

यह त्रंयबक नाम से प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंग गौतमी के तटपर स्थित है और महान् पापों का नाश करने वाला है। जो इस त्रयम्बकेश्वर नामक ज्योतिर्लिंग का भक्तिपूर्वक दर्शन, पूजन, प्रणाम एवं स्तवन करता है, वह सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है।

गौतम के द्वारा पूजित यह त्रयम्बक नामक ज्योतिर्लिंग इस लोक में सम्पूर्ण कामनाओं को देने वाला तथा परलोक में उत्तम मुक्ति प्रदान करने वाला है।

9. वैद्यनाथ - श्री वैद्यनाथ शिवलिंग का समस्त ज्योतिर्लिंग की गणना में नौवां स्थान बताया गया है। भगवान श्री वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग का मन्दिर जिस स्थान पर अवस्थित है, उसे वैद्यनाथ धाम कहा जाता है। यह स्थान झारखंड राज्य (पूर्व में बिहार) के देवघर जिला में पड़ता है।

बाद दैत्यपति महात्मा रावण ने अपने सिर काटकर शिव का पूजन प्रारम्भ किया। उसने शिव पूजन में विधिपूर्वक एक - एक सिर काट डाला, इस प्रकार जब उसने क्रमशः अपने नौ सिर काट डाले, तब एक सिर के शेष रहने पर शंकर जी प्रसन्न हो गये और वे भक्तवत्सल सदाशिव सन्तुष्ट होकर वहीं प्रकट हो गये । तब उस रावण ने हाथ जोड़कर तथा सिर झुकाकर कल्याणकारी शिवजी से कहा - आप मुझपर प्रसन्न होइये, मैं आपको लंकापुरी ले चलता हूँ, मेरी इस इच्छा को पूर्ण कीजिये, मैं आपकी शरण में हूँ। तब शिवजी ने कहा मेरे इस श्रेष्ठ शिवलिंग को अपने घर ले जाओ। किंतु तुम इस लिंग को भूमि पर जहाँ भी रख दोगे, यह वहीं पर स्थित हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं। अब जैसा चाहो, वैसा करो।

सूतजी बोले - उन शिवजी के इस प्रकार कहने पर राक्षसेश्वर रावण 'ठीक है' - ऐसा कहकर उसे लेकर अपने घर चला। इसके बाद शिव की माया से मार्ग में ही उसे लघुशंका की इच्छा हुई। जब पुलस्त्यका पौत्र वह सामर्थ्यशाली रावण मूत्र के वेग को रोकने में समर्थ नहीं हुआ, तब उसने वहाँ एक गोप को देखकर उसने प्रार्थनाकर उस शिवलिंग को उसी को दे दिया । इस प्रकार वज्रसार से उत्पन्न हुआ वह लिंग वहीं पर स्थित हो गया, जो दर्शनमात्र से पापों को दूर करने वाला तथा समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला है।

हे मुने! वह लिंग तीनों लोकों में वैद्यनाथेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुआ, वह सत्पुरूषों को भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है।

यह दिव्य, उत्तम एवं श्रेष्ठ ज्योतिर्लिंग दर्शन एवं पूजन से सारे पापों को दूर करने वाला है और मुक्ति प्रदान करने वाला है।

सरे लोकों का कल्याण करने के लिये उस लिंग के वहाँ स्थित हो जाने पर रावण श्रेष्ठ वर प्राप्तकर अपने घर चला गय और उस महान् असुरने अपनी पत्नी से अत्यन्त हर्षपूर्वक सारा वृत्तान्त बताया।

10. नागेश्वर ज्योतिर्लिंग - यह ज्योतिर्लिंग गुजरात के बाहरी क्षेत्र में द्वारिका स्थान में स्थित है। धर्म शास्त्रों में भगवान शिव नागों के देवता है और नागेश्वर का पूर्ण अर्थ नागों का ईश्वर है। भगवान शिव का एक अन्य नाम नागेश्वर भी है। द्वारका पुरी से भी नागेश्वर ज्योतिर्लिंग की दूरी 17 मील की है। इस ज्योतिर्लिंग की महिमा में कहा गया है कि जो व्यक्ति पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के साथ यहां दर्शन के लिए आता है उसकी सभी मनोकामनाएं पूरी हो जाती है।

किसी समय उस दुष्टात्मा राक्षस दारूक के एक सेवक ने वैश्य के समक्ष (स्थित हुए) शिवजी का सुन्दर रूप देखा।

हे शंकर! हे देवेश! हे शम्भो! हे शिव! हे

त्रिलोकश! हे दुष्टनाशक ! हे भक्तवत्सल! इस दुष्ट से रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।

हे देव! आप ही मेरे सर्वस्व हैं, हे प्रभो! ठस समय मैं आपके अधीन हूँ और आप ही मेरे सर्वदा प्राण है।

उस (भवन) के बीच ज्योतिः स्वरूप परिवारसहित अद्‌भुत शिवका रूप देखकर उसने पूजन किया। तब उससे पूजित हुए शिवजी प्रसन्न हो गये और उन्होंने (सुप्रिय वैश्यको) पाशुपत नामक अस्त्र दे करके सभी उपकरणों तथा गणों सहित उन समस्त राक्षस गणों का स्वयं शीघ्रता से संहार कर दिया। इस प्रकार दुष्टों का वध करने वाले उन शिव ने अपने भक्त की रक्षा की।

उस समय अपनी लीलाओं से सुन्दर शरीर धारण करने वाले तथा अत्यद्भुत चरित्र करने वाले शिवजी ने उन सबको मारकर उस वन वरदान दिया कि इस वन में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शुद्र - इन चारों वर्णो के धर्म नित्य स्थिर रहेंगे।

यहाँ शिवधर्म प्रवर्तक तथा शिवधर्मवक्ता श्रेष्ठ मुनि ही होंगे, तमोगुणी लोग कभी नहीं होंगे।

11. रामेश्वरम ज्योतिर्लिंग - यह ज्योतिर्लिंग तमिलनाडु राज्य के रामनाथपुरं नामक स्थान में स्थित है। भगवान शिव के बारह ज्योतिर्लिंगों में से एक होने के साथ - साथ यह स्थान हिंदुओं के चार धामों में से एक भी है। इस ज्योतिर्लिंग के विषय में यह मान्यता है कि इसकी स्थापना स्वयं भगवान श्रीराम ने की थी। भगवान राम के द्‌वारा स्थापित होने के कारण ही इस ज्योतिर्लिंग को भगवान राम का नाम रामेश्वरम दिया गया है।

पूर्व समय के सज्जनों के प्रिय भगवान् विष्णु पृथ्वी पर (रामके रूप में) अवतरित हुए। उस समय महामायी रावण ने उनकी पत्नी सीताजी हरण कर लिया और उन जनकपुत्री को अपने घर लंकापुरी में पहुँचा दिया।

सीता को खोजते हुए राम किष्किन्धा नामक नगरी में गये और उन्होंने सुग्रीव से मित्रता कर बाली का वध किया। शिवकी प्रार्थना करके और बारंबार उन्हें नमस्कार कर - हे शंकर! आपकी जय हो, आपकी जय हो - इस प्रकार ऊँचे स्वर में इन उद्‌घोषों से जयकार की। राम की भक्ति से प्रसन्नचित्त होकर उन महेश्वर कहा - हे राम की भक्ति से प्रसन्नचित्त होकर उन महेश्वर ने कहा - हे राम! तुम्हारा कल्याण हो, वर माँगो।

उस समय उनके रूप को देखकर सभी लोग पवित्र हो गये और स्वयं शिवधर्मपरायण श्रीराम ने शिव की पूजा की। उन्होंने अनेक प्रकार की स्तुतिकर प्रसन्नतापूर्वक शिवजी को प्रणाम करके रावण के साथ युद्ध में अपनी विजय के लिये प्रार्थना की।

इसके बाद श्रीराम की भक्ति से सन्तुष्ट होकर उन महेश्वर ने पुनः कहा - हे महराज! टापकी विजय हो। तब शिवजी के द्वारा विजय का वरदान पाकर और उनकी आज्ञा प्राप्त कर वे मस्तक झुकाकर तथा हाथ जोड़कर पुनः प्रार्थना करने लगे।

श्रीराम बोले - हे स्वामिन् ! हे शंकर ! यदि आप प्रसन्न हैं, तो संसार को पवित्र करने के लिये तथा दूसरों का उपकार करने के लिये आप यहीं निवास करें। उनके ऐसा कहने पर शिवजी वहीं पर लिंगरूप में स्थित हो गये और रामेश्वर नामसे पृथ्वी पर प्रसिद्ध हुए।

जो दिव्य गंगाजल के द्वारा उत्तम भक्तिभाव से श्रीरामेश्वर नामक शिवलिंग को स्नान करायेगा, वह जीवनमुक्त हो जायेगा और इस लोक में देवताओं के लिये भी दुर्लभ सम्पूर्ण भोगों को भोगकर अन्त में श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करके निश्चित रूप से कैवल्य (मोक्ष) प्राप्त कर लेगा।

12. धृटेश्वर मन्दिर - धृटेश्वर महादेव का प्रसिद्ध मंदिर महाराष्ट्र के औरंगाबाद शहर के समीप दौलताबाद के पास स्थित है। इसे घृसणेश्वर या घुश्मेश्वर के नाम से भी जाना जाता है। दूर - दूर से लोग यहां दर्शन के लिए आते हैं और आत्मिक शांति प्राप्त करते हैं। भगवान शिव के बारह ज्योतिर्लिंगों में से यह अंतिम ज्योतिर्लिंग है। बौद्ध भिक्षुओं द्‌वारा निर्मित एलोरा की प्रसिद्ध गुफाएं इस मंदिर के समीप स्थित हैं। यहीं पर श्री एकनाथजी गुरू व श्री जनार्दन महाराज की समाधि भी है।

तब अत्यन्त प्रसन्न हुए महेश्वर शिवजी बोले

- हे धुश्मे! मैं तुम्हारे नामसे घुश्मेश्वर के रूप में प्रसिद्ध होकर यहाँ निवास करूंगा और सबको सुख प्रदान करूँगा।

यहाँ पर मेरा घुश्मेश्वर नामक शुभ ज्योतिर्लिंग प्रसिद्ध होगा और यह सरोवर सदा सभी लिंगो का निवास स्थान होगा। इसलिये यह शिवालय नाम से तीनों लोकों में प्रसिद्ध होगा। यह सरोवर दर्शनमात्र से सदा सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला होगा।

हे सुव्रते ! तुम्हारे वंश में एक सौ एक पीढ़ीपर्यन्त इसी प्रकार के श्रेष्ठ पुत्र होते रहेंगे, इसमें सन्देह नहीं है, वे सुन्दर स्त्री वाले, महाधनी, दीर्घजीवी, मैधावी, विद्वान्, उदार तथा भोग - मोक्ष के फलको प्राप्त करने वाले होंगे। इन सबको एक सौ एक पुत्र होंगे, जो गुणों में परस्पर एक - से - एक अधिक होंगे। इस प्रकार तुम्हारे वंश का अति सुन्दर विस्तार होगा।

सूतजी बोले - ऐसा कहकर शिवजी वहाँ ज्योतिर्लिंगरूप ये स्थित हो गये। वे घुमेश्वर नाम से विख्यात हुए और वह सरोवर शिवालय नाम से विख्यात हुआ।

- बारह ज्योतिर्लिंगों के छाया चित्र -

Vaidyanath Jyotirlinga

Bhimashankara

Kedarnath

Mahakaleswar

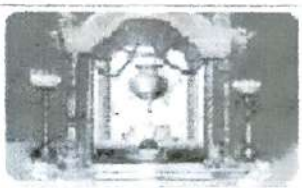
Mallikarjuna

Omkaresswar

Somnath

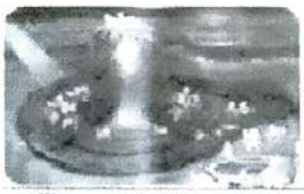
Trayembakeswar

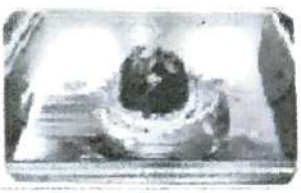
Rameshwaram

Nagneswar

Kashi Vishwanath

Grishneswar

संदर्भ ग्रंथ

1. श्रीशिवमहापुराणा पृठ क्र. 196
2. श्रीशिवमहापुराणा पृठ क्र. 197
3. श्रीशिवमहापुराणा पृठ क्र. 198-202
4. श्रीशिवमहापुराणा पृठ क्र. 206-207
5. श्रीशिवमहापुराणा पृठ क्र. 216
6. श्रीशिवमहापुराणा पृठ क्र. 213
7. श्रीशिवमहापुराणा पृठ क्र. 1221'222
8. श्रीशिवमहापुराणा पृठ क्र. 223-225
9. श्रीशिवमहापुराणा पृठ क्र. 229
10. गोस्वामी तुलसीदास जी - (रामचरितमानस)
11. श्रीमद्भागवत महापुराण (10.42.6)
12. वाल्मीकि रामाण बालकाण्ड
13. ऋसं. (1.12.2.81)
14. अ. सं. (8.1.4)
15. छान्दोग्योपनिषद् 6.4
16. अथर्ववेद संहिता (काण्ड 8 सूक्त 1, मंत्र 4)
17. भगवद्गीता, डॉ. राधाकृणन्, पेज,न196
18. गीता 4/47
19. अध्याय 1-6, प्रथम. ट्क ज्ञान - योग
20. अध्याय 7-12, द्वितीय. ट्क कर्म- योग
21. गीता, अध्याय 15
22. गीता, 2/39
23. गीता अध्याय 4/57
24. गीता अध्याय 2/48
25. गीता 7/19
26. गीता 9/34
27. गीता 2/57
28. गीता 18/73
29. श्रीमद भगवद्गीता, डॉ. राधाकृणन्, 2004 पेज, 91
30. श्रीमद्भागवत पुराण अध्याय3/20/34-36 6 तत्रैव 9/6
31. तत्रैव, 3/20/23-37 8 तत्रैव 9/9
32. ब्रह्मवैर्त पुराण पूर्वभाग, अध्याय, 9/15,16 9 तत्रैव 9/9
33. वायु पुराण, अध्याय,9/15/16 10 तत्रैव 9/10
34. किरातार्जुनीयम् 9/5

"वैदिक शिवतत्त्व-साम्प्रतिक परिप्रेक्ष्य में"

डॉ0 लक्ष्मी मिश्रा

सहायक आचार्य

संस्कृत एवं प्राकृतभाषा विभाग, दी.द.उ. गोरखपुर

विश्वविद्यालय, गोरखपुर

शिव शब्द शब्दकोशों में शुभ, माङ्गलिक, स्वस्थ, प्रसन्न, समृद्ध एवं सौभाग्यशाली अर्थ का वाचक है। व्याकरणात्मक दृष्टि से शिव शब्द अदादिगण के शी धातु से निष्पन्न होता है। अतः जिसमें सब कुछ शयन करता है, वह शिव है। दिवादिगण के शो ञ्वन् से भी शिव शब्द की व्युत्पत्ति मानी गयी है। श्यतिपापं अर्थात् जो सभी प्रकार के दुःखों एवं पापों को दुर्बल कर दे, वह शिव है। देवता के रूप में शिव, ब्रह्मा, विष्णु, महेश के नाम से प्रसिद्ध त्रिदेवों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। वे सृष्टि के संहारक हैं। शिव शब्द का अर्थ शुभग्रहों का योग, वेद एवं मोक्ष भी है।[1] एक अन्य शब्दकोश में शिवः के बहुत से पर्यायों की गणना है। जैसे -महादेवः, शम्भुः, पशुपतिः, शूलिन्, महाईश्वरः, शङ्करः, चन्द्रशेखरः, गिरिशः, मृडः, पिनाकिन्, त्रिलोचनः, भूतेशाः, धूर्जटि, हरः, त्रयम्बकः, त्रिपुरारिः, गङ्गाधरः, वृषध्वजः, भवः, रुदः, उमापतिः, महानटः, भैरवः, पञ्चाननः, कण्ठेकालः, नन्दीश्वरः तथा परमेश्वरः, वेदः एवं श्रृगालः अर्थ भी किया गया है।[2] देवतत्त्व के रूप में शिव की सपर्या प्राचीन युग से ही सिन्धुघाटी में होती रहती है। इसके पुरातात्त्विक साक्ष्य प्राप्त होते हैं। **"सर जॉन मार्शल ने अपने** मोहनजोदड़ो **एण्ड इण्डस** सिविलाइजेशन" नामक ग्रन्थ में उल्लेख किया है कि - मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा की खुदाई से ज्ञात होता है कि शैव धर्म का इतिहास ताम्रपाषाण युग अथवा उससे भी पूर्व का है।[3] इस आधार पर शिव को विश्व का प्राचीनतम देवता स्वीकार किया जा सकता है। पौराणिक दृष्टि से शिव त्रिदेवों में निस्सन्देह अन्यतम स्थान रखते हैं। लोकप्रियता एवं साहित्य दोनों स्तर पर वह विष्णु के समानान्तर हैं। अष्टादशपुराणों में दशपुराण शिवपरकपुराण हैं, जिनमें उनके मङ्गलकारी एवं कल्याणकारी स्वरूप के सर्वत्र दर्शन होते हैं। शिव आशुतोष हैं। वे मनुष्यों के ही नहीं देवों एवं असुरों, पशु-पक्षियों एवं समस्त प्राणिमात्र के आराध्य हैं। शिव की यह विशेषता उन्हें त्रिदेवों में विशिष्ट स्थान प्रदान करती है। वे जितने देवताओं के पूज्य हैं उतने ही वह असुरों द्वारा भी स्वीकार्य हैं। पुराणों में वर्णित बड़े-बड़े प्रतापी असुर जो देवताओं एवं सम्पूर्ण सृष्टि के लिए संकट के विषय थे वे सभी अधिकांशतः शिवभक्त थे और उनको प्रसन्न करके ही उन राक्षसों ने विलक्षण शक्तियाँ अर्जित की थी। ये शिव के समदर्शी व्यक्तित्त्व का द्योतक है।

दार्शनिक दृष्टि से भी शैव दर्शन अत्यन्त समृद्ध एवं लोकप्रिय है। शैव दर्शन के अनुसार शिव ही परमात्मतत्त्व है। इनके समक्ष अन्य किसी तत्त्व का कोई अस्तित्व नहीं है। भोग से मोक्ष तक का पर्यवसान उनमे ही है। वे तात्त्विक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से सबके मूल हैं। वे अपने अन्तःकरण से जगत् को अभिव्यक्त करते हैं। पुनः उसका स्वयं में विलय कर लेते हैं। उनके ये कृत्य क्षेत्राश्रित हैं जबकि क्षेत्रस् (प्राणी) के लिए निग्रह, अनुग्रह होता

है। प्राणी द्वारा उस अनुग्रह तक पहुँचने के लिए ही चारो कृत्यों की उपादेयता है। शिव अपने स्वातन्त्रय से अपना निग्रह (गोपन) करके संसार में संसरण करते हैं। पुनः प्रकाशन करके अनुग्रह प्रदान करते हैं। जीव जब अपने मूलस्थिति (शिवस्वरूप) से विमुक्त होकर कुछ काल के लिए विदेश (संसार) में भ्रमण (प्रवृत) करके पुनः स्वदेश लौटता है (निवृत्ति) तब वह स्वदेश के महत्त्व को भलीभाँति समझ पाता है। यही संसरण की सार्थकता है।[4]

ऋग्वैदिक काल में इन्हें रुद्र, उत्तरवैदिककाल में महेश्वर, उपनिषद्काल में महादेव और अवान्तर में पशुपति, शिव एवं शङ्कर के नामों से जाना जाता रहा है। ऋग्वेद में यदि शिवतत्त्व का अनुशीलन करे तो[5] ऋग्वेद में शिव पद एक बार प्रयोग हुआ है। शिवः सम्पूर्ण ऋग्वेद में 19 बार आया है। इसके अतिरिक्त शिवम् पद दो बार, शिवाम्, शिवेन, शिवायै एवं शिवस्य ये सभी पद एक-एक बार प्रयुक्त हुआ है किन्तु ये सभी किसी देवता विशेष के रूप में नहीं वरन् सुखकारी, कल्याणकारी अथवा मङ्लकारी अर्थ वाले विशेषण के रूप में प्रयुक्त हैं। उदाहरण कि लिए[6] ऋग्वेद में अग्नि के लिए मन्त्र आया है -

"त्वमग्ने प्रथमों अङ्गिरा ऋषि देवो देवानामभवः शिवसखा।"

सायण ने इसका भाष्य किया है - हे अग्ने। स्वयं[7]

देवो भूत्वा देवानाम् अन्येषां(शिवः) शोभनः सखाभव।

एक अन्य मन्त्र में ऋषि अन्न को सम्बोधित करता है -

उप नः पितवाचर शिवः शिवाभिरूतिभिः।
मयोभुरद्विषेण्यः सखासुशेवा अद्वया।[8]

सायणभाष्य के अनुसार इस मन्त्र का अर्थ है **- हे पितो। यतस्त्वंशिवः मङ्गलः अतः शिवभिः मङ्गलयुक्ताभि अतिर्भिःरक्षणैः नो अस्मान् उप आचर समीपं आगच्छ।** अर्थात् हे पिता! मङ्गलमय हो। कल्याणवाही आश्रयदान -दान हमारे पास आकर हमें सुख दो।

ऋग्वेदीय मन्त्रों में शिव का दैवीकरण रुद्र के रूप में प्राप्त होता है। देवतातत्त्व के लिए शिव शब्द का प्रयोग नहीं है। मात्र एक स्थान पर उन्हे शिवः अर्थात् सुखकर कहा गया है।

स्तोमं वो अद्य रुद्राय शिक्वसे क्षयदवीराय नमसा दिदिष्ठन्।
येभिः शिवः स्ववॉ एष यावभिर्दिषः सिषक्ति स्वयशानिकामभिः।[9]

अर्थात् वे आकाश से जलसिञ्चन द्वारा सुखकर सिद्ध होते हैं। इस प्रकार शिव का वैदिक स्वरूप रुद्र है। जो शिव के घातक रूप को प्रकट करता है। योग क्षेम के निर्वहन के फलस्वरूप रूद्र के कल्याणकारी स्वरूप की विग्रहवत्ता ही शिव है। यह चिन्तन और भी दृढ़ हो जाता है जब मन्त्रों में शिव शब्द का प्रयोग कल्याणप्रद विषयों में दिखाई पड़ता है। अतः उग्र रूप के कारण जो रुद्र है, वे ही जगत् के मङ्गल करने के कारण 'शिव' है। रुद्र एवं शिव की अभिन्नता अवान्तर वैदिक ग्रन्थों में सुस्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित की गयी है। जिसकी प्रथम सूचना भी ऋग्वेद में ही उपलब्ध होती है।

क्वस्थ ते रुद्र मृळयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजे जलाषः।[10]

अर्थात् हे रुद्र! तुम्हारा वह सुखदायक हाथ कहाँ है? जो सबको सुख पहुँचाने वाली दवाएं बनाता है। रुद्र का उपकारक स्वरूप चिकित्सक के रूप में वर्णित है। उसको अनेक बार मड्वित अर्थात् उपकारी कहा गया है। यह कल्याणकारी शिव है।[11] यह शिव उपाधि अथर्ववेद तक किसी अन्य देवता की विशिष्टता नहीं बन सकी है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में रुद्र का नाम शिव बताया गया है। वह स्रष्टा, ब्रह्म एवं परमात्मा के रूप में उपास्य माना गया है।[12]

शिवतत्त्व के आदि स्वरूप 'रुद्र' का शाब्दिक अर्थ, उसकी विकासपरम्परा, स्वरूपविश्लेशण, गुण-कथन एवं उपासनादि का दर्शन सर्वप्रथम ऋग्वेद में होता है। रुद्र के लिए ऋग्वेद में 3 सम्पूर्ण सूक्त

प्राप्त हैं। प्रथम मण्डल के एक सौ चौदहवें सूक्त में ग्यारह मन्त्रों द्वारा रुद्र की सपर्या की गयी है। इसके ऋशि कुत्स हैं। द्वितीय मण्डल के तैतीसवें सूक्त में कुल पन्द्रह मन्त्र एवं ऋशि गृत्समद हैं। सातवें मण्डल के छियालीसवें सूक्त में चार मन्त्र रुद्र को समर्पित हैं जो वसिश्ट ऋशि द्वारा दृश्ट हैं। एक अन्य सूक्त प्रथम मण्डल के तैंतालीसवें सूक्त में कुल नौ मन्त्र हैं, जिसमें एक से पॉच रुद्र के लिए तथा शेश मन्त्र सोम के लिए उक्त है। इस सूक्त के ऋशि कण्व हैं। ऋग्वेद के शश्ठ मण्डल के चौहत्तरवें सूक्त के चार मन्त्रों में सोम एवं रुद्र की संयुक्त रूप से स्तुति भरद्वाज ऋशि द्वारा की गई है। इसके अतिरिक्त विश्वेदेवा सूक्तों में भी एक अथवा एक से अधिक मन्त्र रुद्रदेव को समर्पित हैं। सम्पूर्ण ऋग्वेद में रूद्र का पिच्चहत्तर बार नामोल्लेख प्राप्त होता है। ये रुद्रसूक्त ही वास्तव में शैवधर्म एवं शैवदर्शन की उद्गम स्थली हैं। ऐसा रुद्र शब्द की व्याख्या से भी स्पश्ट होता है। सायण ने ऋग्वेद, रुद्रसूक्त (1/114) में भाश्य के प्रारम्भ में रुद्र शब्द की छह प्रकार से व्याख्या की है -

क. **रुद्राय रोदयतिसर्वमन्तकाले इति रुद्रः** अर्थात् जो अन्त समय (मृत्यु के समय) में सबको रुला देता है, वह रुद्र है।

ख. **रुत् संसाराख्यंदुःखं तत् द्रावयति अपगमयति विनाशयतीतितरुद्रः** - यहॉ रुत् का तात्पर्य है - संसाररूपी दुःख। उसे जो पिघला दे, दूर कर दे अथवा नश्ट कर दे, वह रुद्र है। वायवीय संहिता में भी कहा गया है - **"रुद्रं दुःखं दुःखहेतुर्वा तद् द्रावयति नः प्रभुः रुद्र इत्युच्यते तस्मात्।"**

ग. रुतः शब्दरूपाउपनिशदः अर्थात् शब्दस्वरूपवालीउपनिशदें। ताभिर्द्रूयतेगम्यते-प्रतिपाद्यतइतिरुद्रः। और उन उपनिशदों द्वारा जिसका प्रतिपादन किया जाय, वह रुद्र है। इससे ज्ञात होता है कि उपनिशदों का प्रतिपाद्य रुद्र है।

घ. रुत् शब्दात्मिकावाणीतत्प्रतिपाद्यात्मविद्यावा अर्थात् शब्दमयीवाणी तथा उसके द्वारा प्रतिपादित होने वाली आत्मविद्या तामुपासकेभ्योराति ददाति इति रुद्रः और उस आत्मविद्या को जो अपने उपासको को प्रदान करता है, वह रुद्र है। जाबाल उपनिशद् कहती है - **रौति शब्दायते तारकं ब्रह्म उपदिशति स रुद्रः। अत्र हि जन्तोः प्राणेशूत्क्रममाणेशु रुद्रस्तारकं ब्रह्मउपदिशति।** अर्थात् मृत्युकाल में जो प्राणियों को ब्रह्म या तारकमन्त्र का उपदेश दे, वह रुद्र है।

ङ. **रुणाद्धिआवृणोतीतिरुत्** अन्धकारादि **तंदृणातिविदारयतीतिरुद्रः।** यहॉ रुत् का तात्पर्य है अन्धकार इत्यादि जो सब ओर से आवृत कर ले अथवा ढक ले और जो उस अन्धकार को पूर्ण रूप से विदीर्ण कर दे अथवा नश्ट कर दे, वह रुद्र है।

सायण अन्त में रुद्र की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि - **कदाचिद् देवासुरसंग्रामें** अग्न्यात्मकोरुद्रः देवैर्निक्षिप्तंधनमपहृत्यनिरगात् **असुरान् जित्वा** देवाएनमन्विश्यदृश्ट्वाधनमहरन् तदानीमरुदत् तस्माद्रुद्रइत्याख्यायते। (किसी समय जब देवासुर संग्राम हो रहा था, उस समय अग्निस्वरूपरुद्र देवताओं के द्वारा रखे गये धन को चुरा कर भाग गया। देवताओं ने असुरों पर विजय प्राप्त करने के बाद इस रुद्र को ढूंढ़ लिया और धन को छीन लिया जिसके कारण रुद्र रोने लगा इसलिए इसका नाम रुद्र पड़ा) तथा चतैत्तिरीयकम्सोरोदीद्यदरोदीत्तद्रुदस्य- **रुद्रत्वमिति। (सो रोदीत् यद् अरोदीत् तद् रुद्रस्य रुद्रत्वम्)**[13] काठक संहिता में भी कहा गया है - **यद् अरुदत् तद् रुद्रस्य रुद्रत्वम्।**[14] इस प्रकार कहा जा सकता है कि **रुतम् रोदनं, राति इति रः, किं ददाति - रुदं ददाति इति रूद्रः।** अर्थात् जो सबको रुला दे, वही रुद्र है। अतः रुद्र का शाब्दिक अर्थ है - रुलाने वाला।

ऋग्वेद में रुद्र के मूर्त स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है - उनका स्वरूप अत्यन्त द्युतिमान, दीप्तिमान एवं वाराहवत् दृढ़ाङ्गयुक्त है। वे कपर्दिन्

अर्थात् जटाजूट धारी, बभ्रुवर्णी, सुशिप्र एवं मृळयाकुहस्त हैं।

दिवोवाराहमरुशं कपर्दिनं त्वेशं रूपं नमसा निह्वयामहे।
हस्ते विभ्रद्भेशजा वार्याणि शर्म वर्मच्छर्दीरस्मभ्यं यंसत्।।[15]

रुद्र द्युतिमान सूर्य की भाँति प्रकाशमान् है -

यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यामिव रोचते।
श्रेश्ठो देवानां वसुः।।[16]

एक अन्य मन्त्र में कहा गया है कि - दृढ़ अङ्गवाले, बहुरूप, तेजस्वी एवं बभ्रु वर्ण वाले रुद्र चमकीले स्वर्णाभूशणों से सुशोभित हैं।

स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः।
ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्न वा उ योशद्रुद्रादसुर्यम्।[17]
अर्हन्विभर्शि सायकानि धन्वार्हन्निश्कं यजतं विश्वरूपम्।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्यं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति।।[18]

रुद्र अत्यन्त बलिश्ठ एवं विविध आकृतियों वाले हैं। वे स्वर्णिम आभूशणों से प्रसाधित हैं तथा विभिन्न प्रकार के निश्क धारण करते हैं। वाजसनेयी संहिता के अनुसार रुद्र सहस्राक्ष एवं नीलग्रीव हैं-

नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीळ्हुशे।[19]

वहीं पर उनको उज्ज्वल कण्ठवाला भी कहा गया है -

नमो नीलग्रीवाय च शितिकश्ठाय च।[20]

अथर्ववेद में भी उनके मुख, चक्षु, त्वक्, उदर, जिह्वा एवं दाँतों का उल्लेख किया गया है।[21] इसके अतिरिक्त वे नील शिखण्ड अर्थात् नीले बालों वाले ताम्र एवं लोहितवर्ण वाले, चर्म धारण करने तथा पर्वतों पर निवास करने वाले हैं।[22] ऋचायें कहती हैं - पूजनीय रुद्र के हाथों में वज्र है।

श्रेश्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो।
पर्शि णः पारमंहसः स्वस्ति विश्वा अभीती रपसो युयोधि।।[23]

वे धनुश-वाण धारण करते हैं।[24]

उनका विद्युत-कृपाण आकाश से निकल कर पृथ्वी पर भ्रमण करता है -

या ते दिद्युदवसृश्टा दिवस्परिक्ष्मया चरिति परि सा वृणक्तुनः।
सहस्त्रं ते स्वपिवात भेशजा मा नस्तोकेशु तनयेशु रीरिशः।।[25]

इनका रथ कृश्ण असित है। उसमें श्याम वर्ण के अश्व जुते हैं -

श्यावाश्वं कृश्णमसितं मृणन्तं भीमं रथं केशिनः पादयन्तम्।[26]

रुद्र के स्वरूप के अतिरिक्त उनकी तीन अन्य विशेशतायें ऋचाओं में प्राप्त होती हैं - प्रथमतः रुद्र का अन्य वैदिक देवताओं से साहचर्य एवं तादात्म्य, द्वितीय रुद्र के रौद्र स्वभाव का वर्णन तथा तृतीय प्राणिमात्र के लिए शिवस्वरूप कल्याणकारी, सर्वश्रेश्ठ भिशक् इत्यादि स्वरूप का बार-बार नमन। ऋग्वेद में रुद्र को अन्तरिक्षस्थानी माना गया है। रुद्र सामान्यतया तूफान अथवा झंझावात् की विग्रहवत्ता है। मैक्डानल के अनुसार रुद्र तूफान सम्बन्धी वैद्युत है।[27] मरुत् विद्युत के हस्कार (अट्टहास) दीतिर एवं दीप्तिमान अन्तरिक्ष से उत्पन्न हुये हैं।

हस्करात् विद्युतस्पर्यतो जाता अवन्तु नः मरुतो मृळयन्तु नः[28]

वेबर के अनुसार भी प्रारम्भ में रुद्र तूफान एवं गर्जन के प्रतिरूप थे। उन के व्यक्तित्व में तूफान एवं अग्नि दोनों का समावेश है। एच.एन.विल्सन के अनुसार रुद्र निश्चित रूप से अग्नि या इन्द्र के रूप विशेष थे। इसका आधार ऋग्वेद का यह मन्त्र है -

त्वम् अग्ने रुद्रो असुरो महो दिवरत्वं शर्धोमारुतं[29]

ऋग्वेद में ही एक मन्त्र में रुद्र को केशी के साथ विषपान करते हुए बताया गया है। सायण ने

यहाँ केशी का अर्थ किरणों वाला किया है। अतः रुद्र का सम्बन्ध सूर्य से भी है।[30] रुद्र के शिवत्व का उल्लेख मन्त्रों में प्राप्त होता है। सभी विकारों से मुक्ति दिलाने वाले रुद्र की ईश्वर के रूप में स्तुति की[31] गयी है। प्रजाजनों के आनन्द, पुत्रों-सन्तानों एवं गौ-अश्वादि भयरहित करने के लिए भी स्तुति की है। रुद्र गुणकारी एवं शीतल ओषधियों के प्रदाता हैं। उन्हें औषधीय कहा गया है। यह रुद्र के सौम्य व्यक्तित्व का ही परिचायक है। श्रेष्ठ औषधियों का सम्बन्ध तूफान, झंझावात एवं उसमें चमकती हुई विद्युत तथा भयंकर गर्जना से होता है। उस समय समस्त वायुमण्डल स्वच्छ हो जाता है और सभी वृक्षों एवं पादपों में नवजीवन का सञ्चार होता है। शिव शब्द का तात्पर्य भी सत् , मङ्गल, कल्याण एवं भद्र है। यह शिव ही बीजरूपों में जगत् में स्थित रहता है। महाभिषक् रूप रुद्र के पास उपशमन की विशेष शक्ति है। उनके पास अनेक रोगों का उपचार है।[32] रुद्र को '' जलाष'' अर्थात (उपचार करने वाला) तथा ''जलाष भेषज'' (उपशायक ओषधियों से युक्त) कहा गया है।[33] चिकित्सक होने के कारण ही रुद्र का श्रेष्ठतम ओषधि सोम से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह तथ्य सोमरुद्रा को अर्पित मन्त्रों से स्पष्ट होता है। ये दोनों साथ-साथ रोगों को दूर करते हैं इससे यह संकेत मिलता है कि रुद्र की ओषधि सोम है। ऋषि प्रार्थना करता है कि रुद्र एवं सोम गृह में प्रविष्ट व्याधि को चारो ओर से खींच कर बाहर निकालें।[34] ये दोनों असुर सम्बन्धी बल धारण करके प्रत्येक गृह में व्याप्त होते हैं तथा अपने स्तोता को सप्तरत्नों वाला दान देकर उनके लिए कल्याणकारी बनतें हैं। वे यजमानों के सन्तानों एवं पशुओं सभी के लिए शुभ हैं।[35] सोम एवं रुद्र स्तोताओं के शरीरों पर सभी ओषधियों का प्रयोग करते हैं और जो दुष्कर्म यजमान के शरीर पर विद्यमान हैं, उन्हें शिथिल करके निकाल देते हैं।[36]

इस प्रकार ऋग्वेद में रुद्र के व्यक्तित्त्व में विनाशक तत्त्वों का समावेश है किन्तु रुद्र दैत्यों की भाँति सर्वथा मात्सर्ययुक्त कदापि नहीं हैं। उन्हें देवों के क्रोध एवं उनसे उत्पन्न संकटों का प्रतिकार करने वाला बताया गया है।[37] उनका मानव एवं पशुओं के कल्याण के लिए आह्वान किया जाता है। वह श्रेष्ठभिषक है, उनके पास सहस्रों उपचार है।[38] यजुर्वेद में भी रुद्र का चिकित्सक रूप विद्यमान है।[39] यहाँ रुद्र की प्रमुख विशेषता यह है कि अथर्ववेद में वर्णित रुद्र वैदिक देव समूह के श्रेष्ठ देवता न होकर जन सामान्य के आस्था के केन्द्र हैं। प्राणिमात्र के साथ रुद्र का सम्बन्ध बताया गया है। भूत-पिशाच से रक्षार्थ विविध मन्त्र बताये गये हैं तथा ओषधियों की प्राप्ति हेतु प्रार्थना की गयी है।[40]

सन्दर्भ -

1. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत हिन्दी कोश, पृष्ठ सं0 1019
2. डॉ0 रामस्वरूप रसिकेश, आदर्श हिन्दी संस्कृत कोशः, पृष्ठ सं0 575
3. क्षेमराज प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, व्याख्याकार -जयदेव सिंह, पृष्ठ सं0 1
4. क्षेमराज- प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, व्याख्याकार -जयदेव सिंह
5. ऋग्वेद 8/26/23
6. ऋग्वेद 1/31/1
7. ऋग्वेद 1/31/1
8. ऋग्वेद 1/187/3
9. ऋग्वेद 10/92/9
10. ऋग्वेद 2/33/7
11. ऋग्वेद 10/92/7
12. श्वेताश्वतर उपनिषद् 3/11, 4/10, 4/11 एवं 5/14
13. तैत्तिरीय संहिता 1/5/1
14. काठक संहिता 25/1
15. ऋग्वेद संहिता 1/114/5
16. ऋग्वेद 1/43/5
17. ऋग्वेद 2/33/9
18. ऋग्वेद 2/33/10
19. वा.संहिता 16/8
20. वा.संहिता 16/28
21. अथर्ववेद 11/2/3-7
22. वा.संहिता 16/2-7

23. ऋग्वेद 2/33/3
24. ऋग्वेद 2/33/10
25. ऋग्वेद 7/46/3
26. अथर्ववेद 11/2/18
27. वैदिक माइथालजी सूर्यकान्त , पृष्ठ-188
28. ऋग्वेद 1/23/12
29. ऋग्वेद 2/1/6
30. ऋग्वेद 1/114/6 पर सायण टीका
31. ऋग्वेद 2233/1
32. ऋग्वेद 4/46/3
33. ऋग्वेद 1/43/4 - अथर्व 2/27/6
34. ऋग्वेद 6/74/2
35. ऋग्वेद 6/74/1
36. ऋग्वेद 6/74/3
37. ऋग्वेद 1/114/4
38. ऋग्वेद 7/46/3
39. वाज0सं0 19-82,23,58
40. अथर्ववेद 6/57/1, 6/ 10/1, 6/32/2

रामायण में श्री राम का भ्रात-प्रेम

डॉ. (श्रीमती) दीपमाला मिश्र

डॉ. योगेन्द्र वरूण शंकर तिवारी

प्रवक्ता-समाजशास्त्रसर्वेश्वरी स्नातकोत्तर महाविद्यालयनैनी, इलाहाबाद

प्रवक्ता-संस्कृतसर्वेश्वरी स्नातकोत्तर महाविद्यालयनैनी, इलाहाबाद

अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम।
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम।।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के समान मर्यादारक्षक आजतक कोई दूसरा नही हुआ, ऐसा कहना अत्युक्ति नही होगा। श्रीराम साक्षात् परमात्मा थे, वे धर्मकी रक्षा और लोकोंके उद्धार के लिये ही अवतीर्ण हुए थे। उनका प्रत्येक कार्य परम पवित्र, मनोमुग्धकारी और अनुकरण करने योग्य है। ऐसे अनन्त गुणों के समुद्र श्रीराम के सम्बन्ध में मुझ-सरीखे व्यक्ति का कुछ लिखना एक प्रकार से लड़कपन है तथापि अपने मनोविनोदके लिये शास्त्रों के आधार पर यत्किंचित् लिखने का साहस करती हूँ विज्ञजन क्षमा करें। श्रीराम सर्वगुणाधार थे। श्रीराम-जैसी लोकप्रियता तो आजतक कहीं नही देखने में आयी वनवास भेजने के समय शत्रु बनी हुई कैकेयी के मुख से भी ये सच्चे उद्गार निकल पड़ते है–

तुम्ह अपराध जोगु नहिं ताता।
जननी जनक बंधु सुख दाता।।
राम सत्य सबु जो कुछ कहहू।
तुम्ह पितु मातु बचन रत अहहु।।

कैकेयी का राम के प्रति अप्रिय और कठोर बर्ताव तो भगवान्-की इच्छा और देवताओं की प्रेरणा से लोकहितार्थ हुआ था। इससे यह नही सिद्ध होता कि कैकेयी को श्रीराम प्रिय नही थे। किसी का भी राम से विरोध नहीं था। वास्तव में राम के मन में उनमें से किसी के साथ वैर था ही नही। राक्षसगण भी अपने सकुटुम्ब-उद्धार के लिये ही उन्हें वैर-भावसे भजते थे। रावण और मारीचकी उक्तियों से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है-

सुर रंजन भंजन महि भारा।
जौं भगवंत लीन्ह अवतारा।।
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ।
प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ।।
होइहि भजनु न तामस देहा।
मन क्रम बचन मंत्र हढ़ एहा।। **-रावण**

मम पाछें धर धावत धरें सरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहउँ धन्य
न मो सम आन।। **-मारीच**

इससे यह सिद्ध है कि श्रीराम के जमानें में चराचर जीवों का श्रीराम के प्रति जैसा आदर्श प्रेम था वैसा आज नहीं दिखायी पड़ता है। श्रीराम की मात-भक्ति कैसी आदर्श है। जैसा कि इस वाक्य से स्पष्ट होता है कि जिस समय कैकेयी ने वन जाने की आज्ञा दी, उस समय श्रीराम उनके प्रति सम्मान प्रकट करते हुए बोले-माता! इसमें तो सभी तरह मेरा कल्याण है–

मुनिगन मिलनु बिसेषि
बन सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु
बहुरि संमत जननी तोर।।

श्रीराम ने कुपित हुए भाई लक्ष्मण से कहा--

यस्या मदभिषेकार्थे मानसं परितप्यते।
माता नः सा यथा न स्यात्सविशङ्का तथा कुरु।।
तस्याः शङ्कामयं दुःखं मुहूर्तमपि नोत्सहे।
मनसि प्रतिसंजातं सौमित्रेऽहमुपेक्षितुम्।।
न बुद्धिपूर्व नाबुद्धं स्मरामीह कदाचन।
मातृणां वा पितुर्वाहं कृतमल्पं च विप्रियम्।।

(वा.रा. 2/22/6-8)

इसके बाद वन से लौटते हुए भरत से श्रीराम ने कहा--

कामाद्वा तात लोभाद्वा मात्रा तुभ्यमिदं कृतम्।
न तन्मनसि कर्तव्यं वर्तितव्यं व मातृवत्।।

(वा.रा. 2। 112। 19)

राम की अपनी माताओं के प्रति कितनी भक्ति थी। एक बार लक्ष्मण ने वन में कैकेयी की कुछ निंदा कर डाली। इस पर मातृ-भक्त और भ्रातृ-प्रेमी श्रीराम ने जो कुछ कहा सो सदा मनन करने योग्य है--

न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन।
तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु।।

(वा0 रा0 3। 16। 37)

इसी प्रकार उनकी पितृ-भक्ति भी अद्‌भुत है। पिता के वचनों-को सत्य करने के लिये श्रीराम ने क्या नही किया। पिता के दुःख का कारण पता लगने पर -- उत्तर में श्रीराम जी ने कहा

अहो धिड् नार्हसे देवि वक्तुं मामीदृशं वचः।
अहं हि वचनाद्राज्ञः पतेयमपि पावके।।
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे।

(वा0 रा0 2। 18। 28-29)

विलाप करती हुई जननी कौसल्या से श्रीराम ने स्पष्ट ही कह दिया था कि--

नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्य समतिक्रमितुं मम।
प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम्।।

(वा0 रा0 2। 21। 30)

श्रीराम का एकपत्नी व्रत आदर्श है। पत्नी सीता के प्रति राम का कितना प्रेम था, इसका कुछ दिग्दर्शन सीताहरण के पश्चात् श्रीराम की दशा देखने से होता है। यहाँ भगवान् श्रीराम ने अपने'ये **यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भंजाम्यहम्' (गीता 4/11)**के वचनों को मानो चरितार्थ कर दिया है।

श्रीराम का सख्यप्रेम भी आदर्श है। सुग्रीव के साथ मित्रता होने पर आप मित्र के लक्ष्मण बतलाते है--

जे ने मित्र दुख होहिं दुखारी।
तिन्हहि बिलोकत पातक भारी।।
निज दुख गिरि सम रज करि जाना।
मित्रक दुख रज मेरु समाना।।
देत लेत मन संक न धरई।
बल अनुमान सदा हित करई।।
बिपति काल कर सतगुन नेहा।
श्रुति कह संत मित्र गुन एहा।।

फिर उसे आश्वासन देते हुए कहते हैं--

सखा सोच त्यागहु बल मोरें।
सब विधि घटब काज मैं तोरें।।

इसी प्रकार राम का भ्रातृ-प्रेम भी अतुलनीय है। रामायण में जिस भ्रातृ-प्रेम की शिक्षा मिलती है, भ्रातृ-प्रेम का जैसा उच्चाति उच्च आदर्श प्राप्त होता है वैसा जगत् के इतिहास में कहीं नहीं है। लड़कपन से ही श्रीराम अपने तीनों भाइयों के साथ बड़ा भारी प्रेम करते थे। सदा उनकी रक्षा करते और उन्हें प्रसन्न रखने की चेष्टा करते थे।

खेलत संग अनुज बालक नित जोगवत अनट अपाउ।
जीति हारि चुचुकारि दुलारत देत दिवावत दाउ।।

श्रीराम तीनों भाइयों को साथ लेकर भोजन करते, साथ ही खेलते और सोते थे। विश्वामित्रजी के साथ उनके यज्ञरक्षार्थ श्रीराम-लक्ष्मण वन में गये। अनेक विद्या सीखकर और राक्षसों का विनाश-कर मुनि के साथ दोनों भाई जनकपुरमें पहुँचे। धनुष-भंग हुआ। परशुराम जी आये और कोप करके धनुष तोड़ने वाले का नाम-धाम पूछने लगे। श्रीराम ने बड़ी नम्रता से और लक्ष्मण जी के

तेजयुक्त वचनों से उनके प्रश्न का उत्तर दिया। लक्ष्मण जी के कथन पर परशुराम जी को बड़ा कोध आया। वे उन पर दाँत पीसने लगे। इस पर श्रीराम ने जिस चतुरता से भाई के कार्य का समर्थन कर भ्रातृ-प्रेमका परिचय दिया ,उस प्रसंग के पढ़ने पर हदय मुग्ध हो जाता है। तदनन्तर विवाह की तैयारी हुई, परन्तु श्रीराम ने स्वयंवर में विजय प्राप्त कर अकेले ही अपना विवाह नहीं करा लिया। लक्ष्मण जी तो साथ थे ही, भरत-शत्रुघ्न को बुलाकर सबका विवाह भी साथ ही करवाया। विवाह के अनन्तर अयोध्या लौटकर चारों भाई प्रेम पूर्वक रहने लगे और अपने आचरणों से सबको मोहित करने लगे। कुछ समय बाद भरत-शत्रुध्न ननिहाल चले गये। पीछे से राजा दशरथ ने मुनि वसिष्ठ की आज्ञा और प्रजा की सम्मति से श्रीराम के अति शीघ्र राज्याभिषेक का निश्चय किया। चारों ओर मंगल बधाइयाँ बँटने लगी और राज्याभिषेक की तैयारी की जाने लगी। वसिष्ठ जीने आकर श्रीराम को यह हर्ष-संवाद सुनाया। राज्यभिषेक की बात सुनकर कौन प्रसन्न नहीं होता। परन्तु श्रीराम प्रसन्न नहीं हुए, वे पश्चाताप करते हुए कहने लगे।

जनमे एक संग सब भाई ।
भोजन सयन केलि लरिकाई।।
करनबेध उपबीत बिआहा।
संग संग सब भए उछाडा।।
बिमल बंस यहु अनुचिज एकू।
बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेक।।

भरत-शत्रुघ्न तो उस समय मौजूद नहीं थे, अतः श्रीराम जी ने लक्ष्मण से कहा–

सौमित्रे भुङ्क्ष्व भोगांस्त्वमिष्टान्राज्यफलानि च।
जीवितं चापि राज्यं च त्वदर्थमभिकामये।।
(वा0 रा0 2। 4। 44)

इसके बाद ही इस लीला-नाटक का पट-परिवर्तन हो गया। माता कैकेयी की कामना के अनुसार राज्याभिषेक वनगमन के रूप में परिणत हो गया। प्रातः काल के समय जब श्रीराम पिता दशरथ की सम्मति से सुमन्त के द्वारा कैकेयी के महल में बुलाये गये और जब उन्हें कैकेयी के वरदान की बात मालूम हुई तब उन्होंने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की, वे कहने लगे कि 'माता! इसमें बात ही कौन-सी है। मुझे तो केवल एक ही बात का दुःख है कि महराज ने भरत के अभिषेक के लिये मुझसे ही क्यों नहीं कहा–

गच्छन्तु चैवानयितुं दूताः शीघ्रजवैर्हयैः।
भरतं मातुलकुलादद्यैव नृपशासनात्।।
दण्डकारण्यमेषोऽहं गच्छाम्येव हि सत्वरः।
अविचार्य पितुर्वाक्यं समा वस्तुं चतुर्दश।।
(वा0 रा0 2। 19। 10-11)

प्राण प्रिय भाई भरत का राज्याभिषेक हो, इससे अधिक प्रसन्नता मेरे लिये और क्या होगी? विधाता आज सब तरह से मेरे अनुकूल है–

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू।
विधि सब विधि मोहि सनमुख आजू।।
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा।
प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा।।

श्रीराम छोटे भाई लक्ष्मण और सीता सहित वन को चले गये। वन में लक्ष्मणजी श्रीराम-सीता की हर तरह सेवा करते है और श्रीराम भी वही कहते और करते है, जिससे श्रीसीता जी और भाई लक्ष्मण सुखी हों।

सीय लखन जेहि विधि सुखु लहहीं।
सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं।।
जोगवहिं प्रभु सिय लखनहि कैसें।
पलक विलोचन गोलक जैसे।।

इससे यह सीखना चाहिये कि अपनी सेवा करने वाले छोटे भाई और पत्नी को जैसे सुख पहुँचे, वैसे ही कार्य करने चाहिए तथा उनकी वैसे ही रक्षा करनी चाहिए, जैसे पलकें आँखों की करती है। भरत के ससैन्य वन में आने का समाचार प्राप्त कर जब श्रीराम-प्रेम के कारण लक्ष्मण जी क्षुब्ध होकर भरत के प्रति न कहने योग्य शब्द कह बैठे, तब श्रीराम ने भरत की प्रशंसा करते हुए कहा– भाई!

भरत को मारने की बात तुम क्यों कहते हो, मुझे अपने बान्धवों के नाश करने से प्राप्त होने वाला धन नही चाहिए, वह तो विषयुक्त अन्न के समान है--

धर्ममर्थं च कामं च पृथिवीं चापि लक्ष्मण।
इच्छामि भवतामर्थे एतत्प्रतिश्रृणोमि ते।।
भ्रातृणां संग्रहार्थं च सुखार्थं चापि लक्ष्मण।
राज्यमप्यहमिच्छामि सत्येनायुधमालभे।।
यद्धिना भरतं त्वां च शत्रुध्न वापि मानद।
भवेन्मम सुखं किंचिद्धस्म तत्कुरुतां शिखी।।
मन्येऽहमागतोऽयोध्यां भरतो भ्रातृवत्सलः।
मम प्राणैः प्रियतरः कुलधर्ममनुस्मरन्।।
श्रुत्वा प्रत्राजितं मां हि जटावल्कलधारिणम्।
जानक्या सहितं वीर त्वया च पुरुषोत्तम्।।
स्नेहेनाक्रान्तहृदयः शोकेनाकुलितेन्द्रियः।
द्रष्टुमभ्यागतो होष भरतो नान्यथागतः।।
अम्बां च कैकेयीं रुष्य भरतश्चवाप्रियं वदन्।
प्रसाद्य पितरं श्रीमान् राज्यं मे दातुमागतः।।
(वा0 रा0 2। 17। 5-6 एवं 8 से 12)

तुम भरत के सम्बन्ध में भूल समझ रहे हो, भाई भरत को कभी राज्यमद नहीं हो सकता –

सुनहु लखन भल भरत सरीसा।
विधि प्रपंच महँ सुना न दीसा।।
भरतहि होइ न राजमदु विधि हरि हर पद पाइ।
कवहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ।।
लखन तुम्हार सपथ पितु आना।
सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना।।
सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता।
मिलइ रचइ परपंचु विधाता।।
भरतु हंस रविबंस तड़ागा।
जनमि कीन्ह गुन दोष विभागा।।
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी।
निज जस जगत कीन्हि उजिआरी।।
कहत भरत गुन सील सुभाऊ।
पेम पयोधि मगन रघुराऊ।।

लक्ष्मण जी को अपनी भूल मालूम हो गयी। यहाँ भगवान् श्रीराम ने लक्ष्मण के प्रति जो नीति युक्त तीखे और प्रेम भरे वचन कहे उनमें प्रधान अभिप्राय तीन समझने चाहिए। प्रथम, भरत के प्रति श्रीराम का परम विश्वास प्रकट करना, दूसरे, लक्ष्मण को यह चेतवानी देना कि तुम भरत की सरलता, प्रेम, त्याग आदि को जानते हुए भी मेरे प्रेमवश प्रमाद से बालक की तरह ऐसा क्यों बोल रहे हो? और तीसरे, उन्हें फटकार कर ऐसे अनुचित मार्ग से बचाना। भरत आये और हे नाथ! रक्षा करो कहकर, दण्ड की तरह पृथ्वी पर गिर पड़े। लक्ष्मण जी का मन करता है कि भाई भरत को हृदय से लगा लूँ, परन्तु फिर अपने कर्तव्य का ध्यान आता है तब श्रीराम-सेवा में खड़े रह जाते है। आखिर सेवा में लगे रहना ही उचित समझा, परन्तु श्रीराम से निवेदन किये बिना उनसे नही रहा गया–लक्ष्मणजीने सिर नवाकर प्रेम से कहा--

भरत प्रनाम करत रघुनाथा।
भगवान् तो भरत का नाम सुनते ही विहव्ल हो गये।
उठे रामु सुनि पेम अधीरा।
कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा।।
बरबस लिए उठाए उर लाए कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि विसरे सबहि अपान।।

यहाँ चारों भाइयों का परस्पर प्रेम देखकर सभी मुग्ध हो गये। भरत की विनय, नम्रता, साधुता और राम भक्ति देखकर तो लोग तन-मन की सुधि भूल गये। भरत ने भाँति-भाँति से अनेक युक्तियाँ दिखलाकर श्रीराम को राज्य-ग्रहण के लिये प्रार्थना की।

इस संवाद पर भगवान बोले-

लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयायद्वा हिमवान्वा हिमं त्यजेत्।
अतीयात्सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः।।
(वा0 रा0 2। 112 । 18)

चन्द्रमासे चाहे चाँदनी चली जाय, हिमलाय चाहे हिमको छोड़ दे समुद्र चाहे मर्यादा का उल्लंघन कर दे, पर मैं पिता की प्रतिज्ञा को सत्य किये बिना घर नहीं लौट सकता। श्रीराम ने अन्त में प्रेम विवश होकर भरत जी से कहा कि–

मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु।
सत्यसंध रघुबर वचन सुनि भा सुखी समाजु।।

सोच छोड़कर प्रसन्न मन से आज तुम जो कुछ कह दोगे वही करने को तैयार हूँ यानी मुझे सत्य बहुत प्यारा है, परन्तु उससे भी बढ़कर तुम प्यारे हो। तुम्हारे लिये सब कुछ कर सकता हूँ।भरत जी तो श्रीराम के ही भाई थे। उन्होंने बड़े भाई श्रीराम का अपने ऊपर इतना प्रेम देखकर उन्हें संकोच में डालना नहीं चाहा और बोले कि-

जो सेवकु साहिबहि सँकोची।
निज हित चहइ तासु मति पोची।।

जो दास अपने मालिक को संकोच में डालकर अपना कल्याण चाहता है, उसकी बुद्धि बड़ी ही नीच है। भगवान् के इन प्रेम पूर्ण रहस्य के वचनों को सुनते ही भरत श्रीराम के रुखको भलीभाँति समझ गये। उनका विषाद दूर हो गया, परन्तु चौदह साल निराधार जीवन रहेगा। कैसे? अतः-

सो अवलंब देव मोहि देई।
अवधि पारु पावौं जेहि सेई।।

भगवान् ने उसी समय भरत जी के इच्छानुसार अपनी चरण पादुका परम तेजस्वी महात्मा भरत जी को दे दी। भरत जी पादुकाओं को प्रणामकर मस्तकपर धारणकर अयोध्या लौट गये। भाई पर इतना प्रेम था कि श्रीराम उन्हें हृदय खोलकर अपना रहस्य समझाते थे। सीता-हरण हुआ, लंकापर चढ़ाई की गयी और भयनाक युद्ध आरम्भ हो गया। एक दिन शक्ति बाण से श्री लक्ष्मण के घायल हो जाने पर श्रीराम ने भाई के लिये जैसी विलाप-प्रलाप की लीला की, उससे पता लगता है कि छोटे भाई लक्ष्मण के प्रति श्रीराम का कितना अधिक स्नेह था।

श्रीराम कहने लगे-

किं मे युद्धेन किं प्राणैर्युद्धकार्य न विद्यते।
यत्रायं निहतः शेते रणमर्धनि लक्ष्मणः।।
यथैव मां वनं यान्तमनुयाति महाद्युतिः।
अहमस्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम्।।
(वा0 रा0 6। 101। 11-12)

श्रीराम प्रलाप करते हुए कहते है-

सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ।
बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ।।
मम हित लागि तजेहु पितु माता।
सहेहु बिपिन हिम आतप वाता।।
सो अनुराग कहाँ अब भाई।
उठहु न सुनि मम बच बिकलाई।।
जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू ।
पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू।।
सुत बित नारि भवन परिवारा।
होहिं जाहिं जग बारहिं बारा।।
अस बिचारि जियँ जागहु ताता।
मिलइ न जगत सहोदर भ्राता।।
जथा पंख बिनु खग अति दीना।
मनि बिनु फनि करिबर कर हीना।।
असमम जिवन बंधु बिनु तोही।
जौं जड़ दैव जिआवै मोही।।
जैहउँ अवध कौन मुहु लाई।
नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई।।
अब अपलोकु सोकु सुत तोरा।
सहिहि निठुर कठोर उर मोरा।।
निज जननी के एक कुमारा।
तात तासु तुम्ह प्रान अधारा।।
सौंपेसि मोहि तुम्हहि गहि पानी।
सब बिधि सुखद परम हित जानी।।
उतरु काह दैहउँ तेहि जाई।
उठि किन मोहि सिखावहु भाई।।
बहु बिधि सोचत सोच बिमोचन।
स्त्रवत सलिल राजिव दल लोचन।।

जो भाई अपने लिये घर-द्वार छोड़कर मरने को तैयार है, उसके लिये विलाप किया जाना उचित ही है, परंतु श्रीराम ने तो विलाप की पराकाष्टा कर भ्रातृ-प्रेम की बड़ी ही सुन्दर शिक्षा दी है। श्रीहनुमान्जी के द्वारा संजवीनी लाने पर लक्ष्मण जी स्वस्थ हो गये। राम-रावण-युद्ध समाप्त हुआ। तदनन्तर अनन्तशक्ति भगवान् श्रीराम अयोध्या पहुँचकर

क्षण में लीला से ही सबसे मिल लिये। भरत के साथ भगवान् का मिलन तो अपूर्व आनन्दमय है। फिर शत्रुध्न से मिलकर उनका विरह -दुःख नष्ट किया। राजतिलक की तैयारी हुई। स्नान-मार्जन होने लगा। श्रीराम भी भाइयों की वात्साल्य-भाव से सेवा करने लगे। भरत जी बुलाये गये, श्रीराम ने अपने हाथों से उनकी जटा सुलझायी। तदनन्तर तीनों प्राण-प्रिय भाइयों को श्रीराम ने स्वंय अपने हाथ से मल-मलकर नहलाया। भरत, लक्ष्मण, शत्रुध्न, पितृतुल्य श्रीराम के इस वात्सल्य भाव से मुग्ध हो गये। शिवजी कहते है कि भरतजी (आदि भाइयों) के भाग्य और प्रभु की कोमलता का बखान सौ करोड़ शेष भी नहीं कर सकते। धन्य भ्रातृ-प्रेम!! समय-समय पर भाइयों को साथ लेकर श्रीराम वन-उपवनों में जाते है, भाँति-भाँति के शिक्षा प्रद उपदेश करते है। श्रीहनुमानूजी के द्वारा भरतजी के प्रश्न करने पर श्रीराम ने संत-असंत के लक्षण बतलाते हुए अन्त में बड़ा ही सुन्दर उपदेश दिया–

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।
निर्नय सकल पुरान बेद कर।
कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर।।
नर सरीर धरि जे परपीरा।
करहिं ते सहहिं महा भव भीरा।।
करहिं मोह बस नर अघ नाना।
स्वारथ रत परलोक नसाना।।
कालरुप तिन्ह कहँ मैं भ्राता।
सुभ अरु असुभ कर्म फल दाता।।
अस बिचारि जे परम सयाने।
भजहिं मोहि संसृत दुख जाने।।
त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक।
भजहिं मोहि सुर नर मुनिनायक।।

कैसा सुन्दर सब के ग्रहण करने योग्य उपदेश है! ऐसे बड़े भाई अनन्त पुण्य-बल स प्राप्त होते है!!

श्रीराम के भातृ-प्रेम का यह अति संक्षिप्त वर्णन है। श्रीराम की भ्रातृवत्सलता का इससे कुछ अनुमान हो सकता है। भाईयों के लिये ही राज्य ग्रहण करना, भाई को राज्य मिलने के प्रस्ताव से अपना हक छोड़कर परम आनन्दित होना, जिसके कारण राज्याभिषेक रूका। उस भाई भरत की माता कैकैयी पर भक्ति करना, भरत का गुण-गान करना, धरना देने के समय भरत को और भरत पर क्रोध करने के समय लक्ष्मण को फटकार बताकर अन्याय मार्ग से बचाना, भरत की इच्छा पर अपने सत्यव्रत को भी छोड़ने को तेयार होना, लक्ष्मण जी के शक्ति लगने पर उनके साथ प्राणत्याग करने को तैयार होना, समय-समय पर सदुपदेश देना, स्वार्थ छोड़कर सब पर समभाव से पूर्ण प्रेम करना और लवणासुर पर आक्रमण के समय जबरदस्ती राज्याभिषेक के लिये शत्रुघ्न से स्वीकार कराना आदि श्रीराम के आदर्श भ्रातृ-प्रेमपूर्ण कार्यों से हम सबको यथायोग्य शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

संदर्भ

तत्व चिन्तामणि, जयदयाल गोयन्दका, प्रकाशक-मोतीलाल जालान, गीता प्रेस, गोरखपुर। (पेज 278-280)

(वा0 रा0 2/22/6-8)
(वा0 रा0 2। 112। 19)
(वा0 रा0 3। 16। 37)
(वा0 रा0 2। 18। 28-29)
(वा0 रा0 2। 21। 30)
(वा0 रा0 2। 4। 44)
(वा0 रा0 2। 19। 10-11)
(वा0 रा0 2। 17। 5-6 एवं 8 से 12)
(वा0 रा0 2। 112 । 18)
(वा0 रा0 6। 101। 11-12)

शिवरंग मय रामरंग

डॉ रामशंकर

सहायक आचार्य गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय
कशी हिन्दू विश्व विद्यालय वाराणसी

भगवान शंभू का नाम और स्वरूप जीव मात्र का सर्व विधि कल्याण करने वाला है। शास्त्रों ने इनके सहस्रों नाम गिनाए हैं। जैसे दुखों का द्रावण करने से रूद्र, कल्याण करने के कारण शंकर, तथा कल्याण स्वरूप होने से शिव। जब भगवान श्री राम रावण पर विजय के लिए समुद्र के किनारे बैठकर रास्ते के लिए समुद्र से प्रार्थना करते हैं, उसके पूर्व ही भगवान शंभू के लिंग का स्थापन कर उस का विधिवत पूजन करते हैं तथा भगवान शम्भू से सर्वविध मंगल की कामना करते है। रामचरितमानस में तुलसीदासजी लिखते हैं कि-

लिंग थाप विधिवत करि पूजा।
शिव समान प्रिय मोहि न दूजा।।
जो गंगा जल आन चढाही।
सो सायुज्य मुक्ति नर पाही।।

भगवान शम्भू का वर्णन सर्वप्रथम वेदों में प्राप्त होता है। यजुर्वेद का कोई भी ऐसा अध्याय नहीं है जिसमे भगवान शंकर की चर्चा न हो। वेद शिवनाम का गुणगान करते - करते नेति नेति कहने लगते हैं। पुष्पदन्त स्तुति करते हुए लिखते हैं कि-

अतीतः पंथानं तव च महिमा वांमनसयोः।
अतद्व्यावश्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि।।
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः।
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः।।

अर्थात आपकी व्याख्या न तो मन, न ही वचन द्वारा संभव है। आपके सन्दर्भ में वेद भी अचंभित हैं तथा 'नेति नेति' का प्रयोग करते हैं अर्थात ये भी नहीं और वो भी नहीं। आपकी महिमा और आपके स्वरूप को पूर्णतया जान पाना असंभव है, लेकिन जब आप साकार रूप में प्रकट होते हो तो आपके भक्त आपके स्वरूप का वर्णन करते नहीं थकते। ये आपके प्रति उनके प्यार और पूज्यभाव का परिणाम है। परन्तु एक जिज्ञासा हमेसा होती है कि इतने दयालू को मनाये कैसे-

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति।
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।।
रुचीनां वैचित्र्या जुकुटिल नानापथजुषां।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इवं।।

अर्थात हे परमपिता!!! आपको पाने के लिए अनगिनत मार्ग है - सांख्य मार्ग, वैष्णव मार्ग, शैव मार्ग, वेद मार्ग आदि। लोग अपनी रुचि के अनुसार कोई एक मार्ग को पसंद करते है। मगर आखिरकार ये सभी मार्ग, जैसे अलग अलग नदियों का पानी बहकर समुद्र में जाकर मिलता है, वैसे ही, आप तक पहुंचते है। सचमुच, किसी भी मार्ग का अनुसरण करने से आपकी प्राप्ति हो सकती है। अतः मैं आपसे ही उद्भूत संगीत मार्ग का समाराधन कर आपके गुणगान से स्वयं को धन्य मानता हूँ।

राग हंसध्वनि

स्थाई

हर हर करत जितने के सकल बाधा तिनके सकल बढ़ टारे

अंतरा

मन काम पावत शिव पद जे नमत रामरंग दुख द्वंद्व क्षण में कटे री

राग शंकरा

बना ऐसो आयो री द्वारे जके सिर चंद्व भाल

अंतरा

दीनन दाता नाथ त्रिभुवन के राम रंग मेरी लाडली के भाग

राग शकरा

स्थाई

विराजे सिर गंग जटा जूट सोहे अंग छार व्याल

अंतरा

डमरु बाजे डिमिक रूप किये अर्घनग विद्यालय

राग सावनी विहाग

स्थाई - देव महादेव अखिल भुवन पति गौरी पति त्रिनेत्र त्रिपुरारी

अन्तरा - दानी महादानी महादेश सब सुख संपति राम रंग के प्रभु दीन दुख हारी राग

सावनी विहाग

स्थाई

डमरू धरे कर त्रिशूल अर्धांग रूप बैल विराजे।

अशुभ धरे रूप त्रिभुवन के राम रंग भालचंद्व विराजे

राग भूपाली

स्थाई - हर हर महादेव ईशान अखिलेश्वर पंचानन त्रिपुरारी।

आन्तरा - वाहन बैल बसन बाघम्बर व्याल मॉल गले धारी "राम रंग" शिर गंग भाल चन्द्व धारी।।

राग-भूपाली-त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई : हर हर महादेवा ईष ईशान अखिलेश्वर अघहर पंचानन त्रिपुरारी।

अन्तरा : वाहन बैल बसन बाघाम्बर व्याल माल गले धारी, ''रामरंग'' सिर गंग भाल चन्द्र, धारी।।

पार्वती-तपस्या प्रसंग

भगवान् शंकर को पति के रूप में पाने के लिए जब पार्वती जी घोर तपस्या करती हैं तो पार्वती जी परीक्षा लेने के लिए शंकर जी सप्त ऋशि को भेजते हैं। सप्त ऋशि कहते हैं :

राग-शुक्ल बिलावल-धीमा त्रिताल

स्थाइ : मरम किन बोलो हम सन, ऐसो कठिन जप-तप करिवे को हठ ठानी माँ।

अन्तरा : मरम सुनायो, सुनि बोले मुनि, ''रामरंग'', बौरे वर लगि काहे ऐसो तप ठानी माँ।

राग-शुक्ल बिलावल-त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई : हमरी कही मान लेतू माई, तज दे सिख गुरु घर घाली को।

अन्तरा : नारद सिख सुनि सुखी भये को, बौरी तू चाहे पति भिखारी को।।

स्थाई

राग-कौशिकी-त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई : बसायो कौन मन, जाके दाया न माया।

अन्तरा : बास मसान बसन, बाघाम्बर तन, ''रामरंग'' भभूत काया।।

स्थाई

-, नि सा ग

ऽ ब सा -

ऽ

रे सा - सा - सा - सा - (सा) ध नि ध सा - नि

योऽ ऽ ऽ ऽ	कौ ऽ न ऽ म	न ऽ ऽ	जा ऽ के		
×	2	0	3		
साग म ग मध	निसां - ध -	प ग - रे	सा, नि सा ग		
दाऽ ऽ ऽ याऽ ऽऽ	ऽ नाऽ ऽ	माऽ याऽ	ब साऽ		
×	2	0	3		

अन्तरा

			ग
			बा
		0	
म ध - निसां	- - नि^ध -	- निगं सां -	- सां
ऽ स ऽ म सा ऽ	ऽ न ऽ ऽ	ब स न ऽ	ऽ बा
3	×	2	0
- ध - म म -	- - ग^म रे	म ग रे सा	ऽ ध
ऽ ध ऽ म्बर ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	त ऽ न ऽ	ऽ रा
3	×	2	0
निसा म ग मध	निसां - ध -	प - ग -	रे - सा
म रं ग भ	भूऽ ऽऽ ऽ त	ऽ काऽ याऽ	ऽ ऽ ऽ
3	×	2	0
- नि साग			
ऽ, ब साऽ			
3			

पार्वती जी का उत्तर

राग-कौशिकी-त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई : मुनि महादेव अवगुनी, हरि सकल गुण धाम।

अन्तरा : जाको मन जा संग रमे, "रामरंग" वाहि-वाहि सों काम।।

स्थाई

				ध	
				मु	
				3	
ध	(सा)	म^ग	ग	मध	
निसां	-	ध	-	-म	
पम	ग	प	म	-म	
नि	ऽ	म	हा	देऽ	
ऽऽ	ऽ	व	ऽ	ऽऽ	
अऽ	व	गु	नी	ऽ	ह
3	×	2	0		
ग	रे	सा	सा	म	
म	-	पम	गम	धनि	
सारें	सांनि	धप	मग	रेसा,	ध
रि	स	क	ल	गु	
न	ऽ	धाऽ	ऽऽ	ऽऽ	
ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	मऽ,	मु
3	×	2	0		

अन्तरा

				ग	
				जा	
म	ध	-	नि	सां	
-	धनि	गं	रें	सां	
नि	(सां)	ध	-	-	ग^म
ऽ	को	ऽ	म	न	
ऽ	ऽ	जा	ऽ	सं	
ग	रं	मे	ऽ	ऽ	रा
3	×	2	0		
म	ग	रे	सा	म	
-	म	पम	गम	धनि	
सारें	सांनि	धप	मग	रेसा,	ध
ऽ	म	रं	ग	वा	
ऽ	हि	वाऽ	ऽऽ	हिऽ	
सोंऽ	ऽऽ	काऽ	ऽऽ	मऽ	मु
3	×	2	0		

राग-खमाज-त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई : अवगुन, गुन मैं न निहारी मुनि त्रिपुरारी, जनम-जनम शिव शरण चहूँ।

अन्तरा : शिव मेरो तन-मन-धन सरबस यह हठा सुनो हमारी, शिव को वरूँ "रामरंग" या बिन ब्याही रहूँ कुंवारी।।

स्थाई

प	सां
अ	व

नि ध प म ग
म गरे ग म -
प ध मग म प
सां
गु न गु न मैं
ऽ नऽ नि हा ऽ
री मु निऽ ऽ अ
व
0 ३ × २

नि ध प म ग
म गरे ग म -
प प म ग रे
सा
गु न गु न मैं
ऽ नऽ नि हा ऽ
री त्रि पु रा ऽ
री
0 ३ × २

नि़ सा ग म प
ध नि सां गं रें
सांनि (सां) धनि पध, ध
सां
ज न म ज न
म शि व श र
नऽ च हूँऽ ऽऽ, अ
व
0 **३** × **२**

अन्तरा

ग म नि ध नि
- सां सां नि नि
सां रें सां (सां) नि
ध
शि व मे ऽ रो
ऽ त न म न
ध न स र ब

स
0 ३ × २
नि सां नि धप ग
म प ध नि -
सां - - - - -
य ह ह ठऽ सु
नो ऽ ह मा ऽ
री ऽ ऽ ऽ ऽ
ऽ
0 ३ × २

ग म नि धप म
ग - म ग गरे
म प प ध मग
म
शि व को ऽऽ व
रूँ ऽ रा ऽ म
रं ग या ऽ बिऽ
न
0 ३ × २

प ध नि सां गं
रें सांनि (सां) नि ध
- नि धप ध, निध
(सां)
ब्या ऽ ही ऽ र
हूँ ऽऽ कुं वा ऽ
ऽ ऽ ऽऽ री, अऽ
व
0 **३** × **२**

सप्त ऋशि द्वारा पार्वती जी की स्तुति

राग-गोपिका बसन्त-एकताल

स्थाई : जय-जय जग जननि माँतु, सेवत सुखकारी।

अन्तरा : निस दिन तेरो नाम रटे, सकल पाप-ताप कटे, "रामरंग" बिघन हरो, भक्तन भय हारी।।

स्थाई

सां	-	ध़	नि़	ध
म	प	प	ध़	म
-	म			
जै	ऽ	जै	ऽ	ज
ग	ज	न	नि	माँ
ऽ	तु			
३	0	2	0	3
	4			
प	प	ग़	म	ग़
सा	नि़सा	ग़म	पम	गम
पध़	नि़सां			
से	ऽ	व	त	सु
ख	काऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
ऽऽ	रीऽ			
३	**0**	**2**	**0**	**3**
4				

अन्तरा

ग़	म	पध़	नि़सां	सां
सां	सां	-	नि़	ग़ं
सां	-			
नि	स	दिऽ	नऽ	ते
रो	ना	ऽ	म	र
टे	ऽ			
३		0		2
	0		3	
4				
ध़	नि़	सां	ग़ं	मं
ग़ंसां	ग़ं	मं	ग़ं	सां
सां	-			
स	क	ल	पा	ऽ
पऽ	ता	ऽ	प	क
टे	ऽ			
३	0	2	0	3
	4			
सां	ध़	नि़	ग़ं	सां

सां	ध़	नि़	ध़	प
म	-			
रा	ऽ	म	रं	ऽ
ग	वि	घ	न	ह
रो	ऽ			
३		0		2
	0		3	
4				
प	-	ग़	म	ग़
सा	नि़सा	ग़म	पम	ग़म
पध़	नि़सां			
भ	ऽ	क्त	न	भ
य	हाऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
ऽऽ	रीऽ			
३	**0**	**2**	**0**	**3 4**

शिव-विवाह प्रसंग

राग-शंकरा-झपताल

स्थाई : साज साजे शिव ब्याह रचावन को, शुभ अशुभ लिए संग बैल असवारी।

अन्तरा : सिर मुकुट कान कुण्डल ब्याल, "रामरंग" डमरू कर त्रिशूल धारी।।

राग-हमीर-एकताल

स्थाई : देखि दुलह हर को भागि चले बाल घर को, भय कम्पित गात भुख बात न आवे।

अन्तरा : जोगिनी जमात भूत पिशाच ऐसो बरात "रामरंग" बरनि न आवे।।

स्थाई

-	प	म	प	ग
म	ध	-	-	नि
नि	सां			
ऽ	दे	ऽ	खि	दु
ल	ह	ऽ	ऽ	ह
र	को			
३		0		2
	0		3	

4				
-नि	प	ग	म	ध
प	प	-	ग	मप
गम	रे			
ऽऽ	भा	ऽ	गि	च
ले	बा	ऽ	ल	घऽ
रऽ	को			
×	0	2	0	3
	4			
सा	सा	सा	-	म
ग	प	प	-	नि
ध	नि			
ऽ	भ	य	ऽ	कं
ऽ	पि	त	ऽ	गा
ऽ	त			
ऊ	0	2	3	4
सां	रें	सां	नि	ध
प	मप	धनि	सांनि	धप
मप	गम			
मु	ख	बा	ऽ	त
न	आऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
ऽऽ	ऽऽ			
×	0	2	3	4
रे,	**प**			
वे,	**दे**			
×				

अन्तरा

-	प	-	सां	सां
सां	सां	-	-	-
रें	सां			
ऽ	जो	ऽ	गि	नी
ज	मा	ऽ	ऽ	ऽ
ऽ	त			
×		0		2

0		3		4
सां	ध	नि	सां	-
रें	सां	-	-	ध
-	ध			
ऽ	भू	ऽ	त	ऽ
पि	सा	ऽ	ऽ	ऽ
ऽ	च			
ऊ	0	2	0	3
	4			
-	ग	-	म	ध
प	प	-	-	ग
म	रे			
ऽ	ऐ	ऽ	सो	ऽ
ब	रा	ऽ	ऽ	ऽ
ऽ	ऽ			
×		0		2
0		3		4
सा	सा	मग	प	-
प	मप	धनि	सानि	धप
मप	गम			
त	रा	मऽ	रं	ऽ
ग	वऽ	रऽ	निऽ	नऽ
आऽ	ऽऽ			
×	0	2	0	3
	4			
रे,	**प**			
वे,	**दे**			
×				

राग-बहादुरी तोड़ी-त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई : अजब निहारी माँ अरधंग रूप बैल बिराजे।

अन्तरा : डमरू पिनाक त्रिशूल कर धरे, तन छार-छाल बसन कटि सोहे, ''रामरंग'' साज अमंगल साजे।

स्थाई

रे
अ
0
नि सा - रे ग
- - रे - -
(ग) - रे सा -
ध
ज ब ऽ नि हा
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
ऽ ऽ री माँ ऽ
अ
3 ऽ
2
0
ध सा - रे ग
रे^सा ग गप ध नि
ध म ग रे सा,
रे
र धं ऽ ग रू
ऽ प वैऽ ऽ ऽ
ल बि रा ऽ जे,
अ
3 × 2 0

अन्तरा

रे
ड
नि ध प ध सां
- सां रें गं^सा रें
गं मं गं रें सां
ध
म रू ऽ पि ना
ऽ क त्रि शू ऽ
ल क र ध रे, त
3 × 2 0

ध सां - सां पध
नि म प रे ग
सा रे नि सा सा
ध
न छा ऽ र छाऽ
ऽ ल ब स न
क टि सो ऽ हे
रा
3 × 2 0

सा सारे ग रे^सा ग
- ग ग गप धनि
ध म ग रे सा,
रे
म रंऽ ऽ ग सा
ऽ ज अ मंऽ ऽऽ
ग ल सा ऽ जे,
अ
3 ऽ 2 0

-प गम -प प- ध
- प - ग म
गम पम रे ग रे
सा
ऽअ जब ऽदु लऽ हा
ऽ ऽ ऽ आ ऽ
ऽऽ ऽऽ यो ऽ री
ऽ
3 ऽ 2 0

- ध- धसा सा रे
- सा - ग मग
म प पमगम पधनिसा ध नि
ऽ जाऽ केसि र गं
ऽ ग ऽ च ऽऽ
न्द्र ऽ भाऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽ
ऽ
3 ऽ 2 0

प,प	गम	-प	प-	
ल,अ	जब	ऽदु	लऽ	
				3

राग-बहादुरी तोड़ी-त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई : अजब दुलहा आयो री, जाके सिर गंग चन्द्र भाल।

अन्तरा : वाहन बैल भभूत रमाये, "रामरंग" अंग लपेटे ब्याल।।

स्थाई

				रे
				अ
				0
नि	सा	-	रे	ग
-	-	रे	-	-
(ग)	-	रे	सा	- ध
ज	ब	ऽ	नि	हा
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
ऽ	ऽ	री	माँ	ऽ ट
3		ऊ	2	0
ध	सा	-	रे	ग
रेसा	ग	गप	ध	नि
ध	म	ग	रे	सा, श्रे
र	धं	ऽ	ग	रू
ऽ	प	बैऽ	ऽ	ऽ
ल	बि	रा	ऽ	जे, ट
3	ऊ	2	0	

अन्तरा

म	-	प	ध	सां
-	सां	सां	रें	-
सां	सां	नि	सां	ध प
वा	ऽ	ह	न	बै
ऽ	ल	भ	भू	ऽ
त	र	मा	ऽ	ये ऽ
3	ऊ	2	0	
प	ग	म	(म)	रे
-	सा	सा	म	ग
म	प	पमगम	पधनिसां	ध नि
रा	म	ऽ	रं	ग
ऽ	अं	ग	ल	पे
टे	ऽ	ब्याऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ल ऽ
3		×	2	0
प,प	गम	-प	प-	
ऽ,अ	जब	ऽदु	लऽ	
3				

पार्वती की माँ मैना का विशाद

राग-शिवमत भैरव-त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई : बौराहे को न दूँगी अपनी दुलारी गिरजा कुमारी राखूँगी घर अपनो।

अन्तरा : एक न मानूंगी सिख काहू की, "रामरंग" ब्याहूँ न गिरजा कुमारी राखूंगी घर अपनो।।

स्थाई

-	प	-	म	म
-	-	प	-	-
ग	-	म	प	- प
ऽ	बौ	ऽ	रा	हे
ऽ	ऽ	को	ऽ	ऽ
ना	ऽ	दूं	गी	ऽ अ
3		ऊ	2	0
म	ग	रे	सा	रे
-	-	-	सा	-
रे	ग	रे	सा	-
सा				
प	नी	ऽ	दु	ला
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
ऽ	ऽ	री	ऽ	ऽ

गि
3 ऊ 2 0

सा म - म प
- प प ध सां
नि सां ध नि प
ध
रि जा ऽ कु मा
ऽ री रा ऽ खूँ
ऽ गी घ र अ
प
3 ऊ 2 0

म, प - म

नो, बौ ऽ रा

3

अन्तरा

म

ए
0
- प - ध सां
- - - नि सां
ध - नि सां -
सां
ऽ क ऽ न मा
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
ऽ ऽ नूँ गी ऽ
सि
3 × 2 0

सां रें - सां सां
- - - नि सां
निसां रें (सां) ध -
प

ख का ऽ ऽ हूँ
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
ऽऽ ऽ की ऽ ऽ
रा
3 × 2 0

- म ग (म) रे
- - - सा रे
सारे ग रे सा -
सा
ऽ म ऽ रं ग
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
ब्याऽ ऽ हूँ न ऽ
गि
3 × 2 0

सा म ऽ म प
- प प ध सां
नि सां ध नि प
ध
रि जा ऽ कु मा
ऽ री रा ऽ खूं
ऽ गी घ र अ
प
3 × 2 0

म, प - म
नो, बौ ऽ रा
3

राग-सरस्वती सारंग-रूपक (विलम्बित)

स्थाई : कैसे तोहे ब्याहूँ या दुलहा संग।
अन्तरा : भषम रमाये बाघाम्बर, "रामरंग" बिराजे सिर मौर भुजंग।।

पावती जी द्वारा माँ को प्रबोधना
राग-सरस्वती सारंग-त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई : मिटे न मिटाये ए री माँ, विधना लिखे जो भाल अंक।

अन्तरा : या बौराहे को सुर मुनि सेवत, जनम-जनम याको मेरो संग।।

पार्वती की माँ को नारद जी के द्वारा शंकर पार्वती की महिमा को समझाना तथा शंकर-पार्वती ब्याह होना

राग-कामोद-एकताल (मध्यलय)

स्थाई : जगदम्बिका तव सुता, सदा सिव संग, बिराजित राजित आधे अंग।

अन्तरा : सुनि नारद बचन पुलके तन, "रामरंग" बन्दि चरण, शिव गौरी ब्याहे उमंग।।

स्थाई

-	ग	म	रे	-	सा	रे	-	प	प	ध	प
ऽ	ज	ग	द	ऽ	म्बि	का	ऽ	त	व	सु	ता
0		3		4		×		2		0	

-	प	सां	रें	सां	सां	ध	-	प	प	ग	म
ऽ	स	दा	ऽ	शि	व	सं	ऽ	ग	वि	रा	ऽ
0		3		4		×		2		0	

रे	सा	ध़	-	ध़	प़	रे	-	प	-	मप	ध
ज	ति	रा	ऽ	ज	ति	आ	ऽ	धे	ऽ	अंऽऽ	
0		3		4		×		2		0	

प, ग
ग, ज
0

अन्तरा

-	प	प	सां	-	सां	सां	-	-	सां	रें	सां
ऽ	सु	नि	ना	ऽ	र	द	ऽ	ऽ	व	च	न
0		3		4		×		2		0	

-	सां	ध	सां	-	रें	सां	(-)	-	ध	-	ध
ऽ	मैं	ऽ	ना	ऽ	पु	ल	ऽ	ऽ	के	ऽ	त
0		3		4		ऊ		2		0	

प	ग	-	म	ध	प	ग	म	रे	सा	ध़	-
न	रा	ऽ	म	रं	ग	ब	ऽ	न्दिच	र	ऽ	
0		3		4		ऊ		2		0	

प़	रे	रे	प	-	प	सां	रें	सां	प	(प)ग	
न	शि	व	गौ	ऽ	री	ब्या	ऽ	हे	उ	मं	ऽ
0		3		4		ऊ		2		0	

प, ग-
ग जऽ
0

भारतीय साहित्य के इतिहास का महाकाव्य 'रामायण' में भारतीय संगीतशास्त्र की महत्ता : गायन के विशेष सन्दर्भ में

शुचि उपाध्याय

शोध छात्रा (यू. जी. सी./जे.आर.एफ.)
संगीत एवं मंच कला संकाय, का. हि. वि. वि. वाराणसी।

रामायण भारत का प्राचीन सांस्कृतिक महाकाव्य है। यह हिन्दू स्मृति का वह अंग है जिसके माध्यम से रघुवंश के राजा मर्यादा पुरूषोत्तम प्रभु श्री राम की गाथा कही गयी है। इसे आदिकाव्य भी कहते हैं। भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा के परिज्ञान का **'रामायण'** एक महत्वपूर्ण स्रोत है। रामायण की रचना आदिकवि महर्षि वाल्मीकि के द्वारा हुई जो कि संस्कृत में लिखी गयी है और वही पावन सरित् परम्परागत रूप से अधुना तक जनमानस को परिप्लावित करती आई है। रामायण के सात सर्ग हैं, जिनके रचयिता एवं रचनाकाल के सम्बन्ध में मनीषियों में बहुल चर्चा पाई जाती है। बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड को छोड़कर अन्य सभी सर्गों की रचना महर्षि वाल्मीकि द्वारा एक ही कालखण्ड में हुई तथा शेष दो की रचना आदिकवि वाल्मीकि के किसी परम्परानुयायी द्वारा हुई हो, यह तथ्य विद्वज्जन मान्य है कि रामायण के बृहद अंश की रचना महाभारत तथा बौद्धकाल के पूर्व 500 ई. पू. में हुई है तथा शेष अंश की रचना ई. 5 तक सम्पन्न हुई है। रामायण के रचना कालखण्ड के सम्बन्ध में विद्वज्जनों में चाहे मतभेद क्यों न हो परन्तु यह निश्चित है कि परम्पराप्रिय भारत में पुरातन सांस्कृतिक परम्परा को अन्तर्निहित करने का श्रेय महाभारत के अतिरिक्त इसी ग्रन्थ को है। विद्वानों के अनुसार मानव-जीवन का ऐसा कोई पक्ष नहीं, जिसकी झांकी रामायण में न मिलती हो अथवा ऐसा कोई सिद्धान्त नहीं जिसका आभास उसमें प्राप्त न होता हो। ईसवी सन् के प्रारम्भ से ही रामायण का प्रचलन भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में श्याम, जावा, सुमात्रा, बाली आदि दूरपूर्व देशों में होता रहा है। इन देशों में प्राप्त शिलालेखों से तथा सांस्कृतिक कार्य-कलापों से स्पष्ट है कि रामायण का प्रभाव क्षेत्र ईसवीं के आरम्भ में ही सुदूर पूर्व देशों तक विस्तृत हो चुका था।

वाल्मीकि रामायण से प्रेरित होकर **गोस्वामी तुलसीदास जी** ने **श्रीरामचरितमानस** जैसे महाकाव्य की रचना की जो कि वाल्मीकि के द्वारा संस्कृत में लिखे गये रामायण का हिन्दी संस्करण है। गोस्वामी तुलसीदास जी का प्रभु श्रीराम जी के प्रति जो अनन्य भक्तिभाव है वह अकथनीय है। तुलसीदास जी कहते हैं कि -

राम-भरोसो, राम-बल, राम-नाम-बिस्वास।[1]
सुमिरत सुभ मंगल कुसल, माँगत 'तुलसीदास'।।

वैसे तो **राम** नाम में सभी धर्म समाविष्ट है। तुलसीदास जी ने कहा भी है-

जथा भूमि सब बीजमय, नखत निवास आकास।[2]
राम-नाम सब धरममय, जानत 'तुलसीदास'।।

परन्तु इस ग्रन्थ में हिन्दू आदर्शों का उत्कृष्ट वर्णन है इसलिये इसे हिन्दू धर्म के प्रमुख ग्रन्थ होने का श्रेय मिला हुआ है और प्रत्येक हिन्दू परिवार में भक्ति भाव के साथ इसका पठन-पाठन एवं गायन

किया जाता है। रामायण से ही प्रेरित होकर **मैथिलीशरण गुप्त** ने **पंचवटी** तथा **साकेत** जैसे खण्डकाव्यों की रचना की।

रामायण में सांगीतिक तत्व :-

सम्पूर्ण रामायण संगीतमय है। इसके सम्पूर्ण दोहे, चौपाईयां, सोरठा और छंद स्वरबद्ध तथा लयबद्ध हैं। रामायण में **24,000 श्लोक** हैं। रामायण काल में संगीत विषयक समुन्नति तथा प्रसार के सर्वत्र दर्शन होते है। आदिकवि वाल्मीकि के अनुसार रामायण का निर्माण गेयकाव्य के रूप में हुआ है। रामायण के अनुष्टुप् छन्द की रचना ही संगीत-मूलक होने के सम्बन्ध में उल्लेख प्रस्तुत महाकाव्य में पाये जाते है। मूलतः लव-कुश जैसे कुशल गायकों के द्वारा गाये गये इस गेय काव्य में साहित्य तथा संगीत दोनों का समन्वय हुआ।

रामायण में संगीत शब्द का वर्णन **किष्किन्धा काण्ड** के **28वें सर्ग** के **36वें** और **39वें** श्लोक में आया है। श्रीरामचन्द्र किष्किन्धावन का वर्णन करते हुए लक्ष्मण से कहते हैं :-

शट्पादतन्त्रीमधुराभिधारं प्लवंगमोदीरितकण्टतालम्।
आविष्कृतं मेघमृदंगनादैर्वनेषु संगीतमिव प्रवृत्तम्।।
क्वचित्प्रनृ प्रनृत्तैः क्वचिदुन्नदद्भिः क्वचिच्च वृक्षाग्रनिषण्णकाग्रैः।
व्यालम्बबर्हाभरणैर्मयूरैर्वनेषु संगीतमिव प्रवृत्तम्।।

अर्थात् भ्रमरों का गुंजन तन्त्री की ध्वनि-धारा को प्रवाहित कर रहा है, वानर-गण अपने कण्ठ से ताल-मात्राओं का उच्चारण कर रहें हैं, मेघ मृदंग नाद कर रहे हैं तथा गायन का कार्य वृक्षाग्र पर आसीन मयूरों के द्वारा किया जा रहा है, जो गायन तथा नृत्य दोनों में तत्पर हैं।

रामायण में **'अभिजात-संगीत'** और **'संगीतशास्त्र'** के लिए **'गांधर्व'** संज्ञा तथा युद्ध के लिए कहीं-कहीं **'युद्ध-गांधर्व'** संज्ञा उपलब्ध है। संगीतबोधक गांधर्व संज्ञा के साथ-साथ संगीतज्ञ के लिए **'गांधर्व तत्वज्ञ'** शब्द भी प्रयुक्त है। रामायण में गान्धर्व के साथ ही गन्धर्व तथा अप्सराओं का अनेकों बार उल्लेख हुआ है। गन्धर्व तथा अप्सरा दोनों संगीत कला तथा रूप सौन्दर्य के लिए प्रतिमान रहे हैं। गन्धर्व जन विशेषतः गान तथा वीणा-वादन किया करते थे और अप्सराओं का कार्य इनके साथ नृत्य प्रदर्शन करना था। देवगन्धर्वों में विश्वावसु, हा हा, हू हू, नारद, पर्वत तथा तुम्बरू का भूरिशः उल्लेख प्राप्त होता है तथा अप्सराओं के अन्तर्गत घृताची, मेनका, रम्भा, मिश्रकेशी, अलम्बुसा, इत्यादि दिव्य वारंगनाओं का उल्लेख रामायण में है। गन्धर्व तथा अप्सरागण का उल्लेख रामायण में दिव्य तथा अपौरूषेय कलाकार के रूप में हुआ है। अलौकिक पुरूष के जन्म, विवाह आदि के अवसर पर इनके संगीत का आयोजन किया जाता था। रामचन्द्र के जन्म तथा विवाह पर देवदुन्दुभियां बजने लगी तथा गन्धर्व तथा अप्सराओं का क्रमशः गान तथा नृत्य होने लगाए ऐसा उल्लेख रामायण में प्राप्त है। तुम्बरू का उल्लेख अप्सराओं के गान-शिक्षक के रूप में हुआ है। रामायण में **'गीत'** शब्द का प्रयोग अनेकों बार प्रयोग किया गया है। उदाहरणार्थ, बालकाण्ड के चौथे सर्ग का 27वाँ श्लोक निम्न है। यथा :-

परं कवीनामाधारं समाप्तं च यथाक्रमम्।
अभिगीतमिदं गीतं सर्वगीतिषु कोविदैः।।

अर्थात् वाल्मीकि द्वारा रचा हुआ यह काव्य सब कवियों का आश्रय है। यथाक्रम इसकी समाप्ति हुई। सर्व प्रकार के गान में निपुण कुश और लव से तुम लोगों ने इस गीत को अच्छी तरह सुना।

इस काल में तत्, सुषिर, अवनद्ध तथा घन इन चारों वाद्यों का प्रचलन था। इन चतुर्वाद्यों की सामान्य संज्ञा **'आतोद्य'** थी। तत् वाद्य के अन्तर्गत वैदिक काल की भाँति वीणा का प्रचुर प्रचार था। वीणा का रामायण में अयोध्याकाण्ड के 39वें सर्ग के 39वें श्लोक में तथा सुन्दरकाण्ड के 10वें सर्ग के 37वें और 4 वें श्लोक में हुआ। केवल वीणा का ही नहीं, वीणा के एक विशेष प्रकार विपंची वीणा का उल्लेख भी सुन्दरकाण्ड के 1 वें सर्ग के 41वें श्लोक में पाया जाता है। यथा :-

विपंची परिगृहयान्या नृत्यशालिनी।
निद्रावशमनुप्राप्ता सहकान्तेव भामिनी।।

प्रभु श्रीराम के अयोध्या वापस लौटने का समाचार प्राप्त होते ही भरत ने आदेश दिया था कि शुचिव्रत पुरूष संगीत के साथ-साथ देवताओं का यथाविधि अर्चन करें। श्रीराम के वनवास से वापस आते ही कुशल व्यक्तियों द्वारा शंख तथा दुन्दुभियाँ बजाकर उनका स्वागत किया गया। इसके अतिरिक्त रावण की अन्त्येष्टि के समय विविध तूर्यों के निर्घोष के साथ स्तुतिगान किया गया था। **'दुन्दुभि वाद्य'** रामायण काल का मुख्य वाद्य था।

वैदिक काल के सदृश्य रामायण काल में साम संगीत उस समय अपने पूर्ण उत्कर्ष पर था। उस काल में सामवेद का गान भी विधिवत् गान होता था। किष्किन्धाकाण्ड के २८वें सर्ग के ५४वें श्लोक इस प्रकार है :-

मासि प्रौष्ठपदे ब्रह्म ब्राह्मणानां विवक्षताम्।
अयमध्यायसमयः सामगानामुपस्थितः।।

अर्थात् भाद्रमास में वेद पढ़ने वाले सामग (सामगान करने वाले) ब्राह्मणों का यह अध्याय समय आ गया है। सामवेद का गान भाद्रमास से प्रारम्भ होता था। राजा दशरथ की अन्त्येष्टि के समय सामवेदियों ने शास्त्रीय पद्धति के अनुसार साम-गायन किया था। रावण सामस्तोत्रों के माध्यम से भगवान शिव की आराधना करता था। 'संगीत' का एक प्रकार 'वर्ण संगीत' भी प्रचार में था जो वर्णमाला के दीर्घ और लघु अक्षरों में विद्यमान मात्रा, ध्वनि और उच्चारण काल के भेद-त्रय पर आधारित था।

अयोध्या इत्यादि नगरों में गीत, वाद्य तथा नृत्य का प्रचार तो था ही परन्तु गीत, वाद्य तथा नृत्य का सामुदायिक रूप से उत्सव भी होता था। ऐसे उत्सव की पारिभाषिक संज्ञा **'समाज'** थी। वैसे तो समाज शब्द का साधारण अर्थ मनुष्यों का समुदाय है। किन्तु विशिष्ट अर्थ में गीत, वाद्य तथा नृत्य के उत्सव के लिए जो समुदाय एकत्रित होता है उसे **'समाज'** कहते हैं। अयोध्याकाण्ड में 51वें सर्ग के २३वें श्लोक में **'समाज'** शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

रामायण काल में सूत, मागध तथा चारण जैसे व्यवसायी गायकों का उल्लेख भी प्राप्त है। ये लोग अधिकतर वीरगाथाएँ गाते थे। अयोध्याकाण्ड के ६५वें सर्ग के द्वितीय श्लोक में इन तीनों का एक साथ उल्लेख प्राप्त होता है।

बालकाण्ड के चौथे सर्ग के आठवें श्लोक में संगीत के बहुत से शब्द आये हैं जो यह बतलाते हैं कि उस समय हमारा संगीत कितनी उन्नत दशा में था। यथा :-

पाठ्ये गेये च मधुरं प्रमाणैस्त्रिभिरान्वितम्।
जातिभिः सप्तभिर्युक्तं तन्त्रीलयसमन्वितम्।।
रसैः श्रृंगारकरूणहास्यरौद्रभयानकैः।
वीरादिभी रसैर्युक्तं काव्यमेतदगायताम्।।
(वाल्मीकि रामायण)

अर्थात् कुश और लव ने रामायण काव्य को गाया। वह पाठ्य और गेय दोनों में मधुर था, तीनों प्रमाणों और सप्त जातियों से युक्त था, वीणा और लय के साथ उसका गान उन दोनों राजपुत्रों ने किया। वह श्रृंगार, करूण, हास्य, रौद्र, भयानक, वीर इत्यादि रसों से युक्त था। यहाँ पाठ्य का अर्थ साधारण पाठ नहीं है, अपितु यह एक पारिभाषिक शब्द है। कुछ विशिष्ट नियमों के साथ पाठ करने को ही पाठ्य कहते हैं। उदात्त, अनुदात्त, स्वरित और कम्पित ये चार वर्ण है। जोर से उच्चारण किया हुआ वर्गगत स्वर 'उदात्त' है, धीमे से उच्चारण किया हुआ 'अनुदात्त' है और न बहुत धीमे से और न बहुत जोर से उच्चारण किया हुआ 'स्वरित' है तथा किसी स्वर को लम्बा करके उसके मध्य भाग को कम्पा कर उच्चारण करना 'कम्पित' कहलाता है। भरत मुनि ने पाठ्य का प्रयोग भिन्न-भिन्न प्रकार के वर्णों का आश्रय लेकर भिन्न-भिन्न प्रकार के रसों को व्यक्त करने के लिए बतलाया है। पाठ्य में काकू का विशिष्ट स्थान है। अतः काकू आदि भेदों का व्यवहार भी उस काल में किया जाता था।

पाठ्य में छः अलंकारों का प्रयोग होता है, भरत ने निम्नलिखित छः अलंकार बतला, हैं - उच्च, दीप्त, मन्द्र, नीच, द्रुत तथा विलम्बित। 'प्रमाण' का अर्थ 'लय' है। तीन प्रमाण अर्थात् द्रुत, मध्य तथा विलम्बित लयों में उन बालकों ने रामायण काव्य को गाया। इस प्रकार के वर्णन इस बात को सिद्ध करते हैं कि प्रमाण का अर्थ लय था जो तीन प्रकार से गायी जाती थी। रामायण में सप्त जातियों का भी उल्लेख है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस काल में शुद्ध जातियों का ही उद्भव हुआ था तथा लव और कुश ने इन सप्त जातियों में रामायण को गा-कर सुनाया। **'जाति'** का उल्लेख **'उत्तरकाण्ड'** के ९४वें सर्ग के द्वितीय श्लोक में हुआ है।

लव और कुश के विषय में **'स्थानमूर्च्छनकोविदौ'** भी कहा है। वे **'स्थान'** तथा **'मूर्च्छना'** के भी जानकार थे। 'स्थान' शब्द 'सुन्दरकाण्ड' के चौथे सर्ग के 10वें श्लोक में भी आया है। **'शुश्राव रूचिरं गीतं त्रिस्थानस्वरभूषितम्'** अर्थात् तीनों 'स्थान' के स्वर से विभूषित मधुर गीत को सुनाया। 'स्थान' शब्द मन्द्र, मध्य तथा तार स्वरों के लिए प्रयुक्त हुआ है जो कि क्रमशः उर, कण्ठ और शिर से ध्वनित होते हैं। वे दोनों बालक **'मूर्च्छना'** तत्व को भी जानते थे। इस काल में वीणा को किसी मूर्च्छना में मिलाकर तब वादन या गान होता था। यह **'उत्तरकाण्ड'** के 93वें सर्ग के 13वें श्लोक से स्पष्ट है :-

इमास्तन्त्रीः सुमधुराः स्थानं वापूर्वदर्शनम्।
मूर्च्छयित्वा सुमधुरं गायतां विगतज्वरौ।।

मूर्च्छना का बीजारोपण सामवेद के गान में ही हो चुका था। ब्राह्मणकाल में मूर्च्छनाओं की संज्ञाएँ भी बनने लग गयीं। रामायण काल तक इनका प्रचुर और स्पष्ट रूप से प्रयोग होने लगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रामायण काल में संगीत के **'कला-पक्ष'** के साथ ही **'शास्त्र-पक्ष'** का प्रकर्ष भी हुआ। संगीत के स्थूल नियम वैदिक काल में ही बन चुके थे, किन्तु रामायण काल तक संगीत का एक विपुल शास्त्र बन चुका था जिसका सामान्य नाम **'गान्धर्व'** था। राजाओं के बालकों की शिक्षा का **'गान्धर्व'** एक आवश्यक अंग समझा जाता था। शास्त्र पक्ष के अन्तर्गत पाठ्य गेय, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित और कम्पित, लय, ताल, वाद्य, नृत्य, जाति, स्थान, शम्या और मूर्च्छना इत्यादि का वर्णन इस काल में मुक्त रूप से होने लगा तथा इनका गायन भी किया जाता था। संगीत का प्रचार-प्रसार उच्च वर्ग से लेकर निम्न वर्ग तक सभी में था। 'संगीत' धर्म एवं संस्कृति का ही नहीं वरन् धन धान्य एवं खुशहाली का द्योतक बन चुका था। अतः रामायण काल में संगीत को सम्माननीय एवं उच्च स्थान प्राप्त था।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची :-

- गोस्वामी तुलसीदास के सुबोध दोहे - संकलनः वियोगी हरि, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन।
- भारतीय संगीत का इतिहास - स्व. डॉ. ठाकुर जयदेव सिंह, द्वितीय संस्करण, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
- भारतीय संगीत शास्त्र - तुलसीराम देवांगन, द्वितीय (आवृत्ति) 2001, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
- भारतीय संगीत का इतिहास - डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।
- भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण - प्रो. स्वतन्त्र शर्मा, द्वितीय संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण : 2014, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
- संगीत रत्नावली - अशोक कुमार 'यमन', प्रथम संस्करण-2015, अभिषेक पब्लिकेशन्ज, चण्डीगढ़/ नई दिल्ली।

सत्यंम शिवम सुंदरम "नटराज"

डॉ. वेणु वनिता

संगीत विभागाध्यक्षा

कनोहरलाल स्नातकोत्तर महिला, महाविद्यालय मेरठ

जो सत्य है वही शिव है शिव ही सुंदर है । सत्य के कई अर्थ हैं। एक अर्थ में जो अविनाशी, चिरंतन और शाश्वत है वही सत्य है। दूसरे अर्थों में इंद्रियों द्वारा देखना, सुनना, जानना एवं अनुभव करना सत्य है। तीसरे अर्थ में इस चराचर प्राणी जगत के एक अंश के रूप में स्वयं के होने का एहसास ही सत्य है। इन तीनों अर्थों में ईश्वर सत्य है, सनातन है, अनुभव योग्य तथा कल्याणकारी है। तभी कहते हैं कि 'राम नाम सत्य है और जगत मिथ्या है।' जगत को मिथ्या इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह परिवर्तनशील, क्षणभंगुर और नाशवान है। परमात्मा की महिमा इसलिए है क्योंकि वह सत्य है, शिव है और सुंदर है। यहां सत्य और सुंदर का अर्थ तो हमने जाना, पर शिव क्या है? शिव शब्द का अर्थ है कल्याणकारी। जो कल्याणकारी है, वही सुंदर है और जो सुंदर है वही सत्य है। इस प्रकार 'सत्यम, शिवम, सुंदरम' जैसे मंत्र का उत्स या बीज शिव ही है अर्थात इस सृष्टि की कल्याणकारी शक्ति। सुंदरता का तात्पर्य किसी दैहिक या प्राकृतिक सौंदर्य से नहीं है। वह तो क्षणभंगुर है। सुंदरता वास्तव में पवित्र मन, कल्याणकारी आचार और सुखमय व्यवहार है। इस सुंदरता का चिरंतन सोत शिव ही है। पर स्वयं शिव का सौंदर्य दिव्य ज्योति स्वरूप है, जिसे इन भौतिक आंखों से देखा नहीं जा सकता, उसे सिर्फ रूहानी ज्ञान, बुद्धि एवं विवेक से समझा व जाना जाता है। उनके गुणों तथा शक्तियों का अनुभव किया जा सकता है। ध्यान की अवस्था में मन को एकाग्र कर उसे ललाट के मध्य दोनों भृकुटियों के बीच ज्योति रूप में अनुभव किया जा सकता है। गीता में प्रसंग है कि ईश्वर ने अपने विश्वरूप का दर्शन कराने के लिए अर्जुन को दिव्य चक्षु रूपी अलौकिक ज्ञान की रोशनी दी थी। परमात्मा को देखने के लिए स्थूल नहीं, आत्म ज्ञान रूपी सूक्ष्म नेत्रों की जरूरत होती है, जो योगेश्वर ने प्रदान किया। उन्होंने अर्जुन को समझाया कि कर्मेंद्रियों से मन श्रेष्ठ है, मन से बुद्धि श्रेष्ठ है और बुद्धि से भी आत्मा श्रेष्ठ है। यानी आत्मा सर्वश्रेष्ठ है। इसलिए खुद को आत्मा रूप में निश्चय कर के ही तुम मेरे (मेरे परमात्मा रूप का) दिव्य स्वरूप का दर्शन कर सकोगे। शिव शब्द परमात्मा के दो प्रमुख कर्तव्यों का द्योतक है। 'श' अक्षर का अर्थ 'पाप नाशक' है और 'व' अक्षर का भावार्थ है 'मुक्तिदाता।' अक्सर लोग शिव और शंकर को एक ही मान लेते हैं, लेकिन दोनों में अंतर है। शिव निराकार ज्योतिबिंदु स्वरूप, ज्योतिर्लिंग परमात्मा हैं। शंकर दिव्य मानवीय कायाधारी देवात्मा हैं। ज्योतिर्लिंग के रूप में लोग जिस जड़ लिंग प्रतिमा की आराधना करते हैं, वह शिव का ही प्रतीक है। इसीलिए धर्म ग्रंथों में राम और कृष्णा जैसे देवता भी शिवलिंग की पूजा-वंदना की मुद्रा में दिखते हैं। देवता अनेक हैं। लेकिन देवों के देव महादेव, निराकार परमपिता परमात्मा एक ही हैं। और वह शिव हैं। शिव पुराण, मनुसंहिता एवं महाभारत के आदि पर्व में, शिव को अंडाकार,

वलयाकार तथा लिंगाकार ज्योति स्वरूप बताया गया है। जो कि ज्ञान सूर्य के रूप में अज्ञानता रूपी अंधकार को नष्ट करते हैं। ज्ञान एवं योग की ये प्रकाश किरणें पूरे संसार में बिखेर कर वे समग्र मनुष्य, जीव एवं जड़ जगत का कल्याण करते हैं। जैसे आत्मा रूप में ज्योति बिंदु है और ज्ञान, शांति, शक्ति, प्रेम, सुख, आनंद आदि उसके गुण स्वरूप हैं, वैसे ही परमात्मा शिव रूप में ज्योति बिंदु होते हुए भी आध्यात्मिक ज्ञान एवं शक्तियों में गुणों के रूप में अवस्थित हैं। जब मनुष्य आत्मा सांसारिक कर्म में आता है, तब उन्हीं की कृपा से उसके लोक एवं परलोक दोनों सिद्ध होते हैं। अपने मन, बुद्धि को ईश्वरीय ज्ञान एवं सहज राजयोग के आधार पर जगत के नियंता एवं केंद्र बिंदु परमात्मा शिव से जोड़ के रखने से ही मनुष्य अपने किए हुए विकर्मों एवं पापों को योग की अग्नि से भस्म कर देवात्मा पद को प्राप्त कर सकता है और मानव समाज तथा संपूर्ण प्राणी जगत को सतोप्रधान तथा सुखदायी बना सकता है।.

भारत के आध्यात्मिक जगत में भगवान ,शिव की जो अलौकिक महिमा सर्व व्याप्त है वह अवर्णनीय हैं वह तो सर्वविदित है परंतु साहित्यिक संसार में भी उनका उससे भी बढ़कर प्रभाव परिलक्षित होता है भगवान शिव नाटय आद्य प्रवर्तक हैं और इस प्रवर्तना के अवसर पर वे नटराज के नाम से अभिहित किए जाते हैं। भरत के नाट्य शास्त्रा में इस विषय का बड़ा ही रोचक वर्णन उपलब्ध होता है,- भरत के अनुसार कृतयुग में नाटक का आरंभ परिलक्षित नहीं होता इसका आरंभ त्रेता युग में दृष्टिगोचर होता है। त्रेता युग में विश्व में विशेष परिवर्तन हुआ लोगों में काम लोभ ईर्ष्या क्रोध आदि भावों का विशेष अस्तित्व आ गया। ग्राम्यधर्म की अधिक प्रवृत्ति हुई उस युग में मनोरंजन का सर्वथा अभाव था। देवताओं को यह बात खलने लगी। इस त्रुटि को दूर करने के लिए महेंद्र आदि प्रमुख देव पितामह के पास गए और उनसे अपनी प्रार्थना कह सुनाई कि भगवान हम लोग क्रीडनक चाहते हैं जो दृश्य तथा श्रव्य दोनों हो।

(महेंद्रप्रमुखैदेवैरूक्तः किल पितामहः।
क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्य श्रव्य च यद भवेत।।
नाटयशास्त्र)

आपके द्वारा प्रचारित वेद का व्यवहार शूद्र जातियों के श्रवण योग्य नहीं वेद शास्त्र के उपदेश के पात्र नहीं हैं वे तो सरस्वती सुकुमार और अपने कर्तव्य के निरूपण से ही लाभ उठा सकते हैं इसलिए हमारा आग्रह है आप सार्वजनिक वेद की रचना करें ऋग्वेद आदि तो त्रेवलणक है ब्राह्मण क्षेत्रीय तथा वैश्य अर्थात दिवजो के लिए ही वे उपयुक्त हैं। अतः आप सर्व वलणक पंचम वेद की रचना करने की कृपा करें ।ब्रह्मा ने देवताओं की प्रार्थना स्वीकार की और चारों वेद से एक एक तत्व का संग्रह कर उन्होंने चार तत्वों से संपन्न 'नाटयवेद' का निर्माण किया। ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य सामवेद से गीत यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रसों को ग्रहण किया और इन चारों तत्वों से संपन्न नाटयवेद की रचना की।

शास्त्र की रचना के अनंतर तन्नीदृष्ट अभिनय के प्रदर्शन के लिए ब्रह्मा ने भरतमुनि को आदेश दिया। तदनुसार इन्होंने अपने पुत्रों तथा अप्सराओं के सहयोग से दो नाटकों का मंचन किया जिसमें प्रथम था—"अमृत मंथन समवकार" और दूसरा था "त्रिपुर-दाह डिम।" पूर्व रंग के विधिवत पूजा तथा अर्चना के अनंतर समुचित अवसर पर इन दोनों का अभिनय किया गया इस अभिनय के दृष्टा के रूप में भगवान शिव स्वयं उपस्थित थे तथा साथ में उनके भूत गण भी थे। भगवान अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने नाटय की सम्यक सृष्टि से आह्लादित होकर पितामह से कहा कि नाटक का प्रयोग तो यथार्थ ही हुआ, परंतु इसमें रोचकता कम है क्योंकि इसमें नृत्य का कथमपि निवेश नहीं किया गया है। इस अभाव की पूलत का उपाय भगवान शिव ने बताया—कि संध्याकाल में नृत्य करते समय मैंने ही नाना करणों से संयुक्त अंगहारों से विभूषित नृत्य किया है। उसका संयोग पूर्वरंग में करो जिससे यह

शुद्ध पूर्वरंग इन नृत्यादि उपकरणों से समन्वित होने पर 'चित्र,' शब्द के द्वारा व्यवहारित किया जाता है।

शंकर नटराजराज है ब्रह्मांड उनकी नृत्यशाला है उनकी लय की भिन्न-भिन्न गतियां हैं वे स्वयं ही नर्तक भी हैं और दर्शक भी जब यह महानट तालबद्ध नृत्य आरंभ करता है, तब उस शब्द से आकलपत होकर नृत्य लीलाएं देखने के लिए सभी अपने-अपने स्थानों से निकल आते हैं। शिव भक्तों को कितने प्रकार के नृत्य ज्ञात हैं पता नहीं इसमें संदेह नहीं है कि इन सभी के मूल सिद्धांत प्रायः एक ही हैं अर्थात संगीतमय आदिशक्ति का विकास।

संगीतारणाव संस्कृत ग्रंथ में तांडव नृत्य से ता तथा लास्य नृत्य से ल वर्णों के सहयोग से ताल शब्द की व्युत्पत्ति दर्शाई गई है।

संगीत दर्पण में ताकार से शंकर या शिव और लकार से पार्वती या शक्ति दोनों का योग ताल कहा गया है।

ताकारे शंकरः प्रोक्तों लकारे पार्वती स्मृता।
शिव शक्ति समायोगाताल नामाभिधीयते।

अर्थात संगीत में ताल एवं लय की उत्पत्ति का प्रणेता भी भगवान शिव को ही माना गया है डमरु आदि अवनद्य वाद्यों की उत्पत्ति भी शिव के द्वारा ही मान्य है एवं डमरु से निकली ध्वनि से ही विभिन्न वर्णो संस्कृत भाषा की उत्पत्ति भी हुई है, जिसका उदाहरण है "माहेश्वर सूत्र।"

इसके अतिरिक्त हम सबकी जीवन दायनी, और संपूर्ण विश्व मे पापनाशनी माँ गंगा जब स्वर्ग से धरती पर अवतरित हुई तो उनकी वेगवती लहरों को भी अपनी जटाओं मे रोकने वाले भी भगवान शिव है।और विषपान करने वाले भी वही है एकमात्र वही शिव शम्भू है जो यह सब जर सकते हैं समस्त सृष्टि को जीवंत भी वही कर सकते हैं और प्रलय रूपी नाश भी वही कर सकते हैं।सम्पूर्ण जड़ चेतन सब शिव ही थे शिव ही है और शिव ही रहेंगे।

संस्कृत काव्य में शिव की नृत्यों का बार बार उल्लेख हुआ है पुष्पदंतआचार्य कृत "महिम्न स्त्रोत," और सारे शैव स्त्रोतों का मुकुट मणि रावण कृत" शिव तांडव स्त्रोत" इस नृत्य का अपूर्व वर्णन प्रस्तुत करते हैं। "पूर्वमेघ " में उज्जैनी के पशुपति महाकाल भगवान शिव के प्रदोष नृत्य का वर्णन है। "मुद्राराक्षस" के मंगलाचरण में शिव के संकुचित तांडव की वंदना की गई है, जिसमें शिव संभल संभल कर नृत्य कर रहे हैं कि सृष्टि का कहीं ध्वंस ना हो जाए। सती देह को कंधे पर लेकर शोक तांडव करने का वर्णन भी कई ग्रंथों में आया है संगीत मकरंद के मंगलाचरण में कैलाश के सामने नृत्य का सुंदर वर्णन है जिसमें विधाता ताल धर हैं विष्णु पटेह वादक हैं भारती वीणा बजाती हैं सूर्य चंद्र बांसुरी बजा रहे हैं और नंदी विशाल मादल पर पौरुषमय घोर गंभीर थाप दे रहा है। इस प्रकार दैवी शक्तियों का नित्य मंगल नत्य देवी के सम्मुख चलता है और इस पूर्णा नृत्य गीत ताल वाद्य के केंद्रीय नृत्य शिव स्वयं परम माहेश्वर अभिनव गुप्त ने अभिनव भारती में कल्पावसाम के समय चिदंबरम अर्थात आकाश रूप शिव के नृत्य का वर्णन किया है, जो उनकी तिरोभाव क्रिया से मेल खाता है। कहने का तात्पर्य है कि समग्र भारतीय साहित्य में शिव तांडव के विविध रूपों का संदर्भ बिखरा पड़ा है। यद्यपि यह सब शिव को नायक बनाकर विभिन्न अवसरों की काव्याभिव्यक्तिया मात्र हैं ,इनमें परस्पर कोई संबंध नहीं है परंतु इनसे यह ज्ञात हो जाता है कि नर्तक शिव की कल्पना भारतीय मनो भूमि का एक केंद्रीय बिंब है।

नटराज शिव अपनी नाट्यशाला पर विभिन्न प्रकार के नृत्यों को प्रस्तुत कर प्राणी मात्र का कल्याण करते हैं ।संसार में जब पाप फैलते हैं, तब वे "संहार तांडव नृत्य " के माध्यम से उनका संहार करते हैं। प्रातः काल" उमा तांडव" मध्यान्ह काल "गौरी तांडव" सायं काल" संध्या तांडव" अर्धरात्रि को "कालिका तांडव" के पश्चात तीनों लोकों के कल्याणर्थ "त्रिपुर तांडव" प्रस्तुत करते हैं। तीनों लोकों में सुख शांति के वातावरण को देखकर वे आनंदित होकर "आनंद तांडव" नृत्य करते हैं। इस नृत्य के समय समस्त प्राणी सुख की निद्रा में किसी दूसरी दुनिया की सैर करते हैं, तब नटराज का यह

नृत्य प्रारंभ होता है। उस समय भगवान भास्कर का रथ उत्तरायण में होता है। वे उक्त दिशा से नट शाला के प्रेक्षागृह पर प्रकाश डालते हैं। चंद्रमा रंगमंच की नीले पर्दे पर अमृत बरसाने वाले प्रकाश से उसे शोभायमान करता है। उनके गण-भैरव डमरु बजा ताल दर्शाते हैं। पिशाच मंच को विभिन्न उपकरणों से सजाते हैं। डाकिनियां शाकनियां उनका श्रृंगार करती हैं। भूत-प्रेत प्रेक्षा ग्रह की व्यवस्था करते हैं। जोगनिया एवं अन्य गण दर्शकों के स्थान पर बैठकर नृत्य कला का आनंद प्राप्त करते हैं, तथा देवी उनके अंगहारो एवं कलामानो की गीतियों को देखकर आकाश से पुष्पों की वर्षा करते हैं।

यह नृत्य वैदिक छन्द "जगति" की लय एवं मात्राओं के अनुसार चलता है। जगती छंद 48 मात्राओं का है । यह मात्राएं चार भागों में विभाजित हैं, प्रत्येक विभाग बारह मात्राओं का है ।भारतीय संगीत में बारह मात्राओं के ताल को चौताला ध्रुपद का ठेका कहते हैं। ध्रुपद गान में चार वर्ण हैं जिनके नाम हैं स्थाई, अंतरा संचारी और आभोग। बारह मात्राओं की इस ताल का संबंध बारह आदित्य, बारह महीने, बारह पंखुड़ियों वाले "अनाहत कमल दल" संगीत कला के शुद्ध एवं विकृत स्वर बारह राशियां आदि से है।

शिव के सप्त तांडव नृत्य में आनंद तांडव का सातवां स्थान है। वैदिक शब्दों में जगती छंद का स्थान भी सातवां है। सप्त स्वरों में निषाद स्वर सातवां है। सूर्य की सप्तलषयों में सातवीं रश्मि हरिकेश है। जिसका संबंध निषाद स्वर से है, यह रश्मि प्राणी मात्र के तेज बल और वीर्य का क्षरण दृवत्व से रक्षण करती है। आकाश के समस्त नक्षत्र इसी रश्मि से उत्पन्न हुए हैं।

"रश्मीनाम प्रणानां, रसा च स्वीकार...त सूर्याः।

अतः सूर्य रश्मि ही समस्त प्राणियों की प्राणशक्ति है। वह दिव्य अमृत रस से प्राणियों को जीवन प्रदान करती है। वैदिक शब्द छंदों की उत्पत्ति सप्तलषयों से हुई है ऐसा उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में प्राप्त होता है सब तांडव के नामों में संगीत के सब दूसरों की भी जानकारी मिलती है।

भगवान शिव शंकर के अनेक नृत्यों में से एक नृत्य है "प्रदोष नृत्य"- यहाँ ध्यातव्य है कि भगवान शिव शंकर प्रदोष काल में डमरू बजाते हुए आनंदातिरेक से मग्न हो कर जगत को आह्लादित करने के लिए नृत्य करते हैं। उनके नृत्य का यही समुचित काल बताया गया है।यह नृत्य हिमालय पर्वत पर हुआ करता है।" "शिवप्रदोषस्त्रोत" में इसका वर्णन किया गया है-

पार्वती के साथ विवाह के अनंतर शिव ने अपने शरीर में इसके दो भाग कर दिए हैं, एक है "तांण्डव" और दूसरा है लास्य। तांण्डव तो शंकर का नृत्य है—उद्धत तथा आकर्षक लास्य पार्वती का नृत्य है सुकुमार तथा मनोहर । संसार के तीनों गुणों से उत्पन्न नाना रस चरित यहां दिखलाई पड़ते हैं। तथ्य तो यह है कि अलग-अलग रुचि वाले लोगों के लिए नाटक ही ऐसा उत्सव है, जिसमें सब को एक समान आनंद मिलता है नाटक के अलौकिक सरसता सार्वभौम आकर्षण तथा सार्वत्रिक मनोरंजन का प्रधान कारण नटराज शंकर के द्वारा प्रदलशत नृत्यों का सननिवेश ही है। शुद्ध अभिनव को चित्र अभिनय में परिवलतत करने का श्रेय उन्हीं को प्राप्त है। नाटय शास्त्र में नृत्य के संपादन की क्रिया अंगहारों के द्वारा होती है। अंगहार का प्रधान सहायक होता है करण"।

हस्तपाद समयोगो नृत्यस्य कर्णम मतम।

साधारणतया हाथ तथा पैर केसम्यक योग होने से करण की निष्पत्ति होती है। अभिनव भारती के अनुसार हस्त पाद का यहां प्रयोग विस्तृत अर्थ में किया गया है हस्त का अर्थ केवल हाथ ना होकर शरीर का ऊपरी भाग है तथा पाद का अर्थ शरीर का निचला हिस्सा है। यह करण 108 प्रकार के होते हैं। इन्हीं करणों से संवलित होने वाले अंगविक्षेप संख्या में 32 होते हैं, जिनके नाम और लक्षण नाट्यशास्त्र में दिए गए हैं इन्हीं के संग में चार रेचक भी होते हैं रेचक शब्द का अर्थ होता है चलन चलाना हिलाना या गति देना। चार विशिष्ट अंगों के चलाने के कारण रेचक होते हैं—1. पादरेचक 2. कटि रेचक 3. कर रेचक तथा 4. कंठ रेचक।

इन सम्रग अंगहारो तथा रेचकों से संयुक्त लय और ताल के वश में भगवान शंकर ने दक्ष यज्ञ के नष्ट किए जाने पर डिंम डिम गोमुख आदि विविध वाद्यों के संग संध्याकाल में जो नृत्य किया उसे ही "तांण्डव" नृत्य कहते हैं । महादेव की आज्ञा से उन्हीं के प्रधान गण तण्डु ने इनको अभिनय के प्रयोग के निमित्त भरतमुनि को दिया था । तण्डु से संबंध रखने के कारण इसका नाम "तांण्डव" पड़ा। अभिनव गुप्त ने अपनी टीका में तण्डु शंभू के प्रख्यात गण नंदी का ही नामांतर बतलाया है। यह शिव का दूसरा प्रसिद्ध नृत्य है "तांण्डव" कहलाता है इनके तामसिक रूप भैरव और वीरभद्र के साथ इसका संबंध है। यह शमशान में होता है। इसमें शिव की दस भुजाएं होती है, और देवी तथा भूत पिशाचों के साथ यह उद्धत रीति से नाचते हैं। एलिफेंटा एलोरा और भुवनेश्वर की तक्षण कला में प्राया ऐसी मूलतयां पाई जाती हैं जो इसका प्रमाण है। शैव और शाक्त ग्रंथों में शिव और देवी के इस शमशान नृत्य का वर्णन बड़े ही मर्मस्पर्शी और गंभीर भाव से किया गया है।

" तीनों लोकों को उत्पन्न करने वाली गौरी को रत्नजड़ित सिंघासन पर विठा कर कैलाश पर्वत पर संध्या समय शूलपाणि नृत्य करते हैं और देवगढ़ चारों और उनकी सेवा में उपस्थित रहते हैं। सरस्वती वीणा बजाती हैं और इंद्र वेणु। ब्रह्मा हाथों से तालों को जगाते हैं । भगवती लक्ष्मी गान करती हैं। विष्णु निपुणता से स्निग्ध मृदङ्ग बजाते हैं और प्रदोष काल में सभी देवगण मृडानिपति को घेरकर उनकी सेवा में उपस्थित रहते हैं।" गंधर्व, यक्ष, पतंग, उरग सिद्ध, साध्य, विद्याधर ,अमर, अप्सरा और तीनो लोक में निवास करने वाले सभी जीव संध्या होते ही शिव के पार्श्व में आकर खड़े हो जाते हैं"। "कथासरित्सागर" के मंगलाचरण में भी इस नृत्य की चर्चा की गई है। महाकवि कालिदास ने भी मेघदूत में इसी काल का निर्देश करते हुए पूर्वमेघ में श्लोक 38 में कहा है - उज्जैनी के महाकाल के मंदिर की घटना है।

यक्ष मेंघ से कह रहे हैं - हे मेघ! यदि तुम महाकाल के मंदिर में सांझ होने से पहले पहुंच जाओ तो वहां तब तक ठहर जाना जब तक सूर्य भली-भांति आंखों से ओझल ना हो जाए ,और जब महादेव की साझ की सुहावनी आरती होने लगे, तब तुम भी अपने गर्जन का नगाड़ा बजाने लगना जिससे गंभीर गर्जन का पूरा -पूरा फल मिल जाएगा ।इसी अवसर पर कवि का उल्लेख है -

"नृत्तरम्भे हरपशुपते रार्दनागाजिनेच्छाम"।

जिससे उस समय भगवान शिव के नृत्यारम्भ की सूचना मिलती है। शिव संहारकर्ता है और शमशान इन्हें प्रिय है, किंतु यह संहार किसका करते हैं। कल्पान्त में यह केवल धावा पृथ्वी का धावा पृथ्वी का ही संहार कर नहीं करते वरन् बंधनों का संहार करते हैं, जो प्रत्येक आत्मा को बांधे रहते हैं ।शिव शंकर नटराज के अनेक नृत्यययो में से केवल तीन ही महत्वपूर्ण हैं जिनका उल्लेख बार बार मिलता है ।प्रथम" प्रदोष नृत्य" है, द्वितीय "तांण्डव नृत्य "है एवं तृतीय नटराज का "नादान्त नृत्य" है, जो ब्रह्मांड के केंद्र चिदंबरम अथवा तिललई के स्वर्ण मंडप में हुआ करता है।

शिव के नृत्य के 3 प्रधान भावहैं। प्रथम, इनका यह नृत्य इनके नियमित कार्यकलापों का प्रतिरूप है ब्रह्मांड में जो कुछ वस्तु मिलती है, उसको हिलाने वाली शक्ति का मूल स्रोत यही नृत्य है। इस विश्व अथवा ब्रह्मांड का द्योतक प्रभामंडल है द्वितीय, असंख्य जीव आत्माओं को माया के बंधन से मुक्त करना ही इस नृत्य का उद्देश्य है। तृतीय, नृत्य का स्थान विश्व का केंद्र चिदंबरम हृदय के भीतर है। भगवान शिव नटराज के बहुत से अन्य नृत्यों का भी उल्लेख प्राप्त होता है जैसे सृष्टि नृत्य, स्थिति नृत्य प्रलय नृत्य, तिरोभाव नृत्य आदि। यहां पर नटराज की मूलत का उललेख भी आवश्यक हो जाता है—

परवर्ती साहित्य में नटराज की विविध मूलतयों का उल्लेख विभिन्न भाषाओं में हुआ है ।तक्षशिला के ध्वंसस्तूप से उद्धार की गई नटराज की उर्ध्व

ताण्डव भंगिमा वाली मूलत संभवत उत्तर भारत में नटराज प्रतिमा का प्राचीनतम रूप है। तत्पश्चात आती है भुवनेश्वर मंदिर के अष्टभुज नटराज एवं बादामी गुफा के ोडशहस्त नटराज की प्रतिमाएं ,जो कला की दृष्टि से उल्लेखनीय कही जा सकती हैं ।फिर आती है एलोरा के कैलाश नाथ मंदिर एवं एलिफेंटा की नटराज प्रतिमाए है जो समीक्षकों की दृष्टि का आदर पा चुकी हैं। परंतु इन सब से बढ़कर और सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रतिमा है चिदंबरम नटराज की "नादन्त तांण्डव" या "आनंद तांण्डव" करती हुई जगत प्रसिद्ध कांस्य प्रतिमा जिसकी प्रतिकृतियां पूरब- पश्चिम, उत्तर -दक्षिण सर्वत्र लोकप्रिय हुई हैं। इस मूलत के चार हाथ हैं --अभय, डमरु, अग्नि और गज हस्त मुद्राएं धारण किए हुए । वामपग उठा हुआ और दक्षिण पग से अपस्मार या बौने राक्षस को कुचलते हुए एक अग्नि ब्रत के मध्य शिव अपने "आनंद तांण्डव" का पंच क्रिया नृत्य(सृष्टि ,स्थिति, प्रलय, तिरोभाव ,और अनुग्रह) कर रहे हैं यही नटराज बिंब का सर्वाधिक विकसित रूप है । भगवान नटराज के हाथ में डमरू का भी बहुत गहरा अर्थ है ।डमरु और अग्नि क्रमशः सृष्टि और प्रलय अर्थात सर्जन और संहार के प्रतीक हैं। डमरु के द्वारा संगीत पैदा करना एक सृजन है । संगीत तालबद्ध शब्द या ध्वनि है ।शब्द ही सृष्टि की प्रथम सगुण अभिव्यक्ति है ।आदि में शब्द था ऐसे श्रुतियाँ कहती हैं ।शब्द वस्तुओं के प्रत्यय का ध्वनि प्रतीक है ।शैवों के अनुसार सृष्टि मूल रूप से मानसी है और चैतन्य रूप महाशिव के भीतर प्रत्यय रूप में स्थित है ।बाद में उसका स्थूल रूपांतर वस्तु जगत के रूप में होता है ।अतः डमरु ध्वनि इसी शब्द सृष्टि अर्थात नित्य प्रत्यय सृष्टि का स्थूल रूपांतर होने की क्रिया का प्रतीक है। वास्तव में यह सृजन नहीं बल्कि एक तरह की आत्माभिव्यक्ति है ।यह अभिव्यक्ति एक तालबद्ध ढंग से इकाइयों में हो रही है ,अतः इस दृष्टि से भी यह अभिव्यक्ति एक संगीत है। यदि छन्दहीन या क्रमहीन शोरगुल जैसी होती तो इसका प्रतीक डमरु संगीत नहीं हो सकता था ।यह सृष्टि निश्चित रूप से एक ऋतु चक्र का अनुधावन करती है ,अतः इसमें छंद है ताल है । साथ ही यह कला है ,क्योंकि इसका मौलिक रूप उत्पादन या सृजन नहीं बल्कि आत्माभिव्यक्ति है । महाचैतन्य ने अपने ही अंदर निहित प्रत्ययों को स्थूल रूप में अभिव्यक्त करता है तो उसे 'सृष्टि' या' सगुण' जगत कहते हैं और समेट कर पुनः अपने अंदर संपुटित कर लेता है तो 'तिरोभाव 'होता है क्योंकि तालबद्ध छंदबद्ध आत्व्यमाभिवक्ति को ही कला कहते हैं। इसी से यह सृष्टि शिव की कला है जिस का प्रतीक है डमरु संगीत । नटराज मूलत भारतीय संस्कृति की महान् आस्तिक परंपरा का प्रतीक है ,जिसका बीजारोपण अनार्य - मन में हुआ, पर अंकुरण एवं संवर्धन आर्य - अनार्य ,दोनों की अखिल भारतीय साधना द्वारा हुआ। यह नटराज स्वयं साक्षात हिंदुस्तान है ,,जिस का प्राचीन नाम था प्राचीन नाम था अज नाम वर्ष और जंबूद्वीप तथा नया संवैधानिक नाम है" भारत"। इस के ललाट की तृतीय नयन और इसके वाम हस्त की अग्नि आर्य का प्रतीक है । इसके शीश पर चंद्रमा और गंगा की धारा निषाद (लेजतपब कोल) का प्रतीक है। इसकी डमरु ध्वनि और अभय तथा मंगलहस्त मुद्राएं द्राविड को व्यक्त करती हैं। इसका मुंड माल श्रृंगार और सर्प मेंखला किरात (भोटमंगलीय) की अभिव्यक्ति है । इस नटराज का नृत्य हमारी संस्कृति की चतुर्मुखी सिसृक्षा (ब्तमंजपअम न्तहम) का नृत्य है । जहां जहां तकयह नृत्य जाता है ,वहां वहां तक हमारी यज्ञ भूमि का विस्तार होता जाता है ।यह नटराज प्रतिमा उत्तर -दक्षिण, पूरब -पश्चिम के चतुलदक भारत को व्यक्त करती है। कहते हैं कि इस नृत्य के अवसान के बाद ही नटराज ने ढक्का नाद किया था जिससे संस्कृत और तमिल भाषा के व्याकरण सूत्रों का आविष्कार हुआ। सत्यम शिवम सुंदरम नटराज का वर्णन करना असंभव सा ही है अंत म बस इतना ही--

आंगिक भुवनम यस्य वाचिकम सर्व वाङ्गमयी,
आहार्य चन्दरताराभिः तं नमः सात्विकए शिव।।

चौदह भुवन जिनके आंगिक अभिनय हैं ,सारा वांड्मय जिनका वाचिक अभिनय है ,तारागढ़ और चंद्रमा जिनके आहार्य- अभिनय के प्रतीक हैं, उन सात्विक अभिनय रूप शिव को नमस्कार।।

संदर्भ

1. नटराज कुबेरनाथ राय संगीत पत्रिका हाथरस
2. Dance of Shiva आनंद कुमार स्वामी
3. भारतीय नृत्य कला बंगला गायत्री भट्टाचार्य
4. मेघदूत शिव तांडव स्त्रोत महिम्न् स्त्रोत आदि
5. भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन अरुण कुमार सेन
6. नटराज भारतीय प्रतीक विद्या संगीत पत्रिका हाथरस
7. नाटक के आद्य प्रवर्तक नटराज शंकर पद्म भूषण आचार्य पंडित वलदेव उपाध्याय
8. नाटय शास्त्रीय लास्यांग डॉ सुचित्रा हरमलकर संगीत पत्रिका
9. नटराज शिव का आनंद तांडव नृत्य डॉ जय चंद्र शर्मा संगीत पत्रिका हाथरस

आधुनिक परिदृश्य में शिव शक्ति

डॉ. अश्विनी यादव

असिस्टेन्ट प्रोफेसर (इतिहास विभाग)
हण्डिया पी.जी. कालेज, हण्डिया, इलाहाबाद।

शिव का शाब्दिक अर्थ वो जो नहीं है आधुनिक वैज्ञानिक युग में विज्ञान ने यह सिद्ध किया कि इस सृष्टि का हर चीज शून्यता से आती है और शून्यता में ही जाकर समाप्त होती है। शिव ही वो गर्भ है जिसमें सब कुछ जन्म लेता है और वे ही वो गुमनामी है जिनमें सब कुछ फिर से समा जाता है, सब कुछ शिव से आता है और शिव में चला जाता है। शिव को योगी और आदि योगी भी कहा जाता है। योग इस जीवन की मूलभूत संरचना को जानने और उसे इसकी परम सम्भावना तक ले जाने का विज्ञान और तकनीक है। योग मानव चेतना को उपर उठाने का सबसे शक्तिशाली साधनों को सिद्ध क्रिया योग शब्द का अर्थ है मिलन योगी वह है जिसने इस मिलन का अनुभव कर लिया है अर्थात कम से कम एक क्षण के लिए वह पूर्ण शून्यता बन चुका है। सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति एवं संहार के देवता शिव हैं, त्रिदेवों में (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) शिव संहार के देवता माने गये हैं, जो अनादि तथा सृष्टि प्रक्रिया के आदि स्रोत हैं जो कल्याणकारी हैं।[1] शिव भौतिकता के ऊपर मन को महत्ता देते हैं, इसलिए उनका केवल एक पैर जमीन पर होता है, इसी कारण उन्हें एक पद यानि कि एक पैर वाला भगवान कहा जाता हे, भौतिकता की उथल-पुथल जो दुःख का कारण बनती है और उस विचलित मन को शान्त करने का एक मात्र आधार ज्ञान ही हो सकता है। बरगद के पेड़ के नीचे दक्षिण दिशा की ओर मुख करके बैठे हुए भगवान शिव को दक्षिणमूर्ती का यह रूप शिव को गुरूओं के गुरू के रूप में दर्शाता है। बरगद का पेड़ भारत के साधु परम्पराओं के साथ जुड़ा है और ये तपस्वी भौतिकवादी संसार के गृहस्थ लोगों को ज्ञान प्रदान करते हैं। स्कन्द पुराण में शिव को सब तत्वों का मूल कहा गया है, सृष्टिकर्ता ब्रह्मा से भी पहले मैं ही अकेला ईश्वर था वर्तमान में भी मैं ही ईश्वर हूं और भविष्य में भी मैं ही एकमात्र ईश्वर रहूंगा। मेरे अतिरिकत कोई दूसरा ईश्वर नहीं है।[2] शिव पार्वती का परस्पर इतना तादात्म्य हुआ कि दोनों की सन्निहित कल्पना की गयी, पुरूष और नारी को एक ही शरीर के भाग के रूप में स्वीकार किया गया दोनों एक दूसरे के बिना अधूरे हैं। शिव पुराण के अनुसार शिव-शक्ति का संयोग ही परमात्मा है, शिव की जो परम शक्ति

है उससे चित्त प्रकट हुआ, चित्त शक्ति से आनन्द शक्ति का प्रादुर्भाव कुछ आनन्द शक्ति से इच्छा शक्ति का इच्छा शक्ति से ज्ञान शक्ति का प्रार्दुभाव हुआ। ज्ञानशक्ति से क्रिया शक्ति प्रकट हुई, इन्हीं से निवृत्ति आदि कथाएं उत्पन्न हुयी।

जहां तक शिव के अर्द्ध नारीश्वर का सम्बन्ध है यह रूप शिव ने अपनी मर्जी से धारण किया था, वह इस रूप के जरिए लोगों को बताना चाहते थे कि स्त्री और पुरूष समान हैं, अर्द्ध नारीश्वर अवतार जिसमें भगवान शंकर का आधा शरीर स्त्री का तथा आधा शरीर पुरूष का है। हमें बताना है कि समाज परिवार तथा जीवन में जितना महत्व पुरूष का है उतना ही स्त्री का एक दूसरे के बिना इनका जीवन अधूरा है। शिव पुराण के अनुसार जब ब्रह्मा ने सृष्टि में जीवों को उत्पन्न किया तो उसमें वृद्धि न होने से ब्रह्मा जी अत्यन्त चिन्तित हो गये तो विष्णु के पास गये विष्णु ने उन्हें शिव की तपस्या करने के लिए कहा। ब्रह्मा की तपस्या से परमात्मा शिव प्रसन्न होकर अर्द्धनारीश्वर का रूप धारण कर प्रकट हुए और अपने शरीर में स्थित देवी शक्ति के अंश को पृथक कर दिया। इसके बाद ब्रह्मा जी ने उनकी उपासना की, प्रसन्न होकर शक्ति ने अपनी भृकुटि के मध्य से अपने ही समान कांति वाली एक अन्य शक्ति की सृष्टि की जिसने दक्ष के घर उनकी पुत्री के रूप में जन्म लिया।[1] ब्रहमा ने भगवती रूद्राणी स्तुति करते हुए कहा - हे देवी आपसे पहले नारी कुल का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था, इसलिए आप की सृष्टि की प्रथम नगरीय रूप मातृ रूप और शक्ति रूप है आप अपने एक अंश से इस चराचर जगत की वृद्धि हेतु मेरे पुत्र दक्षण की कन्या बन जाये। इन्हीं से ब्रह्मा जी अपने कार्य में सफलता प्राप्त की।

संसार में सब कुछ शिव शक्ति का ही परिणाम है शिव नर हैं उमा नारी शिव ब्रह्मा हैं, उमा वाणी हैं, शिव विष्णु हें, उमा लक्ष्मी हैं, शिव सूर्य हैं उमा तारा हैं, शिव दिन हैं उमा रात्रि हैं, शिव यज्ञ वेदी हैं, उमा स्वाहा हैं, शिव लिंग हैं उमा पीठ हैं। शिव और शक्ति जहां व्यापत न हो ऐसा कोई स्थान नहीं है।

ऋग्वेद में शक्ति का उल्लेख है कि मैं ही वृक्ष के दोषियों को मारने के लिए रूद्र का धनुष चढ़ाती हूं मैं ही सेनाओं को मैदान में ला खड़ी करती हूं, मैं ही आकाश और पृथ्वी पर सर्वत्र व्याप्त हूं। मैं सम्पूर्ण जगत की अधीश्वरी हूं, मैं अपने उपासकों को धन की प्राप्त करने वाली साक्षात करने योग्य परब्रह्म को अपने से अभिन्न रूप में जानने वाली तथा पूजनीय देवताओं में प्रधान हैं। सम्पूर्ण भूतों में मेरा प्रवेश है, अनेक स्थानों में रहने वाले देवता जहां कहीं जो कुछ भी करते हैं, वह सब मेरे लिए करते हैं।[3] तैतरीय अरण्यक में रूद्र की पत्नी पार्वती का उल्लेख मिलता है। उमा शब्द केन उपनिषद में मिलता है जहां इन्हें विद्या देवी का रूप मानते हुए हेमवती (हिमालय की पुत्री) कहा गया है।[4]

शैव धर्म के अनुयायी शिव को ही परमतत्व मानते हैं जिसमें शिव उस शक्ति का प्रतीक हैं जो नाश करती है तथा नाश के बाद सृजन प्रक्रिया प्रारम्भ करते हैं। इस प्रकार नाश और सृजन का क्रम आदि काल से चला आ रहा है, शिव का स्वरूप जैसा काव्यों में वर्णित चित्रों में चित्रित और मूर्तियों में अंकित है, उनमें भी कयी विविधताएं हैं, मस्तष्क पर त्रिपुंड (सफेद रेखाएं) तीसरी आंख, जटाजूट में विराजमान गंगा, चन्द्रमा, गर्दन में सांप लपटे हुए तथा नीला कंठ (समुद्र मंथन के विष पीने के कारण) तथा कंठ में मुंडमाला हाथ में त्रिशूल, डमरू, रूद्राक्ष की माला, कमण्डल, तन पर श्मशान की भष्म लपेटे रहते हैं, रामायण तथा महाभारत[5] में भी उनकी महिमा का गुणगान किया गया है। जहां शिव का उल्लेख शक्तिशाली देवता के रूप में हुआ है जहाँ भगवान शिव ने प्रसन्न होकर पाशुपत अस्त्र प्रदान किया। शिव से जुड़े सभी प्रतीकों का प्रतीकात्मक अर्थ है जिनसे जुड़ी कलाएं उनकी विशेषताओं को उजागर करती हैं। अपनी इन्हीं विशेषताओं के

कारण शिव पूर्ण और सब जानने वाले हैं, वह देश काल से परे हैं, अमर हैं निराकार हैं, अनादि काल से असंख्य नामों और रूपों में प्रकट होकर सृष्टि की रक्षा की।

शिव लिंग भगवान शंकर का प्रतीक है जो उनके ज्ञान और तेज का प्रतीक है शिव का अर्थ कल्याणकारी और लिंग का अर्थ सृजन से हैं लिंग पूजा का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है।[6] शिव लिंग भी कल्याण और सृजन से जुड़ा है।

इस प्रकार शिव के अवतार महिला व पुरूष दोनों की समानता का संदेश देता है, समाज परिवार तथा जीवन में जीतना महत्व पुरूष का है उतना ही स्त्री का भी है इनका जीवन एक दूसरे के बिना अधूरा है, अर्थात समस्त पुरूष भगवान शिव के अंश और समस्त स्त्रियां भगवती शिवा की अंशभूता है जिस प्रकार सूर्य और उसका प्रकाश, अग्नि और उसका आप उसी प्रकार शिव और शक्ति है धर्मशास्त्रों में भी उल्लेख है कि बिना शक्ति की सहायता के शिव का साक्षात्कार नहीं हो सकता, शिव शक्ति का स्वरूप जगत पिता और जगत माता का है। शिव गृहस्थों के ईश्वर और विवाहितों के उपास्य देव हैं, संसार की समस्त विशेषताओं से घिरे रहने पर भी अपने मन को शान्त व स्थिर बनाये रखना ही योग है, भगवान शिव अपने परिवार सम्बन्धों से हमें इसी योग की शिक्षा देते हैं। अपनी पत्नी के साथ पूर्ण एकात्मयता अनुभव कर उसकी आत्मा में आत्मा मिलाकर ही मनुष्य आनन्द स्वरूप शिव को प्राप्त कर सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अथर्ववेद 11.2.6
2. स्कन्द पुराण 1.2.78, मत्स्य पुराण 60.4
3. ऋग्वेद 10.125
4. केन उपनिषद 3.12
5. महाभारत वन पर्व 38.40
6 मैकडानेल–हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर पृ. 155

उत्तर भारत की लोकगायिका : बिन्ध्यवासिनी देवी

संगीता कुमारी

शोधार्थी

संगीत एवं नाट्य विभाग, दरभंगा।

स्वतंत्रता के बाद बिहार की जो आवाज सबसे ज्यादा सुनी गयी, वह आवाज थी बिन्ध्यवासिनी देवी की। उनका बिन्ध्यवासिनी देवी की। उनका बिन्ध्य पर्वत 'लोक' था। लोक उनके लिए एक ऐसा व्यापक संसार था, जहाँ मिट्टी की गरिमा थी, जहाँ श्रम और सृजन के प्रति आदर था, जहाँ सुख-दुख की तमाम छवियाँ जीवन से फूटती थीं, जहाँ आकाश की कोख से उपजती भोर और धरती की कोख से उपजती साँझ, दोनों के स्वागत का साहस था, वह लोक की उस अवधारणा से जुड़ी रहीं, जहाँ सृजन व दायित्त्व मनुष्य के जीवन को मंगलमय बनाना है। उनके लिए संगीत में प्रकृतिक के साथ मनुष्य के संघर्ष का आत्मबोध शामिल था। इस संघर्ष में प्रकृति उनके आमने-सामने नहीं होती बल्कि, वह उनकी सहचरी होती थी। उनका यह आत्मबोध आनंद का ऐसा अद्‌भूत संसार रचता था, जहाँ मानवीय संबंधों की उष्मा थी, और थी पूरी सृष्टि को जानने समझने की उत्कंठा। विराटता के भीतर लघुता की रक्षा और लघुता के भीतर विराटता की रचना ने उनके संगीत को विश्वसनीय बनाया। वह संगीत को ऐसी भाषा मानती थीं, जो दूसरी सभी भाषाओं के मौन होने के बाद आरंभ होती थी। बिन्ध्यवासिनी देवी के लिए संगीत मनुष्य और ईश्वर, दोनों तक पहुँचने का रास्ता था। वह जीवन भर अपने राम को लोकगीतों में ढूढ़ती रहीं। उन्होंने कुछ वर्ष पहले ही विशाल लोक रामायण को रूपाकार दिया। असंख्य लोगों के राम लोक स्मृतियों से निकल कर इस लोक रामायण में शामिल हुए। अब युगों तक इस लोक रामायण के राम असंख्य कंठों से फूटते रहेंगे और हमें लोकजीवन की मर्यादा सिखलाते रहेंगे।[1]

विन्ध्यवासिनी देवी का जन्म सन् उन्नीस सौ बीस के मार्च माह की पाँचवीं तारीख को मुजफ्फरपुर में उनके नाना चतुर्भु सहाय के घर हुआ। पिता जगत बहादुर प्रसाद, गौर रौतहट के रहने वाले थे। गौर रोतहट नेपाल तराई का पिछड़ा क्षेत्र है। उनकी शिक्षा मुजफ्फरपुर में नाना के घर हुई। छपरा जिले के दिघवारा में उनका विवाह हुआ। मैथिली, भोजपुरी, बज्जिका का संस्कार लिए विन्ध्यवासिनी पटना आई तो मागधी ने भी उन्हें अपना बना लिया। बिहार की तमाम भाषाएँ बोलियाँ उनके गायन में शामिल हुई। यही कारण था कि वह किसी भी भाषा या बोली में गाती, तो संपूर्ण उत्तर भारत उसे स्वीकार करता। वह भाषा का भेद मिटा देतीं। उनके गीतों के भाव प्रमुख होते और उनकी स्वर भंगिमाओं के जादू में लोग खो जाते।[2]

बिन्ध्यवासिनी देवी ने जब सन् उन्नीस सौ पैंतालिस में आर्य कन्या विद्यालय में संगीत शिक्षकों के रूप में नौकरी शुरू की और इसी के आसपास मंच पर लोकसंगीत का गायन शुरू किया। बिहार जैसे प्रदेश में यह कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि संभ्रांत परिवार की कोई स्त्री मंच पर गायन का कार्यक्रम प्रस्तुत करे। सिर्फ गणिकाएँ ही सार्वजनिक कार्यक्रमों में भाग लेती थीं। भागलपुर की जहाँ आरा, कज्जनबाई, गया की ढेला बाई, मुजफ्फरपुर की पन्ना बाई आदि स्त्रियाँ मंच पर

गायन करने के लिए प्रसिद्ध थीं। विंध्यवासिनी देवी में अकूत साहस था। संगीत के प्रति आस्था थी। उनके प्रथम गुरू थे उनके पति-सहदेश्वर वर्मा। सहदेश्वर वर्मा पारसी रंगमंच शैली के नाट्य-निर्देशन थे। अपने पति के सहयोग और विश्वास ने उन्हें सामाजिक रूढ़ियों से संघर्ष करने की शक्ति दी। बिन्ध्यवासिनी देवी की मंच पर उपस्थिति से देखते-देखते बिहार में एक नए वातावरण का आरंभ हुआ। उनकी सक्रियता से सिर्फ लोकसंगीत को ही गरिमा नहीं मिली, बल्कि स्त्री के हूनर को भी स्वीकृति मिली। सन् 1948 में आकाशवाणी, पटना के स्थापना समारोह में उन्होंने गायन प्रस्तुत किया और फिर नियमित रूप से आकाशवाणी के लिए गाने लगीं। उनके इस माध्यम से जुड़ते ही संभावनाओं के नए द्वार खुल गए और बिन्ध्यवासिनी का स्वर दूर-दराज के गाँवों तक पहुँचने लगा। सन् 1955 में जगदीश चन्द्र माथुर के आग्रह पर आकाशवाणी पटना में लोकसंगीत प्रोड्यूसर के रूप में कार्य शुरू करने से पहले वह एक परिचित नाम बन चुकी थीं।[3]

वे गीत, जो कल तक गाँव-जवार की सीमाओं में बँधे थे, मुक्त हुए और उनमें पिरोए जीवन के राग-विराग दिक्-दिगन्त में गूँजने लगे। उस समय की रिकॉर्ड कंपनियों में बिन्ध्यवासिनी देवी ने बाजार की गुलामी नहीं स्वीकार की। उन्होंने बाजार को विवश किया कि उनकी और लोक की सुरूचि के हिसाब से चले। उन्होंने ऋतुओं के गीत रचे। उन्होंने प्रकृति की तमाम लीलाओं को स्वर दिया। संस्कार गीतों की पारंपरिकता को नए अर्थ देते हुए उन्हें पुनर्जीवन दिया। बिन्ध्यवासिनी स्त्री-जीवन की पीड़ा को महाविस्तर देते हुए आलाप भरती रहीं। रोजी-रोटी के संघर्ष में गाँव-घर छोड़कर परदेश गए लोगों की छूट गई स्त्रियों का विरह-स्वर बनकर भी वह गूँजती रहीं। उन्होंने चुहल और ह्रास-परिहास को स्वर देते हुए संबंधों की उष्मा को संगीत के रूपान्तरित किया। उन्होंने गाया, 'पिया ला दे रेशम की डोरी लमाझम पानी भरूँगी', तो साथ-साथ यह भी गाया कि 'फाँसी बनी है रेशम डोरी'। पिया नहीं आए अबका होरी'। उन्होंने ननद से दुःख को साझा करते हुए गाया, 'जेठ दुपहरिया में तलके झुमरिया। बेयरिया जियरा डारे हे छोटी ननदी' और ननदोई से परिहास करने पर ननद शंकित हुई तब कहा, 'दिनवा हमार, रात तोहार ननदी'। बिन्ध्यवासिनी देवी ने अनगिनत कंठों फूटे पारंपरिक गीतों को संकलित किया और ढ़ेरों नए गीत चरे। मानव लोकसंगीत रूपक, लोक रामायण, वैशाली महिना, लोक संगीत सागर और ऋतुरंग जैसी प्रकाशित पुस्तकों के अलावा उनकी कई पुस्तके अभी अप्रकाशित पड़ी है।

उन्हें भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने स्वर्ण पदक देकर सम्मानित किया। उन्हें पद्मश्री सम्मान मिला। केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार, फेलोशिप और रत्न सदस्या से वह सम्मानित हुई। वह कई देशों की यात्रा पर गयीं। एक पार्श्व गायिका के रूप में लोकगीतों का पहला एलबम एच. एम. वी. कंपनी ने जारी किया था। संगीतकार चित्रगुप्तजी के साथ भोजपुरी फिल्म 'मइया' और संगीतकार भूपेन हजारिका के साथ 'छठी मइया की महिमा' फिल्म में काम किया। 'कन्यादान' फिल्म में गायिकी के साथ-साथ संगीत भी दिया।[4]

आज जबकि संस्कृति की दुनिया एक फूहड़ बाजार में बदल चुकी है और लोगीतों के नाम पर अश्लीलता और विकृति का कारोबार चल रहा है, विन्ध्यवासिनी देवी के बोल और उनका संगीत लोक का सहारा है। 18 अप्रैल, 2006 को निधन से कुछ दिनों तक बिंध्य कला मंदिर में नन्हीं बच्चियों पर ही नहीं बल्कि, हम उम्र की स्त्रियों पर वह संगीत का खजाना लुटाती हुई लोकगीत के क्षेत्र में अपनी अमिट छाप छोड़ गयीं।

संदर्भ

1. रंग-अरंग, पृ. 87-98, सुलभ ऋषिकेश, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पटना, इलाहाबाद, 2012
2. वही, पृ. 88
3. वही, पृ. 88-89
4. Net से प्राप्त

शिव शक्ति और संगीत

Dr. Namita Yadav

Associate Professor
(Music vocal)

भगवान शंकर ही संगीत के आदि आचार्य एवं आदि गुरु माने जाते है। उन्हीं से ब्रहम ने संगीत की शिक्षा प्राप्त की तथा महार्षि भरत ने भी नृत्य, संगीत एवं नाट्य की शिक्षा शंकर से ही प्राप्त की जिनका ग्रंथ नाट्यशास्त्र संगीत जगत् में एक बहुत बड़ा स्थान रखता है। बल्कि इसे भगवान शंकर का ही एक प्रकार से ग्रथ माना जाए, तब भी त्रुटिपूर्ण नही होगा। यदि भगवान शंकर के भी पार्वती जी (शक्ति स्वरुपा) स्त्री रुप में न होती तो शायद संगीत का ओर कुछ रुप होता। जहाँ भगवान शंकर ने पांच रागों को जन्म दिया-भैरव श्री दीपक, मेघ हिडोल वहाँ पार्वती जी ने मालकौंस राग को जन्म दिया। [1]

शिव सर्वव्यापी है और अन्य देवताओं की भॉति पूर्ण ब्रह्म है। इनके रुप और गुणों की कल्पना विभिन्न प्रकार से की जाती है। संसार की रक्षा एवं कल्याण के लिए वे प्रतिदिन संध्या-ताण्डव नृत्य किया करते है इसी संध्या ताण्डव नृत्य पर भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में विस्तृत रुप से प्रकार डाला है।

मयापोदं स्मृतं नृत्यं सन्ध्याकालेषु नृत्यता।
नानाकरण संयुक्तै रंगहारैविभूषितम् । 13।
नाट्शास्त्र अध्याय. 4

अर्थात-संध्या के समय नृत्य करते हुये जब मैने नृत्य को निर्माण किया तब मैने (नृत्य को) ही अगहारों से संप्रक्त किया- जो करणों से मिलकर निर्मित होते है। भगवान शिवजी ने अपने शिष्य तण्डु को बुलाकर कहा कि भरत मुनि को अंगहारों का विधान बता दीजिए। तण्डु के सहयोग से भरतमुनि ने नृत्याध्यायों पर प्रकाश डाल कर इस ग्रंथ को अधिक महत्वपूर्ण बना दिया। [2]

प्राचीन काल से ही भारतीय धर्मानुसार परमात्मा एक ही है जो निराकार, निर्गुन, निष्क्रिय और निरंजन हे। इसी के तीन नाम है। ब्रह्मा, विष्णु महेश। जिनकी तीन शक्तियाँ है। इन तीन शक्तियों के नाम है। महा सरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली। तीनों शक्तियों का सम्बन्ध नृत्यकला के प्रति निधि अक्षर ता थै और 'तत्' से है। नृत्यकला के आचार्य 'ता' अक्षर से ताण्डव थै से लास्य का बोध कराते है।[3] कहा जाता है कि ब्रह्मा ने चारों वेदों के अतरिक्त पंचम वेद के रुप में नाट्य की रचना की **'वेदोहसंबद्धौ नाट्यवेदो महात्मना। एवं भगवता सृष्टो ब्रह्मणा** ललितात्सक'। ब्रह्मा ने इस कला की शिक्षा भरत मुनि और उनके सौ पुत्रों को दी। भरत ने गंधर्वो अप्सराओं और किन्नरों की मदद से शंकर के समक्ष 'त्रिपुरदाह' और अमृत मंथन नामक दो नाट्य प्रयोगों को प्रस्तुत किया इस नाट्य प्रस्तुति से शंकर बहुत प्रसन्न हुए। नृत्य कला का एक प्रमुख तत्व नृत्त शिव के चिद्विलास का साधन है-जिसे ब्रह्मा के आग्रह पर उन्होने तण्डु के माध्यम से भरत को शिक्षा रूप में प्रदान किया।

भरत मुनि ने भारतीय संगीत नृत्य और नाट्य के आधार ग्रन्थ 'भरत नाट्य शास्त्र' में स्पष्ट लिखा है कि भारतीय शास्त्रीय संगीत के सर्जक भगवान शंकर और माता पार्वती है भगवान शंकर के बाद

दूसरे स्थान पर अगर किसी नृत्य विशारद् का नामोल्लेख मिलता है तो वे है उनके और और शिष्य तंडु मुनि इसीलिये भारतीय मनीषियों ने भगवान शंकर के जिन चार स्वरूपों को स्वीकारा है। उनमें उनका एक 'नृत्य मूर्ति' स्वरूप भी ही जो उनके संगीत सर्जक होने का प्रमाण है- शेष तीन स्वरूप इस प्रकार है, संहारमूर्ति, दक्षिणा मूर्ति और अनुग्रह मूर्ति।[4]

शिव के परम प्रिय नुत्त 'तांडव' के मुख्यतः सात प्रकार माने गए है जिनमें चार एकल है। और तीन युगल नृत्य एकल तांडव इस प्रकार है। आनंद तांडव संध्या, त्रिपुर तांडव, और संहार तांडव। युगल तांडव इस प्रकार है- गौरी तांडव, उमा तांडव और के इन सभी प्रकारों की रचना अलग-अलग समय और स्थितियों में हुई।

तांडव नृत्य में 108 करण 32 अंगहार 4 प्रकार के रेचक व पिडंवंध का उल्लेश मिलता है। तीव्र गति तथा वीर-वीमत्स, रौद्र भयानक और अद्भुत रसो के सम्मिश्रण के कारण तांडव जब केवल पुरूष वर्ग तक ही सीमित रह गया, तो पार्वती ने 'लास्य' नामक एक अन्य नृत्य शैली का सृजन किया जो नारियों के अनुकूल था। पार्वती ने इसकी शिक्षा वाणासुर की पुत्री उषा को दी ऊषा का विवाह कृष्ण के प्रपौत्र अनिरूद्ध के साथ हुआ। ऊषा ने द्वारिका आने पर वहाँ की महिलाओं को इस नृत्य की शिक्षा दी, और इस प्रकार देवलोक का यह नृत्य पृथ्वी पर अवतरित हुआ।[5]

ब्रह्म का निष्क्रिय रूप शिव और सक्रिय रूप माया (पार्वती) है शिव जब नृत्य करते है तो पार्वती दृष्टा बन जाती है और पार्वती जब नृत्य करती है तो शिव दृष्टा बन जाते है, तथा कभी-कभी दोनों की नृत्य क्रिया चलती है। इस प्रकार यह नृत्य शिव की नित्य इच्छा स्वभाव और आनंद के तौर पर चलता रहता है। यही तीनों क्रियाएँ त्रिकोण रूप में तीन शक्तियों का बोध कराती है जिनमें तीनों देवता स्थित है। शाक्त दर्शन में शिव को त्रयी शक्ति का प्रतीक कहा है। ये त्रयी शक्तियाँ ज्ञान और क्रिया है।

त्रिकोणे देवताः सर्वा ब्रह्म विष्णु महेश्वराः।

अर्थात- त्रिकोण में ब्रह्म, विष्णु, महेश ये तीनों देवता है। यह त्रिकोणात्मक शक्ति ही ब्रहम है। ब्रहम के स्पन्दन किया नाना प्रकार ध्वनियाँ उत्पन्न होती रहती है। यह ध्वनि अत्यंत शक्तिशाली परम पवित्र और ब्रह्मस्वरूप है–

शब्दब्रह्म परंब्रह्म नानायोर्भेद इष्यते।
लये तु एकमैवेदं सृष्टाभैदः प्रवर्तते।

शब्दब्रह्म और परंब्रहम में कोई भेद नही है। लय काल में दोनों एक ही है 'ऊँ' में तीन अक्षर है। अ, उ, म् त्र ऊँ का उच्चारण मंत्र के तौर पर किया जाता है इसी प्रकार शास्त्रीय नृत्य कथक में भी तीन ध्वनियो की साधना की जाती है जो ऊँ की तरह ब्रह्मरूप है। नृत्य का तत्कार ही ओंकार स्वरूप है जो सर्वव्यापी है यही समस्त कलाओं को गतिशील बनाए रखता है इसे ही ईश्वरतत्व कहा है इसे ही शिव का शरीर माना है।

नृत्यकार के पदाघातों द्वारा उपर्युक्त तीनों शक्तियों का मिश्रित रूप प्रकट किया जाता है जो चित्व आनन्द ही। त्रिकोण चित आनंद का सरल प्रतीक है तांत्रिको और योगियो ने इसे शिवशक्ति या शिव योनि माना है। त्रिकोण का सीधा स्वरूप शिव का प्रतीक है।[6]

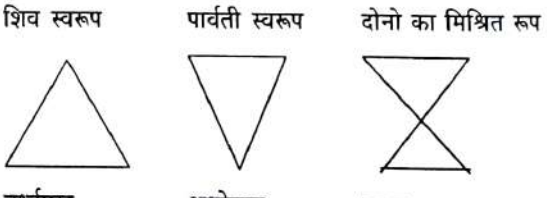

मानव का यह शरीर शिव का डमरू है। इसको स्पष्ट समझने के लिए आप दोनों हाथों को ऊपर करिये और उतनी ही दूरी को ध्यान में रखते हुए दोनों पावों को फैला दीजिए। आपका यह शरीर डमरू की आकृति वन जाएगा। इसी शरीर में षट्चक्रों के स्थान है जिनसे वर्णमाला के समस्त स्वर और व्यंजनों की रचना का विस्तार इसी से होता है अगर इसके मध्य में बिन्दु लगा दिया जाये यह ब्रह्म शक्ति का रूप बन जाता है सृष्टि लीला

का विस्तार करता है त्रिकोण के तीन बिन्दुओं को शक्ति, बिन्दु नाद, और रूप बिन्दु कहते है।

शिव और पार्वती के इन दोनो प्रतीको को मिला दिया जाता है। तो षटकोंण बन जाता है। षटकोंण के प्रत्येक कोंण पर नृत्याक्षेरों को स्थापित करके लययुक्त नृत्य किया जाए तो लाल दादरा के तत्कार कर बोध होता है। प्राचीन ऋतु श्रंगार नृत्य इसी विधि विधान पर आधारित था।

षटकोण

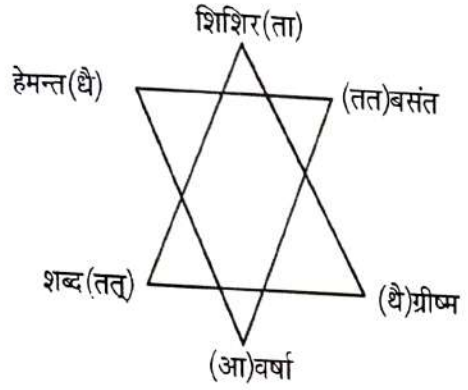

नृत्य तंत्र की जानकारी हेतु उसमें संबंधित प्रतीकों का ज्ञान होना आवश्यक है

1. शिव का प्रथम एवं सरल से सरल तथा लोक व्याहारिक प्रतीक खड़ी रेखा है। जैसे। खड़ी रेखा। खडी रेखा स्थिर होती है, इसी कारण खडी रेखा को महत्व दिया गया हैं।[7]

पार्वती (शिवा) इनकी आड़ी रेखा है जो गति माया की तरह चंचल है आड़ी रेखा -।

(ए) शिव और शक्ति (शिवा) का मिश्रित रूप मांगलिक और कल्याण प्रद माना गया है जिसमें स्वास्तिक का रूप स्थित है। +

शिव एवं पार्वती की नृत्य से सम्बन्धित कथाओं के अतिरिक्त वाद्यों से सम्बन्धित प्रसंग भी प्राप्त होते है। रूद्र वीणा का प्रचलन भारतीय संगीत में वैदिक काल से ही रहा है। तथा इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों का कथन है कि भगवान 'शंकर जी' ने इसका आविष्कार किया था जिसकी प्रेरणा उन्हें पार्वती जी की शयन मुद्रा से प्राप्त हुयी थी। बाद में इस वीणा को रूद्र वीणा (शंकर वीणा) कहा जाने लगा। 8

शैन ग्रन्थों लिखा है कि भगवान की लीला का अर्थ है संसार का उद्भव और विकास। शैवमत के सांकेतिक चिन्हों में पंचाक्षर मंत्र 'नमः शिवाय' का विशेष उद्देश्य। इसकी तदात्मता शिव के नृत्य से दिखाई जाती उणमाइविलक्कम में (33.35) नृत्य के साथ इन अक्षरों के नृत्य की तदात्मता इस प्रकार दिखलाई गई ही उनके चरणों में 'न' नाभि में 'म' स्कन्धदेश में 'शि' मुखमण्डल में व और मस्तक में 'य' है।

पंचाक्षर के ध्यान की दूसरी रीति भी दी गई है- डमरूवाला हाथ 'श' फैला हुआ हाथ 'व' अभयहस्त 'य' अग्निवाला हाथ 'न' और मुयलक को दवा रखने वाला पैर 'म' है। पाँचों अक्षरों के अर्थ क्रमशः ईश्वर, शक्ति, आत्मा तिरोभाव और मल है। यदि इन पाँच सुन्दर अक्षरों का ध्यान किया जाए, तो आत्मा उस जगत में पहुँच जाऐगी, जहाँ न प्रकाश है ओर न अन्धकार। वहाँ शक्ति का शिव में लय हो जाऐगा। 9

भूतनाथ भगवान शंकर न केवल आदि नृत्य तांडव के ही सर्जक है- बल्कि संगीत की अन्य विधाओं के भी रचयिता और विद्वान माने गये है। डमरू को प्रथम लाल वाद्य होने का गौरव प्राप्त है। इसी डमरू से पाणिनि के 14 सूत्रो का सूत्रपात किया। जिससे भारतीय संगीत का प्रार्दुभाव हुआ। उस समय से प्रचलित दो प्रमुख नृत्यों तांडव और लास्य के प्रथमाक्षरों से भारतीय संगीत के अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व ताल की रचना की गई। ताल शिव और शक्ति के साथ साथ होने का प्रतीक है, जिस प्रकार शिव और शक्ति की लयपूर्ण गति से समस्त संसार का क्रिया कलाप सुचारू रूप से चलता है उसी प्रकार ताल द्वारा समस्त संगीत को अनुशासन की डोर में वाँधना संभव हो सका है।

तकारः शंकरः प्रोन्क्तो लकारः पार्वती स्मृतः
शिव शक्ति समायोगात् ताल इत्यभिधीयते।

देवाधिदेव महादेव द्वारा ताल निर्माण के सम्बन्ध

में भरत कल्पलता मंजरी में एक श्लोक इस प्रकार मिलता है-

शंभो रूत्पद्यते नादो दुत्पदयतेमनः
मानसो जायते कालः सकालस्ताल संज्ञकः।[10]

ताल, ताल वाद्य एवं नृत्य के साथ साथ स्वर विद्या में भी पूर्ण निपुण थे महेश्वर। उन्होने पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और आकाशोन्मुख होकर क्रमशः भैरव हिंडोल मेघ दीपक और श्री राग का सृजन किया। इसके बाद पार्वती के श्री मुख के राग कौशिक की उत्पत्ति हुई। इन्ही रागों को आदि राग कहलाने का श्रेय और गौरव प्राप्त है।[11]

संदर्भ

1. संगति अप्रेल-1992 नृत्य तंत्र यंत्र और प्रतीक डॉ. जयचन्द्र शर्मा- पृ.-20
2. वही पृ.- 17
3. वही पृ.-16
4. संगीत दिसम्बर 1993 विजय शंकर मिश्र- जब शिव की पत्नी बने विष्णु पृ.-20
5. संगीत दिसम्बर 1993 पुत्र विजयशंकर के लेख से उद्धृत पृ.-21,22
6. संगीत अप्रैल-1992- डॉ. जयचन्द्र शर्मा के लेख से उद्धृत पृ.-18
7. संगीत अप्रैल 1992 पृ.-19 ड़ॉ. जयचन्द्र शर्मा के लेख नृत्य तंत्र यंत्र और प्रतीक से उद्धृत।
8. निबन्ध संगीत डॉ. लक्ष्मी नारायण गर्ग पृ.-155
9. संगीत फरवरी 2009 पृ.-7 भारतीय प्रतीक विद्या के उद्धृत।
10. संगीत दिसम्बर 1993 पृ.-21 डॉ. विजय शंकर मिश्र के लेख से उद्धृत
11. वही पृ.-29

शिव और शक्ति का दार्शनिक स्वरुप

डा. उषारानी राव

विभागाध्यक्ष हिंदी, कवि, लेखिका, बेंगलूरु, कर्नाटक

समतामूलक तत्वों को व्यापक घनत्व में प्रतिष्ठित कर विरोधों एवं अवरोधों के बीच भारतीय चिंतन की परंपरा निरंतर प्रवाहमान रही है। वस्तुतः जो तत्व मनुष्य के, समाज के, राष्ट्र के, और विश्व के जीवन को धारण करता है वही धर्म है, जो दर्शन की नींव है। यह प्रज्ञा बोधिनी शक्ति एक मन से दूसरे मन एक काल से दूसरे काल मनुष्य की बुद्धि और भावना का सहारा लेकर जीवित रहती है यही दर्शन का सत्य है और यही सृजनात्मक सत्य भी है।

"जठरे लियते सर्वं जगतं स्थावर जंगमम्"

अर्थात जिसके जठराग्नि में सर्वचराचरात्मक जगत लीन रहता है। जिससे जगत की उत्पत्ति होती है, लिंग कहते हैं। यही भगवान शिव का आदि...अनादि स्वरूप है।

विशिष्टाद्वैत पर जोर देने वाले दर्शन में परमयोगी शिव पूर्ण स्वतंत्र रूप हैं स्थूल एवं सूक्ष्मजीव का चिद्शक्ति शिव अद्वैत हैं।

सर्वसमष्टि का जो आत्मा हैए वही विराट है। पृथ्वी तल से लेकर आकाशीय पिंड तक शिवतत्व ब्रह्मांड में समाविष्ट है।

तत्वसमूह में लीन होता हुआ अंततोगत्वा सबके जीवनभूत चौतन्यमय परमेश्वर में ही लय को प्राप्त होता है। सृष्टिकाल में फिर शक्ति द्वारा शिव से निकल कर स्थूल जगत के रूप में प्रलयकालपर्यंत विद्यमान रहता है।

अपनी इच्छा से संसार की सृष्टि के लिए उद्यत हुए महेश्वर का जो प्रथम परिस्पंद है, उसे शिवतत्व कहते हैं। यह इच्छाशक्ति ही है एजो संपूर्ण कृत्यों में इसी का अनुवर्तन होता है।

ज्ञान और क्रियाए इन दो शक्तियों में शैव दर्शन ज्ञान एवं क्रिया दोनों का अधिष्ठान है यह समावेशी दर्शन है। यह ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या नहीं कहता उससे आगे बढ़ कर प्रत्येक अस्तित्व को ब्रह्म का विस्तार मानता है।

जब ज्ञान का आधिक्य हो, तब उसे सदाशिव तत्व समझना चाहिए, जब क्रियाशक्ति का उद्रेक हो तब उसे महेश्वर तत्व जानना चाहिए तथा जब ज्ञान और क्रिया दोनों शक्तियां समान हों तब वहां शुद्ध विद्यात्मक तत्व समझना चाहए।

जब शिव अपने रूप को माया से निग्रहीत करके संपूर्ण पदार्थों को ग्रहण करने लगता है, तब उसका नाम पुरुष होता है।

दृश्य, चल एवं नाम-रूप के द्वारा व्यक्त सत्ता शक्ति है।

शिव अव्यक्त, अदृश्य, सर्वगत एवं अचल आत्मा शक्ति के साथ एक-दूसरे के पूरक हैं।

तंत्रोक्त रात्रि सूक्तों में रात्रि को आद्याशक्ति का प्रतिरूप माना गया है।

शक्ति जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने की ऊर्जा प्रदान करती हैं।

आद्य परम पुरुष अकेले होने पर भी अकेले नहीं थेए अंतर में युगल थे। शिव के साथ शक्ति न हो तो असहाय हैं। हर पुरुष में स्त्री है और हर स्त्री में पुरुष। अगर ये दोनों ध्रुव न हो तो ऊर्जा का संचरण नही हो सकता। यही सृष्टि का विधान है जिसे भारतीय मनीषियों ने अर्धनारीश्वर के रूप में व्यक्त किया है।

स्त्री और पुरुष में एक प्रकार से द्वैत की स्थापना की गई जिसमें एक चेतन वर्ग द्वारा दूसरे चेतन वर्ग को अधीनता प्रधान की गई। उसे पराधीन, गौण, सापेक्ष के रूप में कहा गया और दूसरे वर्ग ने अधीनता स्वीकार कर ली।

शंकराचार्य शिव और शाक्त की सत्ता को अद्वैत भाव में स्वीकार करते हैं।

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं,
पूजा ते विषयोपभोग-रचना निद्रा समाधिस्थितिः।
संचारं पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो,
यद्यत्कर्मकरोमितत्तदखिलं शंभो! तवाराधनम्॥

हे शिव! आत्मा आप हैं, बुद्धि गौरी है और प्राण आपके सहचर गण हैं। शरीर मन्दिर है। इन्द्रिय-विषयादि पोषण-परक क्रियायें आदि पूजा है। निद्रा समाधि है। चलना-फिरना परिक्रमा है। वाणी का कर्म स्तोत्र हैं स्तुति है आपका मेरा समस्त जीवन आपकी आराधना है। यह समर्पण भाव अनन्य अनन्य भक्त के बिना संभव नहीं है।

वस्तुतः भारतीय मनीषा अंतस में आनंद के स्त्रोत को खोजती है ताकि मनुष्य स्वयं के सत्य को पहचान सके।

एक प्राणतत्व ही सर्वव्यापी है एक ही चौतन्य, एक ही आत्मा, एक ही विराट, एक ही सत्ता का विस्तार, और एक ही अस्तित्व, जो मनुष्य इस रहस्य को अंतस में उतार लेता है वहीं शिवत्व के घनत्व को समझ पाता है।

भारतीय चिंतन दर्शन के अनुसार शिव और शक्ति अद्वैत है। लौकिक स्तर पर हम जहां कहीं भी द्वैत का भाव देखते हैं वह स्वयं के अहं से जन्मा है कहीं कोई भारतीय मनीषा की दुर्भावना नहीं दिखाई देती है। अज्ञान के प्रति विरोध अवश्य है। भेद की सत्ता का यह विरोध भी शुभ और

कल्याण के उद्देश्य से प्रेरित है
नमरूशंभवाय च मयोभवाय च नमः
शंकराय च
मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।।

यजुर्वेद के श्लोक सर्व कल्याणकारी भाव को निसृत करते है उनको प्रणाम है जो सभी का मंगल करने वाला है जो सर्व का सत्कार करने वाले है जो प्राणी मात्र को सुख पहुंचाने वाला है ऐसी मंगलमय परम शिव को प्रणाम है।

सत्य की प्रतीति का माध्यम से व है इसका लक्ष्य ही शिव में हो जाना यह भारतीय चेतना की रहस्यमयी उपलब्धि मानी जाती है। जो सत्य है एवही शिव है जो शिव है एवही सत्य है।

शिव को आत्मसात के बिना अंतस का पशुत्व दूर नहीं होता इसीलिए शिव ही पशुपति हैं।

शिवत्व भी शिव और शक्ति का समावेश सृष्टि का उत्कर्ष है। सर्व कल्याण के लिए जो विरोधी तत्व हैं, उन को पराजित करने के लिए शक्ति अनिवार्य है। आसुरी तत्वों का वध शिव नहीं करता, शक्ति के द्वारा किया जाता है। शक्ति को महिषासुर मर्दिनी अर्थात तामस विनाशक कहा गया है। दर्शन की यह विशेषता है कि दर्शन की विशेषता है कि विकारों के नाश का मूल शक्ति को मानता है जब तक विकारों का नाश नहीं होगा सदस्यों का उदय नहीं होगा इसे ही शिवम कहकर संबोधित किया गया है।

इस शिव शक्ति के संगम को ही परा शक्ति के रूप में देखा जाता है परम पुरुष के हृदय में सृष्टि की इच्छा उत्पन्न होने पर दो रूप प्रकट होते दिखाई देते हैं शिव और शक्ति यही कर्तव्य है यही चेतना का स्वर्ण है युक्ति है बुद्धि है जिसे हम मेधा कहकर भी संबोधित करते हैं अतः शिव तत्व प्रधान शिव शक्ति तत्व प्रधान समृद्धि में सर्व मंगल सर्व कल्याण भाव समाविष्ट है यह एक पूर्ण करी पल परिकल्पना है भूत स्पूर्ण से ही इसे समझा जा सकता है

तुलसीदास जी कहते हैं

"वन्दे बोधमयं नित्यं गुरु, शंकर रूपिणम।
यमाश्रितो हि वक्रोपि, चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते"

शिव जी को गुरु रूप में प्रणाम करके उनकी महिमा बताई गई है

शुभंमस्तु!